कालिदास
और
उसकी काव्य-कला

लेखक

विद्यामार्त्तण्ड वागीश्वर विद्यालंकार

एम०ए०, साहित्याचार्य

भू. पू. अध्यक्ष—संस्कृत-हिन्दी विभाग, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

मोतीलाल बनारसीदास

दिल्ली :: पटना :: वाराणसी

भूमिका

गुरुकुल काँगड़ी विश्व विद्यालय मे ४० वर्प तक संस्कृत साहित्य का प्राध्यापक रहते हुए, मुझे समय-समय पर, कालिदास, भवभूति-आदि महाकवियों के सम्वन्व मे अनेक व्याख्यान देने पड़े। वे व्याख्यान, अपने सहयोगी प्राध्यापकों तथा छात्रों को वहुत रोचक तथा नवीनता पूर्ण प्रतीत हुए। उन्होने आग्रह किया कि उक्त व्याख्यानो को ग्रन्थरूप में अवश्य प्रकाशित किया जाए जिससे कि अन्यविद्वानों को भी उनपर विचार विमर्श का अवसर मिलसके। किन्तु गुरुकुल में सेवा करते हुए अत्यधिक कार्य व्यग्र रहने के कारण, इस मे कुछ प्रगति न हो सकी।

सन् १९५९ मे, जव मैं वहाँ से कार्य मुक्त होकर अपने घर आ गया तो प्राच्य साहित्य के सुप्रसिद्ध तथा उत्साही प्रकाशक अपने मित्र श्री सुन्दरलाल मालिक, मोतीलाल वनारसी दास फर्म ने आग्रह किया कि मै उन्हे शकुन्तला नाटक का हिन्दी अनुवाद तथा उसकी विस्तृत भूमिका लिख कर दूँ। मै स्वय इस कार्य को करना चाहता था और अव मुझे इसके लिए अवकाश भी था। अनुवाद तो शीघ्र ही तैयार हो गया और भूमिका का कार्य प्रारंभ हुआ। मेरी इच्छा थी कि मै कालिदास के सम्वन्ध मे अपने सव विचार इसमें संगृहीत करदूँ। परिणाम यह हुआ कि भूमिका का कलेवर वहुत वढ गया। यह देखकर, एक दिन, लाला जी ने मुझसे पूछा कि इस भूमिका को 'कालिदास और उसकी काव्य कला' के नाम से पृथक ग्रन्थ के रूप मे क्यों न प्रकाशित कर दिया जाए। मुझे उनका यह विचार वहुत पसन्द आया और ऐसा करने के लिए मैंने उन्हे अपनी स्वीकृति दे दी।

कालिदास भारत का मूर्वन्य कवि है और उसके विपय में देशी तथा विदेशी विद्वान् इतना अधिक लिख चुके है कि अव तत् सम्बन्धी किसी विचार को नवीन कहना दु. साहस मात्र प्रतीत होता है अतः मै ऐसा न करूँगा। इसमें कुछ भी नवीन या उपयोगी है अथवा नही इसका निर्णय सुजन पाठक ही कर सकते है। स्वयं कालिदास ने लिखा है :—

तं सन्तः श्रोतुमर्हन्ति सदसद्व्यक्ति हेतवः।
हेम्नःसंलक्ष्यते ह्यग्नौ विशुद्धिः श्यामिकाऽपि वा ॥१०॥ रघु० सर्ग १ पद्य १०

कालिदास के काल के सम्बन्ध मे विद्वानों में मतभेद है और मैंने उनके मतों को बिना किसी पक्षपात के रखने का यत्न किया है। यद्यपि मेरा झुकाव उस पक्ष की ओर अधिक है जो उसका जन्म विक्रमीय संवत् के प्रारंभ के आसपास मानता है, और उस के लिए मैंने अनेक कारण भी यहाँ प्रस्तुत कर दिये हैं तथापि उसके लिये मेरा उत्कट आग्रह नही है। इसीलिये मैंने विक्रमोर्वशीय नाटक के वे उद्धरण यहाँ एकत्र कर दिए हैं जिनसे कुछ अन्य ध्वनि निकलती प्रतीत होती है। विद्वज्जन उन पर विचार करने की कृपा करें।

कालिदास के जन्मस्थान का प्रश्न भी कुछ कम विवादास्पद नहीं। मैंने उसके सम्बन्ध में अपना सुझाव उपस्थित किया है। मेरी मान्यता है कि कवि का जन्म हिमालय के किसी ऐसे प्रदेश में हुआ था जहाँ भगवती भागीरथी भी साथ साथ बहती है और वह प्रदेश गढ़वाल ही है अतः कालिदास गढ़वाल का निवासी था। मगध तथा उज्जयिनी के प्रति उसका विशेष लगाव अवश्य है किन्तु वे मुझे उसके जन्मस्थान नहीं प्रतीत होते। इस सम्बन्ध में मैंने जो कुछ लिखा है उसके पक्ष या विपक्ष में यदि विद्वज्जन अपने विचार प्रकट करेंगे तो मैं उनसे लाभ उठाने का यत्न अवश्य करूँगा।

प्रसिद्ध है कि कालिदास शृंगाररस का कवि है किंतु उसका शृंगार सुसंयत तथा शालीन है इस पर भी मैंने कुछ प्रकाश डालने का यत्न किया है। कालिदास की सौन्दर्य भावना कितनी सूक्ष्म, तरल तथा मधुर है इस पर भी पाठकों को यहाँ कुछ सामग्री उपलब्ध हो सकेगी, साथ ही प्रसिद्ध प्राचीन उक्ति 'उपमा कालिदासस्य' की भी यत्किंचित् चर्चा यहाँ प्रसंग वश आगई है आशा है कि उससे सहृदयों का कुछ मनोरंजन अवश्य होगा।

यद्यपि ग्रन्थ का आकार बढ़ गया है तो भी इसमें मेरे सब अभिमत विषयों का समावेश न हो सका इसका मुझे दुख है 'शकुन्तला का अनुवाद तथा कालिदास की नाट्य कला,' अलग प्रकाशित हो रही है। आशा है कि कुछ विषय तो उसमे स्थान पा जाएंगे किन्तु फिर भी जो बच रहेगा उसका क्या हो यह भविष्याधीन है।

अन्त में उन लेखकों का धन्यवाद करना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ जिनके ग्रन्थों से मैंने लाभ उठाया है। 'विक्रम-स्मृति ग्रन्थ में मुझे एक जगह ही बहुत सी सामग्री मिलगई अत. उसके प्रकाशक महोदय का मैं ऋणी हूँ। ऐतिहासिक विषय का प्रतिपादन करते हुए मेरे सामने जो भी कठिनाई आई उसके लिए मैंने अपने सुयोग्य शिष्य श्री देवेन्द्र कुमार वेदालंकार एम० ए० द्वारा डा० श्री दशरथ शर्मा, रीडर इतिहास विभाग, दिल्ली विश्व-

विद्यालय की सहायता चाही जो उन्होने बड़े प्रेम और उदारता से दी। उक्त दोनों महानुभाव भी मेरे विशेष धन्यवाद के पात्र है। अन्त मेयह लिखने की तो आवश्यकता ही नही कि यदि श्री सुन्दरलाल का सहयोग मुझे न मिलता तो संभवतः मेरा यह परिश्रम मेरी अलमारी मे ही बन्द पड़ा रह जाता।

१५-७-१९६३ वागीश्वर विद्यालंकार

कालिदास और उसकी काव्यकला

विषय-सूची

कालनिर्णय

महाकवि कालिदास : काल-निर्णय

१. कालिदास के वंश काल आदि का प्रश्न एक समस्या है

महाकवि कालिदास कब तथा कहां उत्पन्न हुए, किन पारिवारिक, सामाजिक तथा राजनीतिक परिस्थितियो में उनका जीवन व्यतीत हुवा, किन संघर्षों, विफलताओं और सफलताओ ने उनके विचारों एव भावनाओ के निर्माण मे योगदान किया— इन प्रश्नों का उत्तर आज भी एक कठिन समस्या बना हुआ है।

२. कवि सम्बन्धी कुछ जनश्रुतियों तथा कहानियों से ही सहृदयों की संतुष्टि

सहृदय जन शताब्दियों से इस महाकवि की रचनाओं का रसास्वाद करते आरहे थे किन्तु इसके जीवन वृत्तान्त के सम्बन्ध में कुछ जानने की उत्सुकता ने उन्हे कभी आकुल नही किया। कर्ण परम्परा से चली आ रही कुछ असत्य या अर्धसत्य जनश्रुतियो और रोचक कहानियो से ही उनका हृदय संतुष्ट हो जाया करता था।

३. कवि के सम्बन्ध में प्रसिद्ध किंवदन्तियाँ

रसिक वर्ग बहुत दिनों से यह अनुभव किया करता था कि जिस अद्भुत, मधुर तथा सुकुमार कला का दर्शन इस कलाकार की कृतियो मे होता है वह मानवीय नही, अतः अवश्य ही किसी देवता की कृपा का फल होगी। और देवता की कृपा के लिए मानव किसी विशेष विपत्ति में ही आतुर होता है। सभवतः इसी आधार पर यह कल्पना की गई कि कालिदास अपने जीवन के पूर्व भाग मे अशिक्षित ही नही, किन्तु अत्यन्त मूर्ख भी थे। तभी विवाह की सुहागरात मे अपनी विदुषी पत्नी से अपमानित होकर उन्हे काली देवी की शरण मे जाना पड़ा और उसके वरदान से वे महाकवि बन गए। फिर देवता की वह कृपा भी भला क्या जो एक वज्रमूर्ख को अद्भुत प्रतिभा न दे सके। अत. देवता के वरदान का महत्व प्रकट करने

के लिए बेचारे कालिदास को वृक्ष की उस शाखा को काटता हुआ दिखाया गया जिसके सहारे वह बैठा था । वरदान का श्रेय काली देवी को दिलवाने में कवि के नाम ने भी सहायता की होगी, क्योंकि किवदन्ती जगत् मे यह प्रश्न ही नही उठता कि कवि का नाम 'कालिदास' तो संभवतः उसके माता पिता ने उक्त तथाकथित घटना के पूर्व ही रख दिया होगा । यह भी कहा जा सकता है कि कवि का पहला नाम कुछ और ही रहा होगा तथा काली से वरदान प्राप्ति के अनन्तर ही उसका यह नाम पड गया हो ।

४. 'अस्ति कश्चिद्वाग् विशेषः' वाली सूझ

इसके साथ ही किसी चतुर सहृदय की संयोजक कल्पना ने कवि के काव्यों के प्रथम शब्दो—अस्ति, कश्चित, तथा वाक् को मिला कर, पत्नी द्वारा पीछे से उसके अभिनन्दन की सुन्दर कथा को भी जन्म दे दिया ।

५. कवि ने अपने सम्बन्ध मे कुछ भी नहीं लिखा

महाकवि बाण भट्ट ने अपने आश्रय दाता सम्राट् हर्ष का चरित लिखते हुए अपने वंश, जन्म स्थान, तथा जीवन के विषय मे भी पर्याप्त प्रकाश डाल दिया । महाकवि भवभूति ने भी अपने नाटको की प्रस्तावना मे अपने वंश, माता पिता, जन्म स्थान आदि के विषय मे मौनावलम्बन नही किया । पर संस्कृत साहित्य के सर्वश्रेष्ठ महाकवि कालिदास ने अपना कुछ भी परिचय देने मे इतनी कृपणता क्यों की, यह समझ मे नही आता । कवि ने कही भी यह स्पष्ट निर्देश नही किया कि वह कब, किस राजा के समय तथा कहां निवास करता था ।

६. बाणभट्ट तथा रवि कीर्त्ति द्वारा कालिदास का स्मरण

ईसा की सातवी शताब्दी के पूर्वार्ध मे उत्पन्न सम्राट् हर्ष (६०४ ई० पू० से ६४२ ई० पू० तक) के राजकवि बाण भट्ट ने हर्ष चरित[1] मे कालिदास को स्मरण किया है किन्तु उसके समय, स्थान, तथा आश्रय दाता राजा का उल्लेख नही किया । उस समय तक कालिदास को हुए कुछ ही शताब्दियां बीती थी, और बहुत सभव है कि उस सम्बन्ध में लोगो का ज्ञान निश्चयात्मक था । शायद इसीलिए बाण ने उस विषय मे कुछ लिखना सर्वथा अनावश्यक समझा । लगभग उन्ही दिनो सम्राट्

---

१. निर्गतासु न वा कस्य कालिदासस्य सूक्तिषु ।
प्रीतिर्मधुरसान्द्रासु मजरीष्विव जायते । हर्षचरित

पुलिकेशी द्वितीय के राजकवि रवि[1] कीर्ति ने एक शिला[2] लेख मे अपनी तुलना कालिदास तथा भारवि से की किन्तु उसने भी अप्रासंगिक होने के कारण वहां इन कवियों के देश काल आदि के विषय में कुछ नही लिखा।

७. दण्डी आदि आचार्यों ने कवि के विषय में कुछ प्रकाश नहीं डाला।

दण्डी वामन आदि अलंकार शास्त्र के आचार्यों ने अपने ग्रन्थों में कालिदास की रचनाओं का आश्रय लेते हुए भी कवि के संबन्ध में कुछ नहीं लिखा। वे भी संभवतः यही समझते रहे कि 'यह तो सभी जानते हैं' अतः इस विषय में कुछ लिखना पिष्टपेषणमात्र होगा।' यहां हमें यह भी स्वीकार करना चाहिए कि भारतीय सहृदय की विशेष रुचि काव्य के प्रति ही रही काव्यकर्ता के प्रति नहीं। वह समझता था कि उसे तो आम चूसने है, आमों के वृक्ष नहीं गिनने।

८. अपने महापुरुषों के विषय मे भारतीय लेखकों की उपेक्षा

यह भी आश्चर्य का विषय है कि भारतीय लेखकों ने सिकन्दर जैसे जगद्विजेताओं का मुँह मोड़ देने वाले वीरों का, कहीं नाम तक नहीं लिया और अशोक, समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त जैसे महापुरुषों के कार्यों को स्मरण रखने के लिए ग्रन्थ नहीं लिखे। फिर बेचारे कवि किस गिनती में आ सकते थे। इस उपेक्षा का दुष्परिणाम यह हुआ कि कुछ काल पश्चात्, जाति के इन महापुरुषों के सम्बन्ध में प्रामाणिक तथ्यों को जानने वाले व्यक्तियो का सर्वथा अभाव हो गया और आगे आने वाली संततियों के लिए, इन उज्वल ज्योतियों पर अन्धकार का पर्दा पड़ गया।

९ कालिदास के काल के सम्बन्ध मे मतभेद

महाकवि कालिदास के प्रामाणिक जीवन परिचय के अभाव में जनता की कल्पना शक्ति ने विकृत जनश्रुतियों और किवदन्तियों के आधार पर विचित्र कथाओं की सृष्टि करनी प्रारम्भ की। इनमें से किसी कथा के अनुसार यदि यह कवि ईसा से ५७ वर्ष पूर्व, उज्जयिनी में किसी मालवेश,

---

१. येनाऽयोजि नवेऽश्म स्थिर मर्थविधौ विवेकिना जिन वेश्म।
स विजयतां रवि कीर्तिः कविताश्रित कालिदास भारविकीर्तिः॥

२. इस शिलालेख का लेख काल—
पञ्चा शत्सु कलौ काले षट्सु पंचशतासु च।
समासु समतीतासु शकानामपि भूभुजाम्॥ (५५६ शकाब्द या ६३४ ई० प०)।

धन्वन्तरि, विक्रमादित्य[1] की राज सभा के नवरत्नों में सर्वश्रेष्ठ था तो किसी दूसरी के अनुसार वह ईसा के पश्चात् ११वी शताब्दी मे धारानरेश राजा[2] भोज (१०१८-१०६०) के दरबार का राजकवि था। किन्तु बहुत से ऐतिहासिक विद्वान उसे चौथी पाँचवीं शताब्दी में चन्द्र गुप्त[3] द्वितीय विक्रमादित्य का सम सामयिक स्वीकार करते हैं। किसी कथा में उसे पहले, अत्यन्त मूर्ख और पीछे महाविद्वान् कवि किन्तु विषय लम्पट चित्रित किया गया है और उसकी मृत्यु भी किसी वेश्या के घर में हुई बतलाई गई है तो कोई उसे सब शास्त्रो में पारंगत, प्रतिभा सम्पन्न, आदर्श-ब्राह्मण के रूप में अपने आश्रयदाता सम्राट् की राजसभा का प्रधान रत्न मानते हैं। विविधता की इस खिचड़ी में से सत्य को ढूंढ निकालना टेढ़ी खीर है।

---

१. धन्वन्तरि क्षपणका नरसिंह शंकु वेतालभट्टघट कर्पर कालिदासाः।
(क) ख्यातो वराह मिहिरो नृपतेः सभायां।
रत्नानि वै वररुचिर्नव विक्रमस्य॥
(ख) हालेनोत्तम पूजया कवि वृषः श्रीपालितो लालितः।
ख्यातिं कामपि कालिदास कवयोनीताः शकारातिना॥
श्री हर्षो विततार गद्यकवये बाणाय वाणीफलं।
सद्यः सत्क्रिययाभिनन्दमपि च श्रीहारवर्षोऽग्रहीत्॥
॥ रामचरित में अभिनन्द
(ग) सर विलियम जोन्स कालिदास का काल ईस्वी पूर्व प्रथम शताब्दी निर्धारित करते हैं तथा डा० पीटर्सन का मत है कि कालिदास का काल ईस्वी सन् के प्रारम्भ के आस-पास है। (डा० राधाकृष्णन द्वारा लिखित साहित्य अकेडमी दिल्ली द्वारा प्रकाशित मेघदूत की भूमिका के पृ० ७ पर फुटनोट।)

२. बल्लाल पण्डित कृत भोज प्रबन्ध

३. कालिदास का काल अश्वघोष तथा भास के पश्चात् ही मानना चाहिए। उसे ग्रीक ज्योतिष शास्त्र के जामित्र आदि पारिभाषिक शब्दों का ज्ञान है। उसके नाटकों की प्राकृत अश्वघोष तथा भास के नाटकों की प्राकृत से निश्चय ही अर्वाचीन हैं। उसे गुप्त काल से पूर्ववर्ती नही स्वीकार किया जा सकता ······। यह भी ध्यान मे रखना चाहिए कि चन्द्रगुप्त द्वितीय ने विक्रमादित्य की उपाधि धारण की थी और कालिदास का सम्बन्ध भारतीय परम्परा के अनुसार विक्रमादित्य से प्रसिद्ध है। बैरीडेल कीथ कृत हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर का हिन्दी अनुवाद पृ० ८०।

किन्तु आज का पाठक इन परस्पर विरोधी किंवदन्तियों से सन्तुष्ट नहीं होता और वह कवि के देश, काल, जीवन वृत्तान्त आदि के सम्बन्ध में सत्य की खोज करना चाहता है। यह दु:ख का विषय है कि स्वयं कवि ने तथा अन्य भारतीय लेखकों ने तो इस विषय में चुप्पी साधी ही, पर उन चीनी यात्रियो ने भी इस महाकवि के लिए दो शब्द तक न लिखे जिन्होंने अपनी यात्रा का विस्तृत विवरण तथा उस समय के भारत का बहुत कुछ आँखों देखा हाल अपने यात्रा वृत्तान्तों में लिखा है। फाहियान सन् ४०४ ई० प० में चन्द्रगुप्त द्वितीय के शासन काल मे भारत आया तथा ६, ७ वर्ष पश्चात् सन् ५११ ई० में वापिस लौट गया। वह ३, ४ वर्षतक तो पाटलिपुत्र में ही रहा जो उन दिनों गुप्त सम्राटों की राजधानी था। यदि कालिदास का काल वही माना जाए तो कुछ आश्चर्य नही कि इन वर्षो में फाहियान का साक्षात् परिचय भी उससे हुआ हो। सातवीं शताब्दी के प्रारम्भ में (६०४ ई० से ६४२ ई० तक) सम्राट् हर्षवर्धन के राजकविबाण ने कालिदास की कविता की प्रशंसा की है किन्तु उन्हीं दिनों भारत में आए दूसरे चीनी यात्री ह्वेनत्सांग ने कालिदास का कुछ भी जिकर नहीं किया।

१०. चीनी यात्री भी कालिदास के विषय में चुप रहे

इस प्रकार कवि के जीवन वृत्तान्त के सम्बन्ध में प्रामाणिक बहि: साक्ष्यों का प्राय: अभाव होने के कारण केवल अनुश्रुतियो तथा अन्त: साक्ष्यों का ही आधार शेष रह जाता है। कठिनाई यह है कि ये दोनों आधार भी विचारक को किसी निर्विवाद निर्णय पर नही पहुँचा पाते। तथापि, इन्ही आधारों को लेकर श्री लक्ष्मीधर कल्ला ने अपने निबन्ध 'कालिदास का जन्म स्थान' में ठीक ही लिखा है कि कवि तथा उसके जन्म स्थान के विषय में किसी निर्णय पर पहुँचने के लिए आवश्यक है कि विचारक उसकी रचनाओं का निरन्तर स्वाध्याय करे, जहाँ कवि जाता है वह भी उसके साथ वहीं पहुँचे, कवि जो कुछ देखता है वह भी उसे देखे, कवि जो कुछ चिन्तन करता है वह भी उसी का चिन्तन करे। (बर्थ प्लेस ऑफ कालिदास पृ० ३ पंक्ति ६-९) अतः, इसी पद्धति पर कवि के ग्रंथों का अनुशीलन करके यहाँ कुछ विचार करने का यत्न किया जा रहा है।

११. कवि के काल के विषय में केवल अन्त: साक्ष्यों का ही आधार शेष रह जाता है

विक्रमोर्वशीय नाटक के नाम का साक्ष्य—ऊपर ऐसे दो श्लोक उद्धृत किए जा चुके है जिनकी रचना उस अनुश्रुति के आधार पर हुई प्रतीत होती है जिसके अनुसार कालिदास किसी विक्रमादित्य के सभारत्न थे। इस अनुश्रुति का समर्थन कवि के एक नाटक 'विक्रमोर्वशीय' के नाम से भी होता है। इस नाम का अर्थ पाणिनि-व्याकरण के नियम के अनुसार वह ग्रंथ है जिसकी रचना विक्रम तथा उर्वशी के विषय को लेकर की गई हो। किन्तु सारे नाटक मे विक्रम नाम का कोई पात्र नही है। नाटक का नायक चन्द्रवशी राजा पुरुरवा है, और नायिका उर्वशी। अत. नाटक का नाम 'पुरुरव-उर्वशीय' होना चाहिए था। कोई कह सकता है कि विक्रम से प्राप्त उर्वशी=विक्रमोर्वशी, और इस सम्बन्ध मे लिखा गया ग्रंथ=विक्रमोर्वशीय। किन्तु यह योजना क्लिष्ट कल्पना मात्र है क्योकि ग्रंथ के नाम मे 'छ' प्रत्यय तभी हो सकता है जब उसका विषय शिशुक्रन्द, यमसभा, द्वन्द्व (दो व्यक्तियों के नाम) या इन्द्रजनादि में से कोई हो। किन्तु उक्त योजना इनमे से किसी भी शर्त को पूरा नही करती। प्रतीत होता है कि कवि ने अपने आश्रय दाता विक्रम के जीवन की किसी विशेष घटना को चिरस्मरणीय बनाने के लिए या उसके लिए किए गए, किसी मांगलिक समारोह के अवसर पर खेलने अथवा राजा को भेट करने के लिए उन्ही दिनो लिखे गए इस नाटक का नाम 'विक्रमोर्वशीय' रख दिया और व्याकरण के आचार्य का मन रखने के लिए विक्रम तथा पुरुरवा का अभेद मान लिया।

१२. (क) कवि का विक्रम से सम्बन्ध

इसी नाटक के प्रथमाङ्क के पन्द्रहवे श्लोक के आगे गन्धर्व राज चित्ररथ का वाक्य 'विक्रम की उस महिमा के लिए मै आपको बधाई देता हूँ जिसके कारण आप इन्द्र का भी उपकार करने की क्षमता[1] रखते है।' तथा उसके कुछ ही आगे उसका दूसरा वाक्य 'ठीक है। यह नम्रता ही विक्रम की शोभा है।' ध्यान देने योग्य है। दोनो ही जगह विक्रम शब्द का प्रयोग वाक्यों के वाच्यार्थ के प्रतिपादन के लिए आवश्यक न था। "आप (अर्थात् विक्रमादित्य) ऐसे शक्ति शाली है कि इन्द्र को भी आपका आभार स्वीकार करना पड़ता है" तथा 'विनय ही

१२. (ख) विक्रमोर्वशीय नाटक में किसी विक्रम का स्मरण

---

१ महेन्द्रोपकार पर्याप्तेन विक्रम महिम्ना वर्धते भवान्। (विक्रमोर्वशीय अक १ श्लोक १५ के आगे।)

आपका भूषण' है।' ऐसा भी कहा जा सकता था। किन्तु किसी व्यंग्य-अर्थ को प्रकट करने के लिए ही कवि ने दोनों वाक्यों में जानबूझ कर 'विक्रम' शब्द का प्रयोग किया है, यह बात सारे प्रसंग को देखने से प्रकट हो जाती है। कल्पना की जा सकती है कि जब यह नाटक विक्रमादित्य की उपस्थिति में उसके दरबार मे खेला गया होगा और जब एक के बाद एक करके दो बार, पास पास ही यह विक्रम शब्द बोला गया होगा तब दर्शक मण्डली में उसकी कैसी उल्लासपूर्ण प्रतिक्रिया हुई होगी।

१३. (क) जीवानन्द विद्यासागर प्रकाशित अभिज्ञान शाकुन्तल की प्रस्तावना मे विक्रम का स्मरण

श्री जीवानन्द विद्यासागर द्वारा कलकत्ता से सन् १९१४ मे प्रकाशित अभिज्ञान शाकुन्तल नाटक की प्रस्तावना[2] से प्रतीत होता है कि उक्त नाटक काव्य मर्मज्ञ श्री विक्रमादित्य की राजसभा में खेलने के लिए लिखा गया था।

१३. (ख) श्री केशव प्रसाद मिश्र की हस्तलिखित प्रति का साक्ष्य

काशी विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष पंडित केशव प्रसाद मिश्र के पास सुरक्षित अभिज्ञान शाकुन्तल की एक हस्तलिखित प्रति (इस प्रति का लेखन काल अगहन सुदि पचमी, संवत् १६९९ विक्रमीय अर्थात् ईस्वी सन् १६४२ है) की प्रस्तावना से ज्ञात होता है कि कालिदास के आश्रयदाता राजा का वैयक्तिक नाम 'विक्रमादित्य' था और उपाधि साहसाक[3]। विक्रमादित्य उसकी उपाधि

---

१. युक्तमेतत्, अनुत्सेकः खलु विक्रमालंकार। (विक्रमो० अंक १ श्लोक १७ के आगे।)

२. सूत्रधारः—'आर्ये इयहि रसभाव विशेप दीक्षागुरो विक्रमादित्यस्याभिरूप भूयिष्ठा परिपत्। अस्यां च कालिदास ग्रथित वस्तुना नवेनाभिज्ञान-शाकुन्तलनामधेयेन नाटकेनो पस्थातव्यमस्माभिः।" अभिज्ञान शाकुन्तल के जीवानन्द विद्यासागर वाले संस्करण की प्रस्तावना, सन् १९१४, कलकत्ता)

३. सूत्रधारः—"आर्ये रसभाव विशेप दीक्षा गुरो विक्रमादित्य साहसाङ्कस्याभिरूप भूयिष्ठेयं परिपत्। अस्यां च······" (कालिदास ग्रन्थावली के परिशिष्ट में डा० राजबलि पाण्डेय का लेख—विक्रमादित्य पृ ११)

न थी जैसी कि गुप्तवंशी सम्राटों की। चन्द्रगुप्त द्वितीय तथा स्कन्दगुप्त के नाम तो और थे किन्तु उपाधि विक्रमादित्य थी।

१३ (ग) अभिज्ञान शाकुन्तल की प्रस्तावना में विक्रम का निर्देश होना आवश्यक है, न होना अस्वाभाविक।

मालविकाग्निमित्र[1] नाटक कवि की प्रथम रचना प्रतीत होती है क्योंकि उसकी प्रस्तावना में उसने अपना परिचय नए तथा अप्रसिद्ध कवि के रूप मे दिया है और पुराने कवियों—भास आदि के नाटकों के सामने उसकी सफलता में सन्देह प्रकट किया है। विक्रमोर्वशीय की प्रस्तावना में इस प्रकार के सन्देह को स्थान नही मिला। तब तक, कवि मे कुछ आत्मविश्वास उत्पन्न हो चुका था। उसने समझ लिया था कि पहले कवियो के प्रबन्धों के साथ तुलना करने मे उसकी रचना उन्नीस नही तो भी उसने दर्शको से उस उदारता तथा सहानुभूति[2] की याचना की है जो अपने प्रेमियों से की जाती है। यह तो ऊपर लिखा ही जा चुका है कि इस नाटक की रचना विक्रमादित्य की किसी विजय के उपलक्ष मे ही की गई होगी, और इसीलिए उक्त नाटक का नामकरण भी विक्रम के नाम पर किया गया। तब यह बिलकुल स्वाभाविक ही है कि इसके अनेक वर्षो पश्चात्, अपने आश्रयदाता सम्राट से अनेक प्रकार के सम्मान प्राप्त कर चुकने पर, वह अगले नाटक में उसको उचित गौरव प्रदान करे। इसलिए अभिज्ञान शाकुन्तल की प्रस्तावना मे विक्रमादित्य नाम का निर्देश न

---

१. "अभिहितोऽस्मिविद्वत्परिषदा, कालिदास ग्रथित वस्तु मालविकाग्निमित्रं नाम नाटक मस्मिन् वसन्तोत्सवे प्रयोक्तव्यमिति ··· ···।" पारिपार्श्वकः—मा तावत्। प्रथित यशसां भाससौमिलक कविपुत्रादीनां प्रबन्धानति क्रम्य वर्त्तमान कवेः कालिदासस्य क्रियाया कथं वहुमानः।" मालविकाग्निमित्र की प्रस्तावना।

२. सूत्रधार.—मारिष, परिपदियं पूर्वेषांकवीनां दृष्ट रस प्रबन्धा। अहमस्यां कालिदास ग्रथितवस्तुना नवेन नाटकेनोपस्थास्ये। उच्यतां पात्रवर्गः स्वेषुस्वेपु पाठेष्ववहितैर्भ वितव्यमिति।

पारिपार्श्वकः—यथाऽऽज्ञापयति भाव.। (इतिनिष्क्रान्तः)

सूत्रधार—यावदिदानी मार्यं विदग्ध मिश्रान् विज्ञापयामि (प्रणिपत्य)
प्रणयिषु या दक्षिण्यादथवा सद्वस्तु पुरुष बहुमानात्।
शृणुत जना अवधानात् क्रियामिमां कालिदासस्य॥ विक्रमो० प्रस्तावना, श्लोक २॥

होना ही कुछ विचित्र लग सकता है न कि उसका होना। अतः किन्ही प्रतियों में विक्रमादित्य का नाम न देख कर जीवानन्द विद्यासागर वाली अथवा श्री केशव मिश्र वाली हस्त लिखित प्रति की प्रामाणिकता पर सन्देह करना उचित नही।

१४. रघुवंश में पाण्ड्यों की राजधानी उरगपुर कही गई है। अतः कवि का काल ईसा की प्रथम शताब्दी से पूर्व होना चाहिए।

कालिदास ने रघुवंश के सातवे सर्ग मे इन्दुमती की स्वयंवर सभा में आए पाण्ड्य नरेश की राजधानी उरगपुर[1] (कावेरी के तट पर स्थित उराइयूर) लिखी है। श्री चिन्तामणी विनायक वैद्य का कथन है कि इस प्रसंग मे दक्षिण भारत के चोल तथा पल्लव राजाओं का उल्लेख नही है। परन्तु इतिहास से सिद्ध है कि चोल नरेश कारिकाल ने ईसवी सन् की पहली शताब्दी में पाण्ड्यो को परास्त कर दिया था, और इसके वाद तीसरी शताब्दी मे एक वार फिर पाण्ड्यो ने प्रवलता प्राप्त कर अपनी राजधानी मदुरा में स्थापित की। तीसरी शताब्दी के पश्चात् पाण्ड्यो की राजधानी उरगपुर कभी न वनी। अतः कालिदास का काल तीसरी शताब्दी से पूर्व ही होना चाहिए। यदि कालिदास का काल चन्द्रगुप्त द्वितीय का समय माना जाए तो पाण्ड्यो की राजधानी के रूप में मदुरा का नाम आना उचित था। रघु की दिग्विजय के प्रसंग में भी पाण्ड्यों का ही उल्लेख है चोल तथा पल्लवों का नही। इससे भी यही सिद्ध होता है कि कालिदास ईसा की पहली शताब्दी से पूर्व ही विद्यमान रहा होगा। (विक्रम स्मृति ग्रन्थ मे पृष्ठ २७२ पर महामहोपाध्याय श्री विश्वेश्वर नाथ रेऊ का लेख।)

---

१. (क) अथोरगाख्यस्य पुरस्य नाथं दौवारिकी देवसरूप मेत्य।
इतश्चकोराक्षि विलोकयेति पूर्वानुशिष्टा निजगाद भोज्याम्॥

(ख) पाण्ड्योऽयमंसार्पितलम्बहारः क्लृप्ताङ्गरागो हरिचन्दनेन।
आभाति वालातप रक्तसानुः सनिर्झरोद्गार इवाद्रिराजः॥
रघु सर्ग ६, श्लोक ५९, ६०।

(ग) दिशिमन्दायते तेजो दक्षिणस्यां रवेरपि।
तस्यामेव रघोः पाण्ड्याः प्रतापं न विषेहिरे॥ रघु ४ सर्ग का पद्य ४९।

कालिदास ने मेघदूत मे विदिशा को दूर दूर तक प्रसिद्ध तथा दशार्ण देश की राजधानी लिखा है। १४८ ई० पूर्व यह विदिशा शुगवंशीय शासक अग्निमित्र की राजधानी थी। शुग वश मे सब मिला कर दस राजा हुए जिन्होने १८० ई० पू० से ७२ ई० पूर्व तक राज्य किया। इसी काल मे विदिशा को राजधानी रहने का गौरव प्राप्त हुआ। विदिशा के निकट बेसनगर मे प्राप्त एक लेख से पता चलता है कि शुग वशीय नवे राजा भागभद्र के शासन काल मे (११२ ई० पू० से ८१ ई० पू० तक) और उसके राज्यारोहण के चौदहवे वर्ष मे, तक्षशिला के यवन राजा अन्तिलिखिकद के राजदूत हेलियोदोरस ने वहा पर विष्णु भगवान् के सन्मानार्थ एक गरुड़ध्वज का निर्माण करवाया था। (वि० स्मिथ कृत, अर्ली हिस्टरी आफ इण्डिया ६०० ई० पू० से मुसलमानी विजय तक के पृ० २१४ का फुटनोट ३।) इससे सिद्ध होता है कि उस समय विदिशा की ख्याति तक्षशिला तक फैली हुई थी और उसके साथ दूर-दूर के शासक सम्बन्ध स्थापित करना चाहते थे। सारे मेघदूत मे राजधानी विशेषण केवल विदिशा के साथ लगाया गया है और उसे दिशाओं मे प्रसिद्ध भी कहा गया है। शुग काल मे उज्जयिनी अपने सौन्दर्य, वैभव, उदयन आदि राजाओ के कारण ऐतिहासिक महत्व तथा महाकाल के कारण अपने धार्मिक महत्व के लिए अवश्य प्रसिद्ध थी किन्तु राजधानी न थी।

१५. (क) मेघदूत में विदिशा को दूर दूर तक प्रसिद्ध राजधानी लिखा है। यह अवस्था ईस्वी सन् के प्रारम्भ के पश्चात् नही रही।

७२ ई० पू० में कण्वो द्वारा शुग वंश का अन्त हो जाने पर विदिशा राजधानी न रही। पूर्व मे पाटलीपुत्र तथा पश्चिम मे धीरे धीरे उज्जयिनी का महत्व बढ़ गया। इस के पश्चात्, भारत के इतिहास मे, किसी बड़े प्रदेश की राजधानी बनने का गौरव विदिशाको कभी प्राप्त नही हुआ। यह असभव नही कि इसके कुछ समय पीछे भी कई वर्ष तक वह पुरानी राजधानी के रूप में स्मरण की जाती रही हो और पहले राज्याधिकारियो का निवास स्थान होने के कारण उसका राजनीतिक महत्व भी एक दम ही समाप्त न हो गया हो, क्योकि कण्व वंश के संस्थापक वासुदेव ने देवभूति को मार कर उसका राज्य छीन लिया था किन्तु उसके कुल ने केवल ४२ वर्ष ही राज्य किया। इससे ज्ञात होता है कि इन ४२ वर्षो मे भी राजनीतिक संघर्ष तथा उथल पुथल निरंतर होती रही और शीघ्र ही किसी

१५. (ख) ईसा के प्रथम शतक में विदिशा का पतन

शक्तिशाली नये राज्य की स्थापना हो सकी। अतः कालिदास का काल इसके आसपास ही होना चाहिए।

भारत के पुरातत्त्व विभागीय सर्वे की सन् १९०९–१० की रिपोर्ट मे ४०वें पृष्ठ पर निम्न सूचना[1] प्रकाशित हुई है। "सन् १९०९ तथा १० में सबसे महत्वपूर्ण नवीन अनुसन्धान की वस्तु निश्चय ही महाशय मार्शल द्वारा अलाहाबाद के निकट, 'भीटा' स्थान से खोद कर निकाला गया मिट्टी का एक मण्डलक है। पकी मिट्टी के इस सुन्दर मण्डलक को देख कर, कालिदास के शकुन्तला नाटक के एक दृश्य की याद स्वत. ही आ जाती है। इसमे बने चार घोड़ों वाले एक रथ पर सवार दो व्यक्ति सभवत. राजा दुष्यन्त तथा उसका सारथि हैं। एक ऋषि उनसे प्रार्थना कर रहा है कि वे आश्रम के पालतू मृग को न मारे। उसी मण्डलक मे एक कुटिया बनी है जिसके सामने एक कन्या वृक्षों को सींच रही है। यह कन्या, संभवत. नाटक की नायिका शकुन्तला ही है।" उसी रिपोर्ट मे आगे फिर लिखा है कि 'इसमें सन्देह नही कि यह मण्डलक शुंगकाल (१८० ई० पू० से ७२ ई० पू०) का है। अतः कालिदास से बहुत पहले का है। इसलिए इसका संबन्ध शकुन्तला नाटक से जोड़ना ठीक नही'

१३. (घ) भीटा में प्राप्त मण्डलक का साक्ष्य

1. The most important work of research carried out in 1909-10 was undoubtedly Mr. Marshall's excavation at Bhita near Allahabad ...The beautiful tera cotta medallion found by Mr. Marshall reminds us of a scene from. .the Shakuntla. In the two men on the quadringa in the centre of medallion we may perhaps see king Dushyanta and his charioteer who are being entreated by a hermit not to kill the antelope which has taken refuge in Kanva's hermitage. We note also the hermit's hut and in front of it a girl watering the trees in which we may recognise Shakuntla, the heroine of the play." (From the Report of the Archaelogical Survey of India for 1909-10 page 40.)

   The Report continues—"The medallion which must belong to the Sunga period, is no doubt, much anterior to Kalidas, and on that account the identification cannot be regarded as certain.

रिपोर्ट लेखक का अनुचित पक्षपात

रिपोर्ट के लेखक ने कालिदास को शुंगकाल से बहुत पीछे का अर्थात् गुप्तकाल का स्वीकार कर लिया और अपनी इस मान्यता के कारण ही उसे मण्डलक के इस चित्र का सम्बन्ध शकुन्तला नाटक के उक्त दृश्य से न जोड़ने के लिए बाध्य होना पड़ा, और यह कल्पना करनी पड़ी कि सभवत. शुंग काल मे भी कोई ऐसा नाटक या काव्य रहा होगा जिसके आधार पर किसी ने उक्त मण्डलक की रचना की होगी, और कालिदास ने भी संभवत. उसी से अपने नाटक के प्रथम अक के उस दृश्य के लिए प्रेरणा प्राप्त की हो। यहाँ यह स्मरणीय है कि महाभारत के शकुन्तला उपाख्यान मे मृग का पीछा करने तथा उसे न मारने के लिए ऋषि के निषेध का वर्णन नही पाया जाता और मुनि कन्या द्वारा आश्रम के वृक्षों को सीचने की चर्चा भी वहाँ नही है। पद्म पुराण मे यह विषय अवश्य मिलता है किन्तु यदि कालिदास को पद्मपुराण का ऋणी मान लिया जाए तो उसकी मौलिकता तथा महत्व कुछ भी नही रह जाते क्योंकि अभिज्ञान शाकुन्तल की कथावस्तु के वे सब सुन्दर प्रसंग जो कालिदास की प्रतिभा के चमत्कार माने जाते है, अनघड़ रूप में, पद्मपुराण के शाकुन्तलोपाख्यान मे विद्यमान है। इसलिए यही मानना उचित है कि किसी परवर्ती लेखक ने, कालिदास की रचनाओं के आधार पर इन कथानकों का निर्माण करके उनका समावेश उस पुराण मे कर दिया।

१६. (क) मालविकाग्निमित्र नाटक का साक्ष्य

मालविकाग्निमित्र कालिदास का प्रथम नाटक है, यह पहले प्रतिपादित किया जा चुका है। इस नाटक का नायक मगध सम्राट् पुष्यमित्र का पुत्र है जो अपने पिता के विस्तृत राज्य के एक प्रदेश का शासक बन कर तब विदिशा मे शासन कर रहा था। उसने कोई ऐसे महान् कार्य नही किए जिनके कारण कालिदास जैसा महाकवि उसे अपने नाटक का नायक बनाता। इसके उत्तर में साहित्य शास्त्री लोग कह सकते है कि मालविकाग्नि मित्र नाटक शृंगार रस प्रधान है और उसका नायक अग्निमित्र धीरललित[1] नायक है अतः यह आवश्यक नही कि उसने कोई वीरता के कार्य किए हों। धीरललित नायक का वर्णन राज्य कार्यों से निश्चिन्त, सदा

---

१. निश्चिन्तोमृदु रनिशं कलापरो धीरललित. स्यात्॥ साहित्य दर्पण ६ठा परिच्छेद

नृत्य गीत आदि का आनन्द लेने वाले प्रेमी तथा स्वभाव से कोमल प्रकृति वाले पात्र के रूप में किया जाता है और अग्निमित्र में ये सब विशेषताएँ पाई जाती हैं अतः उसे नाटक का नायक बनाने में क्या आपत्ति हो सकती है। वह उस सुप्रसिद्ध[1], मगध सम्राट्, पुष्यमित्र का ज्येष्ठ पुत्र है जिसने अन्तिम बौद्ध राजा बृहद्रथ को मारकर भारत में फिर से ब्राह्मण राज्य की स्थापना की, ग्रीक[2] आक्रान्ताओं को परास्त किया और अश्वमेध[3] यज्ञ किए। उसने स्वयं भी विदर्भ[4] में विद्रोह का दमन किया और उसके पुत्र वसुमित्र ने सिन्धु के दक्षिण तट पर अश्वमेध के घोड़े को पकड़ने वाले यवनों[5] पर विजय प्राप्त की। इस प्रकार उसमें किसी उत्तम नायक के सभी गुण पाए जाते हैं। उसे नाटक का प्रधान पात्र बनाकर कालिदास ने कुछ भी अनुचित नहीं किया।

१६. (ख) अग्निमित्र को नाटक का नायक क्यों बनाया गया?

इस प्रसंग में यह प्रश्न विचारणीय है कि संस्कृत साहित्य के प्राचीन तथा प्रधान नाटकों में केवल मालविकाग्निमित्र ही ऐसा है जिसका नायक रामायण, महाभारत या पुराणों का कोई विशेष व्यक्ति न होकर एक अत्यन्त साधारण राजा है। भास के स्वप्नवासवदत्त नाटक के नायक उदयन तथा हर्ष के नागानन्द नाटक के नायक जीमूत

---

१. (K. P. Jayaswal holds that the Sungas were Brahmanas and occupied a high position in the theological world at that early date. Pushyamitra belonged to the family of the royal chaplain (purohit) of the Mauryas, who though heterodox since Ashoka's reign probably retained the family nominally in its old position. According to the author the later Mauryas were degenerate and politically weak and Pushyamitra was forced to slay Brihadratha in the interest of the empire, which was threatened by the Yavanas or Bactrian Greeks under Menander. (The Early History of India (600 B. C. to...) by V. A. Smith. Page 208 foot note)

२. The invasion was repelled after a severe struggle, and the Greek king was obliged to retire to his own country. (The Early History of India by V. A. Smith page 210.)

३. प्राचीन भारत हिन्दी अनुवाद पृ० १२७ श्री सी० एस० श्री निवासाचारी तथा एम० एस० रामा स्वामी, अनुवादक गोरख नाथ चौबे।

४. 'वशीकृतः किल वीरसेन प्रमुखैर्भर्तुर्विजय दण्डैर्विदर्भनाथः। मालविकाग्निमित्र अंक ५,

५. ततः परान् पराजित्य वसु मित्रेण धन्विना। प्रसह्य ह्रियमाणो मे वाजिराजो निवर्तितः॥ माल० अंक ५ श्लोक १५॥

वाहन की तरह उसका जन्म गन्धर्व विद्याधर आदि किसी देव योनि में नही हुआ। युधिष्ठिर भीम आदि महाभारत के पात्र तो है ही और उनका जन्म भी धर्मराज सूर्य, पवन आदि देवताओ से हुआ है। यद्यपि मुद्राराक्षस नाटक का नायक चन्द्रगुप्त पूर्णतया मानव है तो भी उसे नाटककार ने विष्णु का अवतार मान लिया है। साथ ही वह सारे भारत का स्वतन्त्र सम्राट् और नये राजवंश का संस्थापक है। ये विशेषताएं अग्निमित्र मे नही पाई जाती। यशस्वी कार्यों के कारण यदि नायक का चुनाव करना होता तो उसका पिता पुष्यमित्र अधिक उपयुक्त ठहरता। कवि ने ऐसा क्यों न किया—इस पर कुछ विचार कर लेना आवश्यक प्रतीत होता है।

१६ (ग) ईसा की सातवी शताब्दी के पूर्वार्ध में विद्यमान, बाण ने हर्षचरित मे पुष्यमित्र को स्वामी का वध करने वाला तथा अनार्य लिखा है। कालिदास का काल यदि चन्द्रगुप्त द्वितीय का समय (३७५ ई० पू० से ४१५ ई० पू०) माना जाय तो वह बाण से लगभग २०० वर्ष पूर्व, और यदि ईसा से ५७ वर्ष पूर्व माना जाये तो वह उससे लगभग ६५० वर्ष पूर्व हुआ। दोनों ही अवस्थाओं मे वह पुष्यमित्र तथा अग्निमित्र के कार्यों के सम्बन्ध मे बाण की अपेक्षा अधिक ज्ञान रखता था। अत उनके प्रति जिस रोष तथा निन्दा का आभास हमे बाण के लेख मे मिलता है वे कालिदास के समय और भी अधिक तीव्र रहे होंगे, तब कवि ने जनता के रोप के पात्र इन व्यक्तियो के चरित को अपने प्रथम नाटक की कथावस्तु के रूप मे चुनने का साहस कैसे किया? अवश्य ही इसका कोई कारण होना चाहिए।

उसने सम्राट की उपाधि क्यों न धारण की?

१६ (घ) **पुष्य-मित्र का व्यक्तित्व**—यह सर्वविदित है कि मौर्य वंश के अन्तिम तथा निर्बल राजाओं के राज्यकाल मे बौद्ध धर्म मे बुराइयों ने घर कर लिया था और उसके विरुद्ध वैदिक भावनाएँ उभर रही थी। बौद्धमठ अनाचार के अड्डे बन गए थे तथा भिक्षु-भिक्षुणियो का समाज में सम्मान न रहा था। अन्तिम मौर्य राजा बृहद्रथ निर्बल तथा मूर्ख था। उसने प्रजा को जो आश्वासन दिये थे वह उनका पालन न कर सका। उसका सेनापति पुष्यमित्र ब्राह्मण था। परिस्थिति का लाभ उठाकर संभवत. उसने सम्राट का वध करवा दिया और इसीलिए बाण ने उसे अनार्य कह कर

पुकारा[1] है। जान पड़ता है कि राजा की मृत्यु पर राजधानी मे या देश में कोई आन्दोलन नही हुआ। यदि कुछ थोडी-सी उथल-पुथल हुई भी हो तो उसे दवा दिया गया। पुष्यमित्र ने प्रारम्भ मे कुछ समय के लिए एक स्वामी भक्त सेवक की तरह उसके प्रतिनिधि के रूप में रह कर ही राज्य का सूत्र अपने हाथ में लेना उचित समझा। राजा के वध जैसी महत्वपूर्ण घटना के सम्बन्ध में जनता मे अवश्य ही दो पक्ष वन गए होंगे, एक यदि पुष्यमित्र को इसके लिए दोषी ठहराता होगा तो दूसरा उसे निर्दोष सिद्ध करता होगा। कुछ आश्चर्य नही कि ये दो पक्ष घटना के वहुत वर्ष पीछे तक भी चर्चा के विपय बनते रहे हों और कालिदास का झुकाव दूसरे पक्ष की ओर ही अधिक हो। मालविकाग्निमित्र नाटक के अध्ययन से ज्ञात होता है कि (क) बहुत समय वाद, यहाँ तक कि दिग्विजय के लिए छोड़े गए अश्वमेध यज्ञ के घोड़े के सकुशल लौट आने पर भी पुष्यमित्र[2] अपने को सम्राट न कह कर सेनापति ही लिखता रहा। (ख) अन्त:पुर के कर्मचारी[3] कंचुकी ने राजा अग्निमित्र को मगध से आए पत्र की सूचना देते हुवे उसके पिता को (पुष्यमित्र को) सेनापति ही कहा है सम्राट नही। (ग) अग्निमित्र की रानी धारिणी[4] ने भी अपने श्वशुर के लिए उसी सेनापति पद की

---

१. प्रतिज्ञादुर्वलं च वलदर्शन व्यपदेश दर्शिता शेप सैन्यः सेनानीरनार्यो मौर्यं वृहद्रथं पिपेप पुष्यमित्रः। (हर्पचरित उच्छ्वास ६, पृ. १९९ ववई सस्करण)

२. "स्वस्ति, यज्ञशरणात् सेनापतिः पुष्यमित्रो वैदिशस्थं पुत्रमायुष्मन्तं स्नेहात् परिष्वज्ये दमनुदर्शयति विदित मस्तु। यो सौ राजसूययज्ञ दीक्षितेन मया राजपुत्र शतपरिवृतं वसु मित्रं गोप्तारमादिश्य वत्सरोपात्त नियमो- निरर्गलस्तुरङ्गोविसृष्टः स सिन्धोर्दक्षिण रोधसि चरन्नश्वानीकेन यवनेन प्रार्थित.।" मालवि०—अक ५,

३. "कंचुकी—यदाज्ञापयति देव। (इति निष्क्रम्य सप्राभृतकं लेखं गृहीत्वा पुनः प्रविश्य) अनुष्ठिता प्रभोराज्ञा। अय देवस्य सेनापतेः पुष्यमित्रस्य सकाशात् सोत्तरीय प्राभृतको लेखः प्राप्त.।" (मालविका० अक ५)

४. "धारिणी—(आत्मगतम्) अहो, ततो मुखमेव नो हृदयम्। श्रोष्यामि तावद्गुरुजनस्य कुशलानन्तरं वसुमित्रस्य वृत्तान्तम्। अति घोरे खलु पुत्रकः सेनापतिना नियुक्तः॥" मालविका० अक ५।

इन उद्धरणो की तुलना उत्तर राम चरित के निम्न प्रसंग से कीजिए:

पुनरावृत्ति की। रानी का वह वाक्य 'आत्मगत' है सबको सुना कर नहीं कहा गया। जान पड़ता है कि इस सम्बन्ध में पुष्यमित्र की हार्दिक भावना ही स्वामि भक्ति की रही और वह अन्त तक अपने दिवंगत स्वामी का विश्वास-पात्र रह कर उसके सेनापति या प्रतिनिधि के रूप मे ही शासन करता रहा। राजकाज तथा दूसरे व्यवहारो मे ही नही किन्तु पारिवारिक बोलचाल और पत्र-व्यवहार में भी उसे सेनापति ही कहा जाता रहा। पर यह मानना चाहिए कि किसी कारणवश इस सम्बन्ध मे इतनी अधिक कृत्रिमता तथा सतर्कता से काम लिया गया कि राजपरिवार के व्यक्ति अपने स्वगत कथनों में भी उसे 'सेनापति' ही कहते रहे। कुछ भी हो, यदि यह नाटक उन दिनों खेला गया होगा तो दूसरे पक्ष का समर्थन करने मे इससे अवश्य ही बड़ी सहायता मिली होगी।

मालविकाग्निमित्र के प्रथम तथा पंचम अंक मे एक और भी संकेत मिलता है जिससे पता चलता है कि विदर्भ के राजपरिवार में कुछ सघर्ष चल रहा था। एक पक्ष अग्नि मित्र का पक्षपाती था तथा अपनी बहिन मालविका का सम्बन्ध उससे करना चाहता था, किन्तु उसके चचेरे भाई को मौर्य राजपरिवार की कोई कन्या ब्याही थी, अतः वह उसका शत्रु था। किन्तू अन्त मे अग्नि मित्र ने अपने सैन्य बल तथा नीति बल से उसे भी जीत लिया था।

यदि कालिदास का काल ईसा पूर्व ५७ के लगभग स्वीकार किया जाए तो

श्रीराम का राज्याभिषेक हुए एक दो दिन ही हुए थे। अभिषेक से पहले राजपरिवार के कर्मचारी वृद्ध अधिकारी आदि उन्हे 'रामभद्र' कहते थे। अभिषेक हो जाने पर उन्हे 'महाराज' कहना चाहिए था किन्तु बूढ़े कंचुकी के मुख से पुराने अभ्यास के कारण 'रामभद्र' सबोधन ही निकल गया। बूढ़े को अपनी भूल का ध्यान हुआ और उसने तुरत उसे सुधार लिया। इस पर श्रीराम ने उदारतापूर्वक कहा कि आप अपने अभ्यास के अनुसार ही मुझे बुलाएँ। आप जैसे बडो वूढो द्वारा बोला गया वह प्यार भरा संबोधन मुझे अधिक अच्छा लगता है '(प्रविश्य) कचुकी—रामभद्र (इत्यर्धोक्ते साशकम्) महाराज। रामः (सस्मितम्) आर्य ननु रामभद्र इत्येव मां प्रत्युपचार शोभते तात परिजनस्य तद्यथा भ्यस्त मभिधीयताम्। कंचुकी-देव, ऋष्यश्रृगाश्रमा दष्टावक्रः सप्राप्तः।' श्रीराम द्वारा आश्वासन दिए जाने पर भी यहाँ कचुकी को दुबारा 'रामभद्र' कहने का साहस न हुआ।

स्पष्ट है कि उक्त घटना के कुछ समय पश्चात् ही वे अवश्य विद्यमान रहे होंगे। यह भी संभव है कि बातचीत में 'सेनापति' विशेषण के प्रयोग तथा इसी प्रकार की और भी बहुत सी छोटी-छोटी उपचार की बातें उन्होंने अपने समय के बूढ़े लोगों की मुँह जबानी सुनीं और अपने नाटक में उनका यथावसर उपयोग कर लिया।

पुष्यमित्र ने, प्रत्यक्ष रूप में अपने आपको राजा संभवतः कभी कहा ही नहीं। क्या इसी कारण कालिदास ने उसे अपने नाटक का नायक नहीं बनाया, क्योंकि प्राचीन परम्परा के अनुसार नाटक का नायक कोई राजर्षि[1] ही हो सकता था। और नाटक देखने वाली जनता पर कवि यह प्रभाव उत्पन्न करना चाहता था कि पुष्यमित्र राजा नहीं किन्तु अपने स्वर्गवासी स्वामी का विश्वासपात्र सेनापति मात्र है।

१६. (ङ) मालविकाग्निमित्र का भरत वाक्य

इस प्रसंग में, विद्वानों के विचारार्थ, एक बात और लिख देनी कुछ अनुचित न होगी। संस्कृत नाटकों के अन्त में, भरत वाक्य के रूप में नाटक के वरिष्ठ पात्र के मुख से आशीर्वाद दिलवाने की प्राचीन परम्परा है। इस आशीर्वाद वाक्य का सम्बन्ध नाटक की कथावस्तु से बिलकुल नहीं होता किन्तु कवि के समय के राजा, देश या समाज से ही प्रायः होता है। केवल मालविकाग्निमित्र ही एक ऐसा नाटक है जिसके भरत वाक्य में भी नायक अग्निमित्र[2] का निर्देश किया गया है। क्या इसके द्वारा भी कवि के समय के सम्बन्ध में कुछ विचार किया जा सकता है ? भूलना न चाहिए कि मुद्राराक्षसनाटक के भरत वाक्य में भी चन्द्रगुप्त का नाम आया है जबकि नाटक का नायक भी चन्द्रगुप्त ही है। इसके उत्तर में यह कहा जा सकता है कि संभवतः इस नाटक की रचना गुप्तवंशीय चन्द्रगुप्त के समय में हुई और भरत वाक्य में उसी चन्द्रगुप्त का निर्देश है न कि मौर्यचन्द्रगुप्त का। दूसरी बात यह भी कही जा सकती है कि 'पार्थिवश्चन्द्र गुप्तः' के स्थान पर 'पार्थिवोवन्तिवर्मा'

---

१. प्रख्यात वंशो राजर्षि र्धीरो दात्त प्रतापवान् दिव्योथ दिव्या दिव्यो वा गुणवान्नायको मतः। सा० द० परि० ६०

२. "राजा-त्वं मे प्रसाद सुमुखी भव देविनित्य मेतावदेव हृदये प्रतिपालनीयम्। तथापीद मस्तु—(भरत वाक्यम्) आशास्य मीति विगम प्रभृति प्रजानां संपत्स्यते न खलु गोप्तरि नाग्नि मित्रे ॥ माल० अंक ५ श्लोक २०॥

यह पाठान्तर भी मिलता है। अतः 'चन्द्रगुप्त' वाला पाठ सन्दिग्ध कोटि में चला जाता है।

कतिपय अन्य नाटकों के भरत वाक्यो के साथ तुलना कीजिए—

(क) अभिज्ञान शाकुन्तल—

राजा—अतः परमपि प्रियमस्ति। यदिहि भगवान् प्रियंकर्त्तुमिच्छति तर्हीद मस्तु (भरत वाक्यम्)

प्रवर्ततां प्रकृति हिताय पार्थिवः सरस्वती श्रुति महती महीयताम्
ममापि च क्षपयतु नील लोहितः पुनर्भव परिगत शक्ति रात्म भूः ॥७ अ ३५॥

(ख) विक्रमोर्वशीय—

राजा—यदि मे मघवा प्रसन्नः, कि मतः परमिच्छामि। तथापि इदमस्तु।
(भरत वाक्यम्)

परस्पर विरोधिन्योरेक सं श्रय दुर्लभम्।
संगतं श्री सरस्वत्योभू तयेऽस्तु सदा सताम् ॥

अपिच—सर्वस्तरतु दुर्गाणि सर्वोभद्राणिपश्यतु।
सर्वः कामानवाप्नोतु सर्वः सर्वत्र नन्दतु ॥ ५ अंक श्लो० २४, २५

(ग) मृच्छकटिक—

चारुदत्तः—अतः परमपि प्रियमस्ति।

१. लब्धाचारित्र शुद्धिः इत्यादि (२) काश्चिन्तुच्छयति० इत्यादि।

३. तथापीद मस्तु भरत वाक्यम्—

क्षीरिण्यः सन्तुगावो भवतु वसुमती सर्व संपन्न सस्या,
पर्जन्यः काल वर्षी सकल जनमनो नन्दिनो वान्तु वाताः।
मोदन्ता जन्मभाज' सतत मभिमता ब्राह्मणाः सन्तु सन्तः
श्रीमन्त' पान्तु पृथ्वी प्रशमितरिपवो धर्मनिष्ठाश्चभूपाः ॥
अक १०, श्लो० ६० ॥

(घ) उत्तरामचरित—

रामः—अतः परमपि प्रियमस्ति ? किन्त्विदं भरत वाक्य मस्तु।

पाप्मभ्यश्च पुनाति, वर्धयति च श्रेयासि सेयं कथा,
मागल्या च मनोहरा च जगतो मातेव गगेव च।
तामेतां परिभावयन्त्वभिनयैर्विन्यत रूपा वुधा.
शब्द ब्रह्मविद. कवेः परिणता प्राज्ञस्य वाणीमिमाम् ॥
अक ७ श्लो० २१॥

(ङ) अनर्घराघव—

रामः—भगवन् किमतः परमपि प्रियमस्ति, भगवत्प्रसादात्—

ताताज्ञामधि मौलि मौक्तिकमणिं कृत्वा महापोत्रिणो,

दंष्ट्राविन्ध्य विलास पत्रशवरी दृष्टा भृशं मेदिनी ।

सेतु दक्षिणपश्चिमौ जलनिधी सीमन्तयन्नर्पितः

कल्याणं च कृतं च विश्व-मदश ग्रीवोप सर्गं जगत् ।। अंक ७ श्लोक १५०

तथापीद मस्तु—समुन्मीलत्सूक्त स्तवक मकरन्दैः श्रवणयो

रवि श्रम्य द्धारा सवन मुपचिन्वन्तु कवयः ।

न शब्द ब्रह्मोत्थं परिमल मनाघ्राय च जनः

कवीनां गंभीरे वचसि गुण दोषौ रचयतु ।। अंक ६, श्लोक १५१।।

अपिच—देवस्यात्म भुवः कमण्डलु जल स्रोतासि मंदाकिनी

गगा भोगवती मयानि पुनते यावत्रिलोकी मिमाम् ।

ताव द्वीर यशोरसायन मधुस्यन्दः कवीनामयं

जागर्तु श्रुति-शष्कुली वलयित व्योमावगाही गुणः ।।१५२।।

(च) कुन्दमाला—

वाल्मीकिः—तथापीद मस्तु—

स्थाणुर्वेधा स्त्रिधामा मकरवसतयः पावको मातरिश्वा

पातालं भूर्भुवः स्वश्चतुरुदधिसमाः साम मन्त्राश्च वेदाः ।

सम्यक् ससिद्धविद्या परिणत तपस· पीठिन स्तापसाश्च

श्रेयास्य स्मिन्नरेन्द्रे विदधतु सकलं वर्धता गोकुलं च ।। अंक ६ श्लोक ४५।।

ऊपर जो कुछ लिखा गया है उसका निष्कर्ष यह है :—

१. कालिदास का सम्बन्ध किसी राजा विक्रमादित्य से अवश्य रहा है। (अभिज्ञान शाकुन्तल नाटक की प्रस्तावना तथा विक्रमोर्वशीय नाटक का नाम और उसके प्रथम अक के १५वे तथा १७वे पद्यों के आगे 'विक्रम' शब्द का विशेष प्रयोग ।)

२. विक्रमादित्य उस राजा का नाम था, न कि चन्द्रगुप्त द्वितीय आदि गुप्तवंशीय कतिपय राजाओं की तरह उसकी उपाधि । उसकी उपाधि संभवतः 'साहसाक' रही हो (अभिज्ञान शाकुन्तल की वही प्रस्तावना ।)

३. उसने विशेष पराक्रम के कार्य किए थे, वह कवियो का सत्कार करने वाला तथा काव्य नाटकों का मर्मज्ञ भी था (रामचरित काव्य मे अभिनन्द कवि का पद्य तथा, अभिज्ञान शाकुन्तल नाटक की वही प्रस्तावना ।)

४. शाकुन्तल नाटक ईस्वी सन् के प्रारम्भ होने से पूर्व विद्यमान था (भीटा के पास खुदाई से प्राप्त मण्डलक)

५. अति प्राचीनकाल मे, दक्षिण भारत मे पाण्ड्य नरेशों का प्रभुत्व सर्वोपरि था, और तब उनकी राजधानी उरगपुर (उराईयूर) थी। ईसा की प्रथम शताब्दी मे चोल राजा कारिकाल ने पाण्ड्यो को परास्त कर दिया, और उसके पश्चात् फिर कभी ऐसी स्थिति नही हुई। पाण्ड्यो का जब दुबारा उत्थान हुआ तब उनकी राजधानी मदुरा थी। अत. कालिदास का काल इससे पूर्व ही होना चाहिए।

६ मेघदूत मे विदिशा का वर्णन दिशाओं मे दूर-दूर तक प्रसिद्ध तथा दशार्णदेश (वर्त्तमान पूर्व मालवा तथा भूपाल राज्य) की राजधानी के रूप मे हुआ है। विदिशा की ऐसी स्थिति, ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी के पश्चात् कभी नही हुई। अत' कालिदास का काल इसके आसपास ही मानना चाहिए। (पूर्व मेघ पद्य २६)

७ मालविकाग्निमित्र नाटक मे कवि ने विदिशा के एक साधारण से राजा अग्निमित्र को नायक बनाया न कि अश्वमेध यज्ञ करने वाले, और वैदिक (ब्राह्मण) राज्य के पुन प्रतिष्ठापक उसके पिता पुष्यमित्र को। राजपरिवार से सम्बद्ध बहुत छोटी-छोटी बातों का भी कवि को ज्ञान है और वह पुष्यमित्र द्वारा किए गए राज्य परिवर्तन का भी पक्षपाती प्रतीत होता है। अतः उसका समय शुगों का शासन काल या उसके कुछ ही पश्चात् होना चाहिए। (मालविकाग्निमित्र नाटक।)

१७. विक्रमादित्य तथा कालिदास का सम्बन्ध

विक्रमादित्य तथा कालिदास का परस्पर सम्बन्ध भारतीय भावना मे ऐसा घर कर चुका है कि उन्हे अलग-अलग समयों मे हुए मानने को मन ही नही करता। यदि विक्रमादित्य नामधारी राजा की सत्ता, उसके व्यक्तित्व अथवा काल के सम्बन्ध मे सन्देह उत्पन्न हो जाता है तो उसका कुछ प्रभाव कालिदास के व्यक्तित्व तथा काल पर भी पड़े विना नही रहता। अतः इस प्रसग मे विक्रमादित्य के विपय मे भी अलग से विचार कर लेना आवश्यक प्रतीत होता है।

भारतीय अनुश्रुतियों मे तथा प्राचीन सस्कृत साहित्य मे विक्रमादित्य को परमप्रतापी मालवेन्द्र के रूप मे स्मरण किया जाता है और

१७. (क) अनुश्रुतियों के अनुसार विक्रमादित्य मालवेन्द्रनाथ, शकारि तथा संवत् का प्रवर्त्तक था

उसकी राजधानी उज्जयिनी प्रसिद्ध है। यह भी कहा जाता है कि उसने विदेशी आक्रान्ता शकों का नाश कर, देश को उनके चंगुल से छुड़ाया तथा मध्यभारत के वर्तमान मालवा प्रदेश मे मालवगण को प्रतिष्ठित किया और उसकी इस उज्ज्वल विजय की यादगार में ही विक्रम संवत् प्रचलित हुआ जो आज तक जन्मपत्री[1], लग्नपत्रिका[2], दानपत्र[3], संकल्प[4] पाठ आदि के रूप में

---

१. जन्मपत्री का ढाचा—"श्री गणेशाय नम । यं ब्रह्मा वरुणेत्यादि०। जननी जन्म सौख्याना वर्धनी कुल संपदाम्। पदवी पूर्व पुण्यानां लिख्यते जन्म पत्रिका। अथ शुभ संवत्सरेऽस्मिन् श्री नृपति वीर विक्रमादित्य राज्ये संवत·······, शाके श्री शालिवाहनस्य······ ·तत्र······ मासाना मासोत्तमेमासे ····,··· पक्षे,······ शुभतिथौ ········ ······पुत्र (पुत्री) रत्नमजीजनत्" इत्यादि।

२. लग्न पत्रिका का ढाचा—"अथ शुभ संवत्सरेऽस्मिन् श्री नृपति वीर विक्रमादित्य राज्ये, श्री संवत्·· ··, तत्र शाके श्री शालिवाहनस्य··· · ····, तत्र महा मंगले, मासाना मासोत्तमे ·······मासे, शुभे ··· ·····पक्षे, शुभ········ तिथौ,·········दोष-रहित पाणि ग्रहणम्॥"

३. राजा भोज का दान पत्र—"जयति व्योमकेशौ सौ यः सर्गाय विभर्ति ताम्। ऐन्दवी शिरसा लेखां जग द्बीजाङ्कुराकृतिम्॥ परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर श्री सीयक देव पादानुध्यात—परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर श्री वाक्पति राजदेव पादानुध्यात परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर श्री सिन्धुराज देव पादानुध्यात—परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर श्री भोज देव कुशली नाग ह्रद पश्चिम पथकान्त. पाति वीराणके समुपागतान् समस्त राजपुरुषान् ब्राह्मणोत्तरान् प्रति निवासि पट्टकिल जनपदादीश्च समादिशति—अस्तु वः सं विदितम् यथा अतीताष्ट सप्तत्यधिक साहस्रिक संवत्सरे (सवत् १०७८) माघासित तृतीयायां, रवा वुदगयनपर्वणि, कल्पित हलानां लेख्ये, श्रीमद्धाराया मवस्थितै रस्माभि स्नात्वा चराचर गुरुं भवानीपतिं समभ्यर्च्य, संसारस्यासारतां दृष्ट्वा—'वाताभ्रविभ्रममिदं वसुधाधिपत्यमापातमात्रमधुरो विषयोपभोग। प्राणा स्तृणाग्र जलविन्दु समा नराणां धर्मः सखा परमहो

स्मरणातीत काल से अविच्छिन्न चला आ रहा है और सैकड़ों वर्षों से चली आ रही इस मान्यता पर, अब से पूर्व, कभी किसी को सन्देह नहीं हुआ। किन्तु एक बार सन्देह उत्पन्न हो जाने पर तो उसका निवारण सर्वथा अनिवार्य हो जाता है।

१७. (ख) संकल्प पाठ तथा जन्म पत्री आदि में प्राचीन काल से विक्रम का उल्लेख

ईसा से पूर्व, प्रथम शताब्दी में कोई राजा विक्रमादित्य हो चुका था—इसके विरुद्ध जब तक कोई साधक प्रमाण न मिल जाए, तब तक केवल निषेधात्मक युक्तियों—उस काल में विक्रमादित्य की विद्यमानता को सिद्ध करने वाले उसके सिक्के, ताम्रपत्र या शिलालेख आदि का अभी तक न मिल सकना—के आधार पर, यह नहीं स्वीकार किया जा सकता कि उस काल में कोई विक्रमादित्य नहीं हुआ।

परलोक याने।' इति जगतो विनश्वर स्वरूप माकलय्य उपरि लिखित ग्रामः स्वसीमातृणगोचर यूतिपर्यन्तः सहिरण्य भाग भोग. सपरिकरः सर्वादाय-समेतः ब्राह्मण धनपति भट्टाय भट्ट गोविन्द सुताय,···मातापित्रोरात्मनश्च पुण्ययशो भिवृद्धये अदृष्टफल मगीकृत्य आचन्द्रार्कार्णवक्षिति समकाल यावत् परया भक्तया, शासने नोदक पूर्व प्रतिपादित· इति मत्वा यथा दीयमान भाग भोग हिरण्यादिक माज्ञा श्रवण विधेयैर्भूत्वा सर्वमस्मै समुपनेतव्यम्। सामान्यं चैतत्फलं बुध्वाऽस्मद्वशजैरन्यैरपि भावि भोक्तृ-भिरस्मत्प्रदत्त धर्मदायोऽयमनु मन्तव्य पालनीयश्च, सवत् १०७८ चैत्र, शु० दि० १४ स्वयमाज्ञामगलं, महा श्रीः स्वहस्तोऽय श्री भोजदेवस्य ॥" (साहित्यदर्पण—निर्णयसागर प्रकाशित तृतीय संस्करण सन् १९१५ की दुर्गाप्रसाद लिखित भूमिका पृ० १९।)

४. संकल्प का ढाचा—"ओ तत्सत्। अद्यैतस्य ब्रह्मणोद्वितीये परार्द्धे, श्री श्वेतवराहकल्पे, वैवस्वतमन्वन्तरे, अष्टाविशति तमे कलियुगे, प्रथम चरणे, जम्बूद्वीपे, भरत खण्डे,···अमुक क्षेत्रे, अमुक देशे, अमुक तीर्थे श्री विक्रमादित्य राज्यात्··· अमुक संख्याके संवत्सरे, श्री शालिवाहन राज्यात् अमुक सख्याके···शके, अमुकायने, अमुक ऋतौ, अमुक मासे, अमुक नक्षत्रे, अमुक तिथौ, अमुक वासरे, अमुक नक्षत्रे, अमुक गोत्रो मुक नाम · ·अहं ····अमुक कर्माधिकार प्राप्तये स्नानं कर्म करिष्यामि।" वृहन्नित्य कर्म प्रयोग माला—पण्डित श्रवणदत्त संकलित प्रथमावृत्ति संवत् १९९१ विक्रमीय पृ० ३६।

प्रचलित अनुश्रुति का खण्डन करने के लिए किसी प्रवल सावक प्रमाण की आवश्यकता है। अतः विक्रम सम्वन्धी अनुश्रुति तथा कुल पुरोहितों के उस व्यवहार को मिथ्या नहीं ठहराया जा सकता जिसका पालन संस्कार आदि मांगलिक कार्यों के अवसर पर, न जाने, कव से होता चला आ रहा है।

१७. (ग) गाथा सप्तशती का साक्ष्य

न केवल अनुश्रुति, किन्तु आन्ध्रवंशी सातवाहन राजा हाल के सुभाषित ग्रन्थ, गाथा सप्तशती के पाँचवे शतक के ६४वें[1] पद्य से भी यह सिद्ध होता है कि उससे पूर्व, अपनी दानशीलता के कारण प्रसिद्ध, राजा विक्रमादित्य हो चुका था। सातवाहन श्रीहर्ष के दरवारी कवि वाण से पूर्व हो चुका था, क्योकि हर्पचरित की भूमिका में उसका उल्लेख हुआ है। 'अर्ली हिस्टरी आफ इण्डिया' में विंसैण्ट स्मिथ महोदय ने 'हाल' के समय के विषय में महामहोपाध्याय श्री हरप्रसाद शास्त्री का निम्नलिखित मत उद्धृत किया है 'उसका काल ईसा की प्रथम शताब्दी के पश्चात् नही रखा जा सकता। और हाल की सप्तशती में जिस विक्रमादित्य का नाम लिया गया है, वही संभवतः विक्रम संवत् का प्रवर्त्तक[2], है।'

१७. (घ) वृहत्कथा का साक्ष्य

उपर्युक्त आन्ध्रवंशी राजा हाल के समकालीन कवि गुणाढ्य ने पैशाची भापा में वृहत्कथा (वड्ढ कथा) की रचना की थी। यह ग्रन्थ वाण के समय (ईस्वी ६०४—६४२) विद्यमान था क्योंकि उसने इस ग्रन्थ के विपय[3] में लिखा है। किसी समय यह लुप्त हो गया किन्तु उससे पूर्व ही ११वीं शताव्दी में कश्मीर के दो कवि क्षेमेन्द्र (१०२०-१०६३ ईस्वी) और सोमदेव सूरि (१०२३—१०६४ ईस्वी) ने उसके संस्कृत रूपान्तर वृहत्कथा मंजरी तथा कथासरित्सागर नाम से कर दिए थे जो आज भी मिलते हैं। दोनों में

---

१. प्राकृत गाथा का संस्कृत रूप.
संवाहन सुखरस तोपितेन ददता तव करे लक्षम्।
चरणेन विक्रमादित्य चरित मनु शिक्षितं तस्याः॥

२. अर्ली हिस्टरी ऑफ इण्डिया ६०० वी० सी० टु मुहम्मडन कौन क्वैस्ट, पृष्ठ २२० पर फुटनोट।

३. समुद्दीपितकन्दर्पा कृत गौरीप्रसाधना। हरलीलेव नो कस्य विस्मयाय वृहत्कथा। ह० च० १ उच्छ्वास श्लो० १७।

ही विक्रमादित्य की कथा विस्तार से दी गई है। उनकी एक कथा के अनुसार विक्रमादित्य के पिता का नाम महेन्द्रादित्य तथा माता का सौम्यदर्शना था। पुत्र की इच्छा से महेन्द्रादित्य ने शिव की आराधना की। उन्ही दिनो पृथ्वी को म्लेच्छा क्रान्त देख कर देवताओं ने उसकी रक्षा के लिए शिवजी से प्रार्थना की। उन्होंने अपने एक गण माल्यवान् को आदेश दिया कि वह उज्जयिनी-नाथ महेन्द्रादित्य के यहाँ पुत्र रूप मे जन्म लेकर दुष्टो का संहार करे और उन्होने स्वप्न मे राजा को दर्शन देकर कहा कि तुम्हारे यहाँ जो पुत्र उत्पन्न हो तुम उसका नाम विक्रमादित्य रखना तथा उसने वैसा ही किया। प्रतीत होता है कि पौराणिक शैली का अनुसरण करते हुए कवि ने ऐतिहासिक गण-राज्य को महादेव का गण तथा 'मालव' को माल्यवान् बना दिया। इससे ज्ञात होता है कि कथा सरित्सागर के मूल स्रोत बृहत्कथा के निर्माण से (लगभग ७८ ईस्वी पश्चात्) पूर्व वह विक्रमादित्य हो चुका था जिसने म्लेच्छों का उच्छेद किया तथा अपना सवत् चलाया।

ऊपर अनुश्रुति, पुरोहितो तथा ज्योतिषियो के व्यवहार, और गाथा सप्तशती तथा बृहत्कथा के आधार पर विक्रमादित्य के कालनिर्णय के विषय मे कुछ विचार किया गया है। अब इस मत को पुष्ट करने वाला एक सीधा प्रमाण भी उपस्थित किया जाता है :—

वाराणसी के सस्कृत विश्वविद्यालय के पुस्तकालय सरस्वती भवन मे हरिस्वामी कृत शतपथ भाष्य की सवत् १८४९ अर्थात् १७९२ ई० में लिखी गई, एक प्रति विद्यमान है जिसके अन्त मे निम्नलिखित पाँच पद्य पाये जाते है :—

१७. (ङ) हरिस्वामी की साक्षी

"नाग स्वामी तत्र (याजी) श्री गुह स्वामिनन्दन.। तत्र याजी प्रमाणज्ञ आढ्यो-लक्ष्म्या समेधित'। तन्नन्दनो हरिस्वामी प्रस्फुरद्वेदवेदिमान्। त्रयीव्याख्यान धौरेयोऽधीतमत्रोगुरोमुखात्, य. सम्राट् कृतवान् सप्तसोम संस्था स्तथर्क् श्रुतिम्। व्याख्यां कृत्वाऽध्याप यन्मास्कन्दस्वाम्यस्तिमेगुरु। श्री मतोऽवतिनाथस्य विक्रमस्य क्षितीशितुः। धर्माध्यक्षो हरिस्वामी व्याख्या कुर्वेयथामति ॥४॥

(यदा दीना) यदाव्दानाकलेर्जग्मु सप्तत्रिशच्छतानिवै। चत्वारिशत्समा-श्चा.यास्तदाभाष्यमिदकृतम् ॥५॥

इन श्लोकों से पता चलता है कि भाष्यकार हरिस्वामी के पितामह का नाम गुह स्वामी तथा पिता का नाम नाग स्वामी था। वे यज्ञ याग करने वाले तथा प्रचुर धन धान्य से सपन्न थे। नागस्वामी के पुत्र हरिस्वामी हुए और

उन्होंने वेदों के प्रसिद्ध विद्वान् स्कन्द स्वामी से ऋग्वेद का अध्ययन किया। वे वेदों की व्याख्या करने में कुशल थे। उनके कुल में वेदों के पठन पाठन की गद्दी (वेदी) प्रतिष्ठित थी और वे अवन्ति नाथ विक्रमादित्य के धर्माधिकारी थे। उन्होंने कलि संवत् प्रारम्भ होने के ३०४७ वें वर्ष में अपना शतपथ भाष्य रचा।

कलि संवत् का प्रारम्भ[1] विक्रम से ३०४४ तथा ईसा से लगभग ३१०२ वर्ष पूर्व माना जाता है। और हरिस्वामी ने अपने ग्रन्थ की रचना विक्रमादित्य के धर्माधिकारी पद पर रहते समय विक्रम संवत् ३, अर्थात् ईसा से ५५ वर्ष पूर्व की। इससे सिद्ध होता है कि उज्जयिनी नाथ विक्रमादित्य ईसा से ५८ वर्ष पूर्व विद्यमान थे।

१७. (च) स्कन्द पुराण का साक्ष्य

स्कन्द पुराण[2] में भी विक्रमादित्य का उल्लेख है। उसमे लिखा है कि कलियुग के ३००० वर्ष व्यतीत हो चुकने पर अर्थात् ईसा से लगभग १०० वर्ष पूर्व विक्रमादित्य का जन्म हुआ। अत. विक्रम संवत् का प्रारम्भ इसके लगभग ४०-५० वर्ष बाद हुआ होगा।

१७. (छ) जैन अनुश्रुतियाँ

जैन अनुश्रुति—जैन साहित्य के अनुसार कालकाचार्य नाम वाले चार आचार्य हो चुके है। इनमें से दूसरे आचार्य का ही सम्बन्ध शकों के आक्रमण तथा विक्रमादित्य द्वारा उनकी पराजय की घटना से है जिनका समय वीरनिर्वाण संवत् ४५३ के आसपास माना जाता है। कालकाचार्य की कथा[3] अत्यन्त प्रसिद्ध है अतः यहां उसका निर्देश अत्यन्त संक्षेप से किया जाता है।

---

१. विक्रम संवत् का प्रारम्भ कलि संवत् के ३०४४ वर्ष बाद हुआ। इसमें से ५७ घटाने से ईसवी सन् और १३५ घटाने से शक संवत् आ जाता है। (विक्रम स्मृति ग्रन्थ पृ० ६५)

२. ततस्त्रिषु सहस्रेषु विंशत्या अधिकेषु च भविष्यं विक्रमादित्य राज्यं सोऽथ प्रलप्स्यते। सिद्धि प्रसादाद् दुर्गाणां दीनान्योद्य द्धरिष्यति ॥
(स्कन्द पुराण कौमारिका खण्ड अध्याय ४० के ५२, ५३ पद्य)

३. इस कथा मे मालवा पर शकों के आक्रमण की चर्चा है। यहाँ यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि उक्त कथा को कितना ऐतिहासिक महत्व दिया जा सकता है तथा उन दिनों अर्थात् ईसा की प्रथम शताब्दी के कुछ पूर्व मालवा पर शकों का कोई आक्रमण हुआ भी था या नहीं। उसका उत्तर देते हुए स्टेनकोनो महोदय ने अपने ग्रन्थ खरोष्ट्री इन्सक्रिप्शन्स की भूमिका में पृष्ठ ३६ पर लिखा है कि 'भारत के प्रथम शक साम्राज्य के

कालकाचार्य धारावास के राजा वज्रसिंह के पुत्र थे। वे बड़े विद्वान् तथा तपस्वी थे। वे जब उज्जयिनी मे निवास कर रहे थे तब एक दिन वहाँ के राजा गर्दभिल्ल की कुदृष्टि उनकी छोटी बहिन साध्वी सरस्वती पर पड गई। राजा ने बलपूर्वक उसका अपहरण कर लिया। कालकाचार्य ने उसे छुडाने के लिए अनेक उपाय किए परन्तु वे सब व्यर्थ हुए। निराश होकर आचार्य विदेशियों से सहायता प्राप्त करने के लिए सिन्धु नद को पार कर शकों के देश में जा पहुँचे और वहाँ के ९६ शक सरदारों को उज्जयिनी पर चढाई करने के लिए उभारा। उन्ही दिनों उनके अपने देश पर पड़ौसी राजा चढाई करने की धमकी दे रहा था। उस संकट

इतिहास का पुनर्निर्माण इस प्रकार किया जा सकता है कि ८८ ईस्वी पूर्व मे द्वितीय मित्रदित की मृत्यु के कुछ समय पश्चात् ही सीस्तान के शकों ने अपने आपको पर्थिया की आधीनता से मुक्त कर लिया और वे विजययात्रा करते हुए सिन्धु देश तक पहुँच गए। ... उन्होने ६० ई० पूर्व तक अपना राज्य (कालकाचार्य की कथा मे वर्णित) हिन्दुग देश तक फैला लिया। उसके पश्चात् वे काठियावाड़ तथा मालवे की ओर बढ़े जहाँ उन्होंने संभवतः अपना संवत् भी चलाया, जो हमे उसके प्रायः ७० वर्ष पश्चात् मथुरा मे प्रयोग किया गया मिलता है।' (विक्रमस्मारक ग्रन्थ पृ० १६४)

कालकाचार्य की कथा की ऐतिहासिकता के सम्बन्ध में स्टेन कोनो महोदय अपनी उसी भूमिका के पृष्ठ २७ पर लिखते है कि मुझे तो कोई भी ऐसा कारण नहीं प्रतीत होता जिसके आधार पर, औरों की तरह मै भी इस कथा को असत्य मान लू। कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया के प्रथम भाग के पृष्ठ ५३२ पर रैप्सन महोदय ने भी इस कथा को विश्वसनीय स्वीकार किया है। नार्मन ब्राउन ने भी अपनी कालकाचार्य कथानक की भूमिका मे इसकी ऐतिहासिकता को माना है। (स्टोरी ऑफ कालक पृ० ३) (विक्रम स्मृति ग्रन्थ पृष्ठ १६४)

शारपेन्तियर महोदय की भी यही सम्मति है कि कालकाचार्य कथानक को जो कि ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी या विक्रम संवत् की स्थापना से ठीक पूर्व और पश्चिम भारत के प्रदेश में हुई किसी विशेष घटना की ओर निर्देश करने वाला समझा जाता है, सर्वथा निराधार नही माना जा सकता। (कैम्ब्रिज हिस्टरी ऑफ इण्डिया, जि०द० १, पृ० १६७) (विक्रम स्मृति पृ० ३१)

से वचने के लिए उन्होंने अपना देश त्याग कर हिन्दुग देश (वर्त्तमान मालवा) पर आक्रमण कर दिया। प्रजा भी गर्दभिल्ल से असंतुष्ट थी अतः किसी ने उसकी सहायता न की। शकों ने उज्जयनी जीत ली तथा उनका मुखिया वहाँ राज्य करने लगा। कुछ समय पश्चात् गर्दभिल्ल के पुत्र विक्रमादित्य ने विखरी हुई शक्ति को एकत्र कर शको का नाश कर दिया। विक्रमादित्य अद्वितीय वीर था। उसने अपने बल से शत्रुओं का दमन किया और अपार धन राशि का दान कर प्रजा को ऋण से मुक्त कर दिया तथा अपना सवत् चलाया। (वि० स्मृ० ग्र० पृ० १६५ पर श्री हरिहर निवास के लेख के आधार पर)

१७. (ज) मेरुतुंगाचार्य का साक्ष्य

जैन विद्वान मेरुतुगाचार्य रचित पटावली में, विक्रमादित्य द्वारा शकों की पराजय का समय वीर निर्वाण संवत् ४७० (अर्थात् ५० ईस्वी पूर्व, अथवा विक्रम सवत् के प्रारम्भ से ७ वर्ष पूर्व) बतलाया है। (वि० स्मृति ग्र० पृ० १६४)

१७. (झ) प्रबन्ध कोष का साक्ष्य

प्रवन्ध कोप में भी विक्रम के संवत् प्रवर्तन की यही तिथि (अर्थात् वीर-निर्वाण सवत् ४७०) बतलाई है। धनेश्वर सूरि रचित शत्रुजय माहात्म्य मे विक्रमादित्य के प्रादुर्भाव का काल वीर संवत् ४६६ कहा गया है। इस प्रकार सम्पूर्ण जैन अनुश्रुतियाँ भी विक्रम की विजय घटना तथा उसके इस काल (ईसा पूर्व लगभग ५७ वर्ष) का समर्थन करती है। (वि० स्मृ० ग्र० पृ० १६४)

वीरनिर्वाण काल तथा विक्रम सवत् की गणना मे कुछ वर्षो का अन्तर देखा जाता है। उसका कारण यह है कि प्रवन्ध चिन्तामणि में विक्रम संवत का प्रारम्भ उसकी मृत्यु के दिन से माना गया है, सिहासन बत्तीसी मे पृथ्वी को ऋण निर्मुक्त करने के दिन से तथा कालकाचार्य कथा में शकों को पराजित करने के दिन से। (विक्रम स्मृति ग्रन्थ पृ० १८२) विसैण्ट स्मिथ की अर्ली हिस्टरी ऑफ इण्डिया के पृष्ठ ४९ पर लिखा है कि वीरनिर्वाण की विभिन्न तिथियों का अध्ययन करने पर समस्या उलझती ही जाती है।······कई तर्क सिद्ध करते है कि वीर निर्वाण काल ४६७ ई० पूर्व होना चाहिए। शारपैन्तियर महोदय का भी यही मत है। चन्द्रगुप्त मौर्य के समसामयिक, तथा नन्द के प्रधान मन्त्री भद्रवाहु के काल के सम्वन्ध मे परम्परानुमोदित तिथि के साथ भी इसका मेल वैठ जाता है। महावीर निर्वाण की वहु सम्मत तिथियो मे से एक ५२७-

२८ ई० पूर्व भी है और खारवेल के शिला लेख से भी इसकी पुष्टि हो जाती है। इसकी पादटिप्पणी मे उसी पृ०ठ पर फिर लिखा है कि हार्नल महाशय ने जैनियों मे प्रचलित इन परस्पर विरोधी तिथियो पर विचार किया है और उसका कथन है कि दिगम्बर तथा श्वेताम्बर दोनों ही जैन सप्रदाय वीर निर्वाण का काल विक्रम से ४७० वर्ष पूर्व मानते है जिसने अपना संवत् ५८ ईस्वी पूर्व चलाया था किन्तु दिगम्बर जैन विक्रम संवत् का प्रारम्भ उस राजा के जन्म दिन से तथा श्वेताम्बर जैन उसकी मृत्यु के दिन से गिनते है। और अन्त मे लिखा है कि जैनियों के अनुसार वीर निर्वाण तिथि विक्रम से ५५१, ५४३ तथा ५२७ पूर्व—तीनों ही मानी जाती हैं।

१७ (ञ) इसके विरुद्ध जेम्स फर्गूसन का मत और उसकी अमान्यता

इस पर जेम्स फर्गूसन[१] का कथन है कि विक्रम संवत् का प्रयोग ५४४ ई० से पूर्व किसी सिक्के, ताम्रपत्र या शिला लेख पर नही पाया जाता। इससे सिद्ध होता है कि उससे पहले यह संवत् था ही नही, अन्यथा इसका प्रयोग कही तो मिलता। अत. उक्त विद्वान का अनुमान है कि ५४४ ई० मे मालवा के एक प्रतापी राजा यशोधर्मा[२] ने, मुलतान के निकट कोरूर नामक स्थान पर हूण राजा मिहिरगुल[३] को परास्त कर अपनी इस विजय के उपलक्ष्य मे एक संवत् चलाया और उसे प्राचीनता की झलक देने के लिए, उसका प्रारम्भ तब से ६०० वर्ष पूर्व अर्थात् ५६ ई० पू० घोषित किया। मैक्समूलर ने भी इस पक्ष का समर्थन किया किन्तु इसके कुछ समय पश्चात् ही ऐसे लेख[४] उपलब्ध हो गए जो ५४४ ईस्वी सन् से पूर्व के थे और जिन पर मालव संवत् अंकित था। यह भी सर्व विदित है कि यशोधर्मा की किसी प्रशस्ति पर उसकी उपाधि विक्रमादित्य नही पाई जाती तथा उसने अपने संवत् ५८९ (५३१ ईस्वी) वाले लेख मे स्पष्ट ही मालव गण संवत् का प्रयोग किया है।

---

१. जर्नल ऑफ दि रायल एशियाटिक सोसायटी १८७०, पृ० ८१।

२ यशोधर्मा ने मिहिरगुल को परास्त किया ५२८ ई० (विक्रम सवत् ५८५-८६ के लगभग। विंसेंट स्मिथ की अर्ली हिस्ट्री ऑफ इण्डिया पृ० ३४६।

३ मिहिर गुल का काल ५०२-५४२ ई० (५६०-६०० विक्रमी)

४ सवत् ४३० का कावी अभिलेख तथा सवत् ५२९ का मन्दसौर वाला अभिलेख। (वि० स्मृ० ग्र० पृ० ५५ पर डा० राजबली पाण्डेय का लेख)

यह ठीक है कि संवत् ४६१ से पहले के लेखों पर संवत् के अंक के साथ कृत शब्द का प्रयोग हुआ है। सवत् ४६१ के, "मन्दसौर" मे पाये गये नरवर्मा के लेख में तथा संवत् ४८१ के उदयपुर राज्यान्तर्गत 'नगरी' नामक स्थान पर पाये गये दो वणिक् वन्धुओं के एक लेख में कृत एवं मालव—इन दोनो शब्दों का प्रयोग साथ-साथ हुआ है। उसके पश्चात् सवत् ७९५ तक केवल माल्व गण, मालव वंश या मालवेश आदि शब्दों का ही व्यवहार देखा जाता है और संवत् ८९८ के, धौलपुर में पाये गये चण्डमहासेन के लेख मे ही सर्वप्रथम विक्रम नाम का उल्लेख हुआ है।

१७. (ट) कृत शब्द का प्रयोग

इससे ज्ञात होता है कि संवत् ४६१ से पहले कई शताब्दियों तक संवत् के साथ कृत शब्द का प्रयोग चलता था। सवत् ४६१ से ४८१ तक वह सन्धिकाल रहा जिसमे कृत के साथ मालव शब्द का प्रयोग प्रारभ हो गया। फिर संवत् ४९३ से संवत् ७९५ तक केवल मालव आदि शब्दो का व्यवहार हुआ। सवत् ८९८ से ये शब्द भी हट गए और इनका स्थान विक्रमादित्य या विक्रम ने ले लिया।

यहा यह शंका हो सकती है कि इन—कृत, मालव तथा विक्रम नाम वाले तीनो संवतों को अलग-अलग न मान कर एक ही क्यों स्वीकार किया जाए? इसका उत्तर यह है कि नरवर्मा तथा दो वणिक् वन्धुओ के लेखों में तो कृत तथा मालव—दोनो नामों का प्रयोग साथ-साथ हुआ है इससे सिद्ध है कि ये दोनों नाम एक ही सवत् का सकेत करते है। अव यह प्रश्न शेप रह जाता है कि मालव संवत् तथा विक्रम सवत् भी एक ही क्यों है? इसका उत्तर यह है कि गुप्तवंशी सम्राट् कुमार गुप्त का समय इतिहास मे निश्चित है (संवत् ४७०–५१२) अर्थात् ४१३–४५५ ईस्वी। गवालियर राज्यान्तर्गत दशपुर (वर्तमान मन्दसौर) मे रहने वाले वुनकरो के सघ का एक लेख पाया गया है जिसमें ४९३[1] मालवगण स्थिति काल का उल्लेख है। यह लेख गुप्त सम्राट् कुमारगुप्त के

१७. (ठ) कृत, मालव तथा विक्रम संवत् एक ही है इसका प्रमाण दशपुर के वुनकरों का लेख।

---

१. मालवानां गण स्थित्या याते शतचतुष्टये। त्रिनवत्याधिकेऽब्दाना मृतौसेव्य घनस्वने। सहस्य मास शुक्लस्य प्रशस्ये ऽन्हित्रयोदशे। (एपिग्राफिया इण्डिका भाग १९-२३ का परिशिष्ट 'क' विक्रम स्मृति ग्रन्थ पृष्ठ ५०-५३)

स्थानीय गवर्नर बन्धुवर्मा के समय का है। गणना से सिद्ध होता है कि यह संवत् विक्रम-संवत् ही हो सकता है।

एक ही संवत् के नाम समय समय पर क्यों बदलते चले गए यह प्रश्न भी विचारणीय है और इसका ठीक निर्णय तभी सभव है जब इन लेखो के मिलने के क्षेत्र, उनके काल तथा उनके लेखक शासको के विषय मे गंभीर अध्ययन तात्कालिक भारत के इतिहास के साथ मिलाकर किया जाए।

१७. (ङ) कुछ लेखों पर संवत् का नाम नहीं किंतु वे विक्रम संवत् के ही हैं।

इस प्रसग को समाप्त करने से पहले यह भी लिख देना आवश्यक प्रतीत होता है कि कुछ लेख[1] ऐसे भी पाए गए है जिन पर वर्ष सख्या तो अकित है किन्तु संवत् का नाम-निर्देश नही है। कुछ ऐतिहासिकों का मत है कि वे वर्ष भी विक्रम सवत् के ही है। वर्ष संख्या के साथ संवत् का नाम न होना अधिक स्वाभाविक है न कि उसका होना। आज कल भी दैनिक व्यवहार मे तथा सरकारी कागजों मे दिन मास तथा वर्ष का उल्लेख तो सब करते है किन्तु उसके साथ ईस्वी सन् विक्रमीय या शक आदि शब्दों का प्रयोग प्राय: नही किया जाता, जहा जो संवत् प्रचलित होता है सब जानते है कि अमुक वर्ष-संख्या उसी संवत् की है अत: उसका उल्लेख अनावश्यक समझ कर छोड दिया जाता है, इसी प्रकार का एक लेख पेशावर के पास तख्ते बाही नामक स्थान से पर्थियन राजा गुडुफर्स के समय का प्राप्त हुआ है। यह राजा भारत के उत्तर पश्चिम भाग का स्वामी था। इस लेख में वर्षांक १०३ है पर उसके साथ किसी सवत् का नाम-निर्देश नही है। श्री आर० डी० बैनर्जी इस १०३ अक को शक संवत् (अर्थात् १८३ ईस्वी) मानते है किन्तु विसैण्ट स्मिथ महोदय अपनी पुस्तक अर्ली हिस्ट्री आफ

---

१ (क) तक्षशिला का ताम्रपत्र जिस पर १३६ वर्ष अकित है।

(ख) यूसुफ जई प्रदेश के पजतर स्थान के समीप प्राप्त शिला लेख पर १२२ वर्ष श्रावण प्रतिपदा का उल्लेख है।

(ग) पेशावर जिले मे तख्तेवाही स्थान पर जो लेख मिला है वह राजा गुडुफर्स के राज्य के २६ वे वर्ष का है और उस पर वैशाख पंचमी १०३ खुदा हुआ है। इसके विषय में रेप्सन कहता है कि इसमें सन्देह नही कि यह वर्ष विक्रम संवत् का है जिसका प्रारम्भ ५८ ई० पूर्व हो चुका था (कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया जिल्द १ पृ० ५७६।) विक्रम स्मृति ग्रन्थ पृष्ठ २४।

नियमों की उपेक्षा कालिदास की रचनाओं में भी अश्वघोप की रचनाओं से कुछ कम नही पायी जाती।

प्राकृत भाषा सम्बन्धी युक्ति का खण्डन

कालिदास को अश्वघोप का परवर्ती मानने वाले विचारकों की सबसे प्रबल युक्ति प्राकृत भाषा सम्बन्धी है। किन्तु हम समझते है कि उनकी यही युक्ति सबसे निर्बल है। पाली प्रथम प्राकृत समझी जाती है। अश्वघोप ने बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया था। यह अत्यन्त स्वाभाविक है कि महायानी बौद्ध होने पर भी उनका बहुत अधिक सम्पर्क हीनयानी प्राचीन बौद्ध साहित्य से रहता हो तथा उस साहित्य की भाषा का प्रभाव उनके नाटकों की प्राकृत पर पड़ गया हो। आज भी एक ही नगर मे रहने वाले एक शिक्षित हिन्दू तथा शिक्षित मुसलमान की हिन्दी भाषा में स्पष्ट अन्तर देखा जाता है। कालिदास वैदिक धर्मी थे। उनकी प्राकृत पर पालि का वह प्रभाव नही पड़ सकता था जो अश्वघोप की प्राकृत पर पड़ गया। सत्य तो यह है कि दोनों की ही प्राकृत उस समय की जनता की बोलचाल की भाषा नही है किन्तु प्राकृत व्याकरण के नियमों के अनुसार ढाली हुई संस्कृत का रूपान्तर मात्र है। उदाहरण के लिए तुलसी के रामचरित की भाषा जायसी की भाषा की तरह, बोलचाल की अवधी नही है किन्तु साहित्यिक अवधी है। धर्म भेद के साथ-साथ स्थानीय भेद भी भाषाओं को बहुत प्रभावित किया करता है इसे भी ध्यान में रखना चाहिए। अतः ऐसे आधार पर कालिदास को अश्वघोप का परवर्ती ठहरा देना उचित प्रतीत नही होता।

इस प्रसंग मे यह भी विचारणीय है कि अश्वघोप के नाटक भारत मे बौद्ध प्रभाव के घट जाने और अन्त में बिलकुल समाप्त हो जाने पर—मंच पर खेले जाने की तो बात ही दूर—पठन पाठन से भी निकल गए, और अब सैकड़ों वर्ष पश्चात्, खण्डित रूप में, भारत से बाहर खोद कर निकाले गए। अतः वे उन परिणामों तथा परिवर्तनो से बच गए जो लिपि करने वालों की भूल चूक के कारण हस्त लेखों मे हो जाया करते हैं या मंच पर खेलने वालों द्वारा समय समय पर तात्कालिक दर्शकों की सुबोधता के लिए जानबूझ कर कर लिए जाते है जबकि कालिदास के नाटक लोकप्रिय होने के कारण इस आपत्ति से न बच सके और उनकी भाषा में परवर्तिता की झलक आ गई। इसके उदाहरण रूप में अभिज्ञान शाकुन्तल के प्रथम अंक मे वह परिवर्धन पेश किया जा सकता है जो उसके कलकत्ता संस्करण मे देखा जाता है। विक्रमोर्वशीय के चतुर्थ अंक में भी

रंगमंच पर मनोरजकता को बढ़ाने के लिए इस प्रकार का परिवर्तन किया गया प्रतीत होता है।

कालिदास गुप्तवंशी राजा स्कंदगुप्त के समय हुए इसकी समीक्षा

स्कंद[1] (स्कंद गुप्त) का नाम कालिदास के काव्यों मे कई वार आया है, स्कंदगुप्त ने विक्रमादित्य[2] उपाधि धारण की थी, उसके पिता कुमार गुप्त की उपाधि महेन्द्रादित्य[3] (महेन्द्र) थी, स्कन्दगुप्त के समय हूणों[4] ने भारत पर आक्रमण किया जिसमे उन्हे हार खानी पडी। कुछ समय पश्चात् उनके दूसरे[5] आक्रमण का भय उपस्थित हो गया। इन तथ्यो के आधार पर कुछ विद्वान् कालिदास को स्कन्द गुप्त का समसामयिक स्वीकार करते है। किन्तु केवल स्कन्द तथा महेन्द्र शब्दों के २, ३ बार प्रयोग के आधार पर इतनी बडी स्थापना कर डालनी

---

१ (क) अथोपयन्त्रा सदृशेन युक्ता स्कन्देन साक्षादिवदेवसेनाम्। रघु सर्ग ७ का १२वा पद्य।

(ख) तत्र स्कन्दं नियतवसति पुष्पमेघीकृतात्मा। पूर्वमेघ ४७।

२. प्राचीन भारत (सी० एस० श्री निवासा चारी तथा एम. एस. रामस्वामी) का हिन्दी अनुवाद द्वितीय संस्करण, पृ० २००।

३. गुप्तवंशीय राजा कुमार गुप्त के सिक्कों पर "परम भागवत महाराजाधिराजश्रीकुमारगुप्त महेन्द्रादित्य" लिखा मिलता है। विक्रमोर्वशीय में महेन्द्र शब्द के विशेप प्रयोग के लिए देखिए कालिदास ग्रन्थावली प्रथम सस्करण पृ० १०८, पृ० १०९, पृ० ११० पर २ वार, पृ० १३४, पृ० १३५ पर पास पास ३ वार,

४ अर्ली हिस्ट्री आफ इण्डिया (वि. स्मिथ) पृ० ३२६ (सन् ४५५ ईस्वी के लगभग)

५. अर्ली हिस्ट्री आफ इण्डिया (वि० स्मिथ) पृ० ३२८ (सन् ४६५ ईस्वी के लगभग) इसके साथ विक्रमोर्वशीय के पृ० १८० पर नारद के इस वाक्य को देखिए। नारद.—राजन् श्रूयतां महेन्द्रसदेशः।

राजा-अवहितोस्मि। नारदः—प्रभावदर्शी मघवा वनगमनाय कृतबुद्धिं भवन्त मनुशास्ति। राजा—किमाज्ञापयति? नारद.—त्रिकाल दर्शिभिर्मुनिभि रादिष्टो महान् सुरासुरसगरो भावी। भवाँश्च सायुगीनः सहायो नः। तेन न त्वया शस्त्रं संन्यस्त व्यम्। विक्रमोर्व० पाचवां अंक १९ तथा २० वे पद्य के बीच मे।

उचित नहीं। यह भी ध्यान देने योग्य है कि कालिदास ने हूणों का वर्णन भारत से बाहर किया[1] है। कुछ आश्चर्य नही कि हूण लोग भारत पर आक्रमण करने से काफी समय पूर्व ही उसके उत्तर पश्चिमीय भाग में आ बसे हों। सबसे बड़ी बात यह है कि स्कन्द गुप्त को अपने समस्त शासन-काल में आन्तरिक तथा बाह्य शत्रुओं से घोर सघर्ष करना पड़ा। विक्रमोर्वशीय में कवि ने जिस विक्रम या नायक का चित्र खीचा है वह वीर तो अवश्य है किन्तु कवि ने उसका चित्रण धीर ललित नायक के रूप में किया है जिस का कुछ भी मेल स्कंद गुप्त के साथ नहीं बैठता।

कालिदास का रचना काल चन्द्रगुप्त द्वितीय के समय से प्रारम्भ होकर स्कंदगुप्त के समय तक चलता रहा हो इस कल्पना के लिए कवि की आयु असाधारण रूप से लम्बी[2] माननी पड़ती है जो साधारणतया सभव नही। अतः इस पक्ष पर अधिक विचार की आवश्यकता ही प्रतीत नहीं होती।

यद्यपि विक्रमोर्वशीय नाटक मे विक्रम नामक कोई पात्र नहीं तो भी इसका नाम विक्रमोर्वशीय है और इसमें कवि ने महेन्द्र,[3] विक्रम[4] तथा चन्द्र[5]

---

१. पारसीकास्ततो जेतुं०, रघु वर्ग ४ या ६०। तत्र हूणवरोधानां० रघु सग ४ का ६८,

२. (क) चन्द्रगुप्त द्वितीय का काल ३७५—४१३ ईस्वी तथा स्कन्दगुप्त का शासन काल ४५५ ईस्वी से ४६७ ईस्वी तक,

(ख) रघुवंश में पाया जाने वाला यह शब्द (हूण) संभवतः प्रारंभ में द्वितीय शताब्दी ई० पू० के ह्यु ग-नू (Hiong-No) के लिए प्रयुक्त किया गया था। कीथ के सस्कृत साहित्य के इतिहास का हिन्दी अनुवाद पृ० ९९।

३. (क) या तपोविशेष शंकितस्य सुकुमारं प्रहरणं महेन्द्रस्य। अंक १, पृ० १०७

(ख) उपस्थित सांपरायो महेन्द्रोऽपि मध्यम ····। अंक १, पृ० १०९

(ग) कि प्रभाव दर्शिना महेन्द्रेण ? अंक १, पृ० ११०

(घ) न महेन्द्रेण, महेन्द्र सदृशानुभावेन राजर्षिणा पुरुरवसा। अंक १, पृ० ११०

(ङ) दिष्ट्या महेन्द्रोपकार पर्याप्तेन विक्रम महिम्ना वर्धते भवान्। अंक १, पृ ११३

(च) भोः अहल्या कामुकस्य महेन्द्रस्य वैद्यः सचिवः उर्वशीपर्युत्सुकस्य च भवतोऽहं द्वावप्यत्रोन्मत्तौ। अंक १, पृ० १२२
(छ) महेन्द्र भवनं गच्छता भगवता···। अंक २, पृष्ठ १३४
(ज) सा खलु शप्ता उपाध्यायेन, महेन्द्रेण पुन रनुगृहीता।
अंक २, पृ० १३५
(झ) महेन्द्रेण पुन. प्रेक्षावसाने ····। अंक २, पृ० १३५
(ञ) सदृश मेतत् प्रकर्षान्तिरविदो महेन्द्रस्य। अंक २, पृ० १३५
(ट) इदानी महेन्द्र संकीर्तनेन स्मृतः समयो मम हृदयमायासयति।
अंक ५, पृष्ठ १७७
(ठ) अहंपुरा महाराजगृहीतहृदया गुरुशाप संमूढा महेन्द्रेण आज्ञापिता।
अंक ५, पृ० १७७
(ड) राजन् श्रूयतां महेन्द्र सन्देश.। अंक ५, पृ० १८०
(ढ) उपनीयता स्वयं महेन्द्रेण संभृतः कुमारस्यायुषो यौवराज्याभिषेकः। अंक ५, पृ० १८०
(ण) अनुगृहीतोऽस्मि मघवता (महेन्द्रेण) अंक ५, पृ० १८२

४. (क) दिष्ट्या महेन्द्रोपकार पर्याप्तेन विक्रममहिम्ना वर्धतेभवान्। अंक १, पृ० ११३
(ख) अनुत्सेकः खलु विक्रमालंकार.। अंक १, पृ० ११३

५. (क) सदृशमेतत्सोम वंश संभवस्य। अंक १, पृ० १०८
(ख) राजर्षे. सोमदत्तो रथो दृश्यते। अंक १, पृ० १०९
(ग) अथवा चन्द्रादमृत मिति किमाश्चर्यम्? अंक १, पृ० १११
(घ) एताः सुतनु मुखं ते सख्यः पश्यन्ति हेम कूट गताः। अंक १, पृ० १११
उत्सुक नयना लोका श्चन्द्र मिवो पप्लवान्मुक्तम्। पद्य ११
(ङ) विशाखा सहित इव भगवान् सोमः समुपस्थितो राजर्षिः। अंक १, पृ० १११
(च) प्रथमोदित इव चन्द्रः कौमुदीमिव त्वां प्रतीच्छति। अंक २, पृ० १२४
(छ) मणि हर्म्य पृष्ठे सुदर्शनश्चन्द्रः। अंक ३, पृ० १३७
(ज) भोः प्रत्यासन्नेन चन्द्रोदयेन भवितव्यम्। अंक ३, पृ० १३७
(झ) एष उदितो राजा द्विजातीनाम्। अंक ३, पृ० १३७
(ञ) (प्रांजलि प्रणम्य) भगवन् क्षपानाथ, रविमावसते···हर चूडा-

इस पक्ष की समीक्षा

किया जा सकता। बहुत संभव है कि रंग मंच पर अधिक खेले जाने के कारण कालिदास की भाषा में समय-समय पर कुछ परिवर्तन करके उसे समयानुकूल बनाया जाता रहा। इसलिए उसकी प्राकृत कुछ अर्वाचीन प्रतीत होती है अश्वघोष की नहीं क्योंकि उसके नाटक चिरकाल से विस्मृति के गर्भ में ही पड़े रहे। हिन्दु युग में वे प्रायः उपेक्षित रहे और उनका अभिनय संभव न था।

२२. मेघदूत की टीका में मल्लिनाथ को भ्रम हुआ है।

२३. यदि कालिदास गुप्त वंश के समय हुवे होते तो बहुत संभव था कि मेघदूत में उदयन के साथ कवि विक्रम को भी स्मरण करता। अतः सिद्ध होता है कि कालिदास प्रथम विक्रम के समय ईसा से लगभग ५०, ६० वर्ष पूर्व ही हुआ।

कालिदास का जन्म स्थान

तैत्तिरीय उपनिषद् में एक वाक्य[1] आता है कि उसने (ब्रह्म ने) सृष्टि का निर्माण किया और आप भी उस ही मे समा गया। अर्थात् उसकी बनाई सृष्टि के अतिरिक्त उसका कोई अन्य चिह्न दृष्टिगोचर नही होता। महाकवि कालिदास के सम्बन्ध मे भी यह उक्ति पूर्णतया चरितार्थ होती है। उसने अपने जन्म से किस देश तथा काल को गौरवान्वित किया इस प्रश्न का उत्तर देना अत्यन्त कठिन समस्या बना हुआ है क्योंकि कवि की रचनाओं के अस्पष्ट अन्त साक्ष्यों के अतिरिक्त कोई भी ऐसे निश्चयात्मक प्रमाण उपलब्ध नही होते जिनके आधार पर इन प्रश्नो का ठीक-ठीक निर्णय किया जा सके। कालिदास भारत के ही नही अपितु विश्व के मूर्धन्य कवियों मे विशिष्ट स्थान रखते हैं। उनसे निकट संपर्क स्थापित करने की इच्छा किसके हृदय मे न होगी ? सभवतः यही कारण है कि भारत के विभिन्न प्रदेशों के विद्वान् अपनी अपनी भावना के अनुसार उन्हे अपने ही प्रदेश का निवासी समझते है। इसमें उनका विशेष दोष भी नही, क्योंकि कवि ने उन सभी प्रदेशों का ऐसा सजीव तथा भावुकता-पूर्ण वर्णन किया है कि पाठक यह अनुभव किए बिना नही रह सकता कि वैसा वर्णन वहाँ पर चिर काल तक निवास तथा उससे विशेष आत्मीयता के बिना संभव नही।

१. कवि ने अपने जन्म स्थान के विषय में स्वयं कुछ नहीं लिखा

कवि के जन्म स्थान के विषय मे चार मत प्रसिद्ध है। उनकी समीक्षा करके विद्वानों के विचारार्थ यहाँ अपने मन्तव्य को उनके समक्ष रखने का यत्न किया जाता है। आशा है पाठक निष्पक्षपात होकर सब मतो पर विचार करने की

२. चार पक्ष

---

१. तत्सृष्ट्वा तदनुप्राविशत्। तैत्तिरीय २–६।

कृपा करेंगे क्योंकि वे ही सत्यासत्य का निर्णय करने की क्षमता रखते है। सोना खरा है या खोटा इसकी परीक्षा अग्नि में ही होती है।[1]

३. रघुवंश की रचना में तीन प्रकार के तत्त्व
क. रोचक कथाएँ
ख. शिक्षा
ग. ऐतिहासिक निर्देश

कालिदास के काव्यों मे रघुवंश कवि की अन्तिम रचना है। इस काव्य मे कवि ने रघु के वंश का वर्णन किया है। पुराणों में सूर्य वंश की जो नामावली दी गई है कवि ने यत्किंचित् उलट फेर के साथ उसे ही स्वीकार कर लिया है। रघुवंश में रामचरित का आधार बाल्मीकि रामायण है इसमे तो सन्देह ही नहीं। किन्तु दिलीप, रघु, अज तथा कुश और अग्नि वर्ण के चरित तथा उनमें वर्णित रोचक घटनाओं—संतान प्राप्ति के लिए दिलीप द्वारा गोसेवा, रघु का इन्द्र से युद्ध, रघु की दिग्विजय यात्रा, कौत्स को गुरु दक्षिणा का धन देने के लिए रघु का कुबेर पर आक्रमण करने का विचार तथा धन प्राप्ति, अज की प्रियंवद गन्धर्व से मित्रता तथा संमोहनास्त्र की प्राप्ति, इन्दुमती स्वयंवर, विवाह का दृश्य, रघु का वानप्रस्थ होना, पारिजात के फूल की चोट से इन्दुमती की मृत्यु तथा अज का विलाप, कुश का स्वप्नदर्शन और अयोध्या का पुनरावासन, नागकन्या कुमुद्वती का कुश से विवाह, तथा अन्त में, अतिथि, सुदर्शन और अग्नि वर्ण के चरित—की सृष्टि कवि ने अपनी कल्पना से ही की है क्योंकि इनका कुछ भी निर्देश रामायण या पुराणो मे नही मिलता। इनमे से कुछ प्रसंग तो पौराणिक शैली पर लिखे गए है और उनके लिखने मे कवि का मुख्य उद्देश्य काव्य को मनोरजक बनाना ही रहा होगा, गौण लक्ष्य भले ही कान्ता सम्मिततया उपदेश देना या किसी प्रिय सिद्धान्त अथवा मान्यता का निरूपण करना भी रहा हो। उदाहरणार्थ गोसेवा वाले प्रसंग का गौण लक्ष्य सभवतः गो भक्ति का महत्व तथा इन्द्र द्वारा अश्वमेध के घोड़े के न लौटाने के वर्णन का उद्देश्य यज्ञों मे पशुहिंसा के प्रति कवि की अरुचि, और अग्निवर्ण के चरित-वर्णन में उसका ध्येय विषयों मे अत्यधिक फँसने की हानि का प्रतिपादन करना रहा होगा। किन्तु कुछ प्रसग तथा निर्देश अवश्य ही ऐसे हैं जिन्हे कवि ने या तो अपने समय की राजनीतिक अवस्थाओं से प्रभावित होकर सहज स्वभाव से ही लिख डाला है या खूब सोच समझ कर किसी विशेष उद्देश्य से ही उनका समावेश किया है। इस प्रकार के प्रसंगों या निर्देशों से कवि के देश काल आदि

---

१. तं सन्तः श्रोतुमर्हन्ति सदसद् व्यक्ति हेतवः।
हेम्नः संलक्ष्यते ह्यग्नौ विशुद्धिः श्यामिकाऽपिवा। रघु० सर्ग १० श्लो०

के विषय मे बहुत प्रकाश पडता प्रतीत होता है। अतः यदि इनका अध्ययन दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व से चतुर्थ शताब्दी ईसा के पश्चात् तक के भारतीय इतिहास के साथ मिला कर ध्यानपूर्वक किया जाए तो कवि के विषय मे बहुत कुछ जानकारी प्राप्त की जा सकती है। मगध का निर्देश भी रघुवश मे कुछ ऐसा ही ऐतिहासिक महत्व रखता है।

४. मगध पक्ष
(क) रघुवंश का साक्ष्य

सुदक्षिणा मागधी थी—कवि लिखता है कि दिलीप का जन्म सूर्यवश के प्रथम राजा वैवस्वतमनु[1] के कुल मे हुआ और इसका समर्थन पुराणो से भी होता है। किन्तु उसकी पत्नी[2] का क्या नाम था और वह किस कुल की थी, इस विषय मे रामायण तथा पुराण चुप है। भारतीय परम्परा के अनुसार रामायण की घटना अत्यन्त प्राचीन है तथा उस समय मगध राज्य की सत्ता ही न थी। फिर भी कवि ने दिलीप की पत्नी को मगध वश की राज कन्या लिखा और कहा कि, वह बड़ी उदार थी तथा इतनी दान दक्षिणाएँ दिया करती थी कि उसका नाम ही सुदक्षिणा प्रसिद्ध हो गया था। ऐसा लिखने मे कवि का कोई विशेष अभिप्राय अवश्य रहा होगा। यह नही माना जा सकता कि लिखते समय कवि के मन मे जो कुछ आ गया उसी के अनुसार उसने यह लिख मारा। रघुवश के तीसरे सर्ग मे फिर दो बार[3]

---

१. वैवस्वतो मनुर्नाम माननीयो मनीषिणाम्।
आसीत् महीक्षिता माद्यः प्रणवश्छन्दसामिव ॥ १– ॥

२ तदन्वये शुद्धि मति प्रसूत. शुद्धिमत्तरः।
दिलीप इति राजेन्दुरिन्दु. क्षीरनिधाविव ॥ रघु० सर्ग १ श्लोक १२ ॥
तस्य दाक्षिण्यरूढेन नाम्ना मगध वशजा।
पत्नी सुदक्षिणेत्यासी दध्वरस्येव दक्षिणा ॥ रघु० सर्ग १ श्लोक ३१ ॥

३. तयोर्जगृहतुः पादान् राजा राज्ञी च मागधी।
तौगुरुर्गुरु पत्नी च प्रीत्या प्रति ननन्दतुः ॥ रघु सर्ग १ श्लोक ५७ ॥
न मे ह्रियार्शसति कि चिदीप्सित स्पृहावती वस्तुषु केपु मागधी।
इति स्म पृच्छत्यनु वेल मादृतः प्रिया सखी रुत्तर कोसलेश्वरः ॥
रघु० सर्ग ३ श्लोक ५ ॥
सुख श्रवा मगल तूर्य निस्वनैः प्रमोद नृत्यैः सह वारयोषिताम्।
न केवल सदमनि मागधीपते. पथि व्यजृम्भन्त दिवौकसामपि ॥
रघु० सर्ग ३ श्लोक १९ ॥

सुदक्षिणा का कीर्तन मागधी शब्द से तथा राजा दिलीप का स्मरण मागधीपति विशेषण के साथ किया गया है जिससे प्रतीत होता है कि मगध की राजकुमारी का पति होना, कवि की दृष्टि मे उत्तर कोसल देश के राजा के लिए सम्मान का कारण था। इससे भी कवि ने मगध का ही गौरव प्रकट किया।

(ख) सुमित्रा भी मागधी थी

रघुवंश के तृतीय सर्ग में दिलीप को तथा नवम सर्ग में दशरथ को उत्तर कोसल का राजा कहा गया है। इस प्रदेश की राजधानी अयोध्या थी। दशरथ का विवाह दक्षिण-कोसल की राजकुमारी कौसल्या से हुआ था जैसा कि 'कोसल्या' नाम से ही प्रकट है। दूसरी रानी केकयी केकय देश की राजकुमारी थी इसका साक्ष्य भी रानी का 'केकयी' नाम ही है। किन्तु तीसरी रानी सुमित्रा[१] कहां की राज कन्या थी यह उसके नाम से ज्ञात नही होता। यह भी असम्भव नही कि वह किसी राजवंश की न हो और इसी लिए यज्ञ की वह खीर, जो पुत्रेष्टि यज्ञ मे अग्नि पुरुष से प्राप्त हुई थी, राजा दशरथ ने उसे सीधी न दे कर कौसल्या तथा केकयी द्वारा कृपा पूर्वक दिलवाई। सुमित्रा के कुल के विषय में किसी लिखित प्रमाण के अभाव का लाभ कवि ने उठाया और उसे भी मगध की राजकन्या कह दिया। कवि के समय और भी कई राजवंश फल फूल रहे थे, तो भी उसने उक्त दोनों महारानियों का सम्बन्ध मगध से ही क्यों जोड़ा, यह विचारणीय अवश्य है।

४. (ग) रघु की दिग्विजय में मगधेश्वर की हार नहीं दिखाई गई

रघुवंश के चौथे सर्ग में रघु की दिग्विजय का वर्णन किया गया है। वर्षा ऋतु समाप्त होते ही नदियो के जल उतरने लगे, दलदल सूख गए और मार्ग यात्रा के योग्य हो गए। राज्य की आन्तरिक रक्षा का समुचित प्रवन्ध करके रघु ने दिग्विजय के लिए कूच किया। नगर की नारियों ने उस पर मांगलिक लाज की वृष्टि की और उसकी

---

१. तमलभन्त पतिं पति देवताः शिखरिणामिव सागर मापगाः।
मगध कोसल केकयशासिनां दुहितरोऽहितरोपित मार्गणम्॥
रघु० सर्ग० ९ श्लोक ९॥
अर्चिता तस्य कोसल्या प्रिया केकय वंशजा।
अतः संभवितां ताभ्यां सुमित्रा मैच्छ दीश्वरः॥ सर्ग ९ श्लोक ५५
ते वहुज्ञस्यचित्तज्ञे पत्न्यौ पत्युर्महीक्षितः।
चरोरर्धार्ध भागाभ्यां तामन्योजयतामुभे॥ रघु० सर्ग १० श्लोक ५६॥

विजय वाहिनी ने सर्वप्रथम[1] पूर्व की ओर कदम बढ़ाया। कोई भी राजा उसके सामने न टिक सका और वह पूर्वसागर[2] के तट तक जा पहुँचा।

भारत के मानचित्र को देखने से पता चलता है कि अयोध्या से पूर्व की ओर चलने पर रघु की मुठभेड सर्व प्रथम मगधेश्वर से होनी आवश्यक थी। किन्तु कवि ने इस विषय मे, न जाने क्यों, मौनावलम्बन ही उचित समझा। कोई कह सकता है कि कवि के या रघु के समय मगध राज्य की सत्ता न हो या वह इस योग्य न समझा गया हो कि कवि उसका निर्देश करे। किन्तु इसका खण्डन रघुवश के छठे सर्ग मे वर्णित इन्दुमती के स्वयंवर के प्रसंग से हो जाता है जहाँ कवि स्वयंवर सभा मे सर्व प्रथम[3] स्थान मगधेश्वर को प्रदान करके इन्दुमती के प्रणाम[4] के वहाने अपनी भक्ति के पुष्प भी उसके चरणों मे चढ़ा देता है।

४. (घ) स्वयम्वर सभा में मगधेश्वर को प्रथम स्थान दिया गया

इसी प्रसग मे कवि ने मगधेश्वर को जो विशेषण दिए है वे भी विशेष अभिप्राय रखते है। उसे सर्व प्रथम शरणागतों का रक्षक[5] कहकर क्या कवि ने उस ही के आश्रय मे अपने निवास की सूचना तो नही दी? कवि के हृदय मे आदर्श राजा का प्रधान गुण प्रजानुरंजन[6] है। इसी के कारण उसने राजा के 'राजा' इस शब्द की सार्थकता स्वीकार की है। मगधेश्वर को भी उसने प्रजानुरंजन के कारण यशस्वी कहा है। उसने अनेक बड़े-बड़े यज्ञ[7] किए है और यद्यपि पृथ्वी मे

१. स ययो प्रथमं प्राची तुल्य. प्राचीन बर्हिषा। रघु० सर्ग १, श्लोक २८
२. पौरस्त्यानेवमाक्रामंस्तां स्तान् जनपदान्जयी।
   प्राप तालीवनश्याम मुपकण्ठ महोदधेः। रघु० सर्ग १ पद्य ३४।
३. ततो नृपाणां श्रुत वंश वृत्ता पुंवत्प्रगलभा प्रतिहाररक्षी।
   प्राक्सन्निकर्षंमगधेश्वरस्य नीत्वा कुमारी मवदत्सुनदा॥
   रघु० सर्ग ६ श्लोक २०
४. एव तयोक्ते तमवेक्ष्य किंचिद्विस्रंसिदूर्वाङ्क मधूकमाला।
   ऋजुप्रणाम क्रिययैव तन्वी प्रत्यादिदेशैन मभाषमाणा॥ २६॥
५. असौशरण्य. शरणोन्मुखाना मगाधसत्वो मगध प्रतिष्ठः।
   राजा प्रजारजन-लब्धवर्णः परतपो नाम यथार्थनामा॥ २१॥
७. क्रिया प्रवन्धादय मध्वराणा मजस्र माहूत न सहस्र नेत्रः।
   शच्याश्चिर पाण्डु कपोललंबान् मंदार शून्या नलकांश्चकार॥
   सर्ग ६, श्लोक २३

राजा तो सैकड़ों है किन्तु वह राजन्वती[८] केवल मगधेश्वर के कारण ही कहलाती है जैसे कि हजारों तारों के रहते भी केवल चन्द्रमा के कारण ही रात चाँदनी होती है।

४. (ङ) मगध से कवि का सम्बन्ध अवश्य है मगर वह उसका जन्म स्थान नहीं है

रघुवंश से उद्धृत मगध सम्बन्धी उपर्युक्त निर्देशों से सिद्ध है कि किसी मगधेश्वर से कविका विशेष सम्बन्ध अवश्य है और वह उसकी कृपाओं के लिए उसका ऋणी है। कवि के हृदय में उसके प्रति असाधारण श्रद्धा तथा भक्ति विद्यमान है। संभव है कि मगधेश्वर की महारानी भी उसे समय-समय पर दक्षिणाओ और पुरस्कारो से सम्मानित किया करती होंगी। यह सब होने पर भी उस देश तथा वहाँ के निवासियों और उनके जीवन के प्रति वैसा अनुराग या आकर्षण कवि के हृदय मे प्रतीत नही होता जैसा कि उज्जयिनी के वर्णन में पाया जाता है। राजाश्रित होने के कारण, कवि को कर्त्तव्यवश, मगध के राजदरवार में तथा कभी-कभी अन्य स्थानों पर भी रहना पड़ता होगा। कुछ आश्चर्य नही कि वर्षो रहने के पश्चात् भी उसके जीवन का ताल-मेल वहाँ के जीवन से न वैठा हो।

४. (च) मगध पक्ष का उपसंहार

रावण का वध कर, लंका से अयोध्या को लौटते हुए श्री राम ने अपनी जन्म भूमि तथा उससे लगकर वहती हुई सरयू का अभिनन्दन जिन स्नेहसने शब्दों से किया है वे देखने योग्य हैं वे कहते है कि इस सरयू का उद्गम उस मानसरोवर से हुआ है जिसके सुनहरे सरोजों के पराग से यक्ष-

---

८. कामंनृपाः संतु सहस्रशोऽन्ये राजन्वती माहुरनेनभूमिम्।
नक्षत्र तारा ग्रह संकुलापि ज्योतिष्मती चन्द्रमसैव रात्रिः।
रघु सर्ग ६ श्लोक २२।

१. पयोधरैः पुण्यजनाङ्गनानां निर्विष्ट हेमाम्बुज रेणु यस्याः।
ब्राह्मं सरः कारणमाप्तवाचो वुद्धेरिवाऽव्यक्त मुदाहरन्ति ॥
जलानि या तीर निरवातयूपा वहत्ययोध्यामनु राजधानीम्।
तुरंगमेवावभृथावतीर्णै रिक्ष्वाकुभिः पुण्यतरीकृतानि ॥
यां सैकतोत्संग सुखोचितानां प्राज्यैः पयोभिः परिवर्धितानाम्।
सामान्यधात्रीमिवमानसं मे संभावयत्युत्तर कोसलानाम् ॥ रघु० सर्ग १३ श्लोक ६०, ६१, ६२

वनिताओं के स्तन अलंकृत हुआ करते हैं। इसके तट पर मेरे पूर्वजों ने समय-समय पर अनेक यज्ञ किए थे जिनके यूप आज भी वहाँ गड़े हुए हैं। अश्वमेध यज्ञ करके वे इसी के जल में स्नान किया करते थे जिससे वह पवित्र हो गया है। और उन्ही जलों को यह सरयू अयोध्या के लिए ला रही है। उत्तर कोसल के निवासी इसी के वलुए मैदान रूपी गोद में खेल-खेल कर पलते और इसी के जल रूपी दूध को पान कर पुष्टि प्राप्त किया करते हैं। मै तो इसे उनके लिए उस धाय के समान मानता हूँ जो अपना दूध पिला कर बच्चे को पाला करती है। स्वर्गवासी पिता दशरथ से बिछुड़ी हुई मेरी माता कौसल्या की तरह ही यह भी शीतल पवन वाले अपने तरंगरूपी हाथों को फैलाकर दूर से ही, मानो मुझे गले लगा लेना चाहती[1] है। कवि को भी अपनी जन्मभूमि तथा वहाँ की वस्तुओं से ऐसा ही स्नेह अवश्य रहा होगा और उसने, कही न कहीं उसे प्रकट भी किया होगा। देखना यह है कि वह कौनसा वन्य प्रदेश है जिसे ऐसे श्रेष्ठ कवि को अपनी गोद मे खिलाने का अवसर प्राप्त हुआ। अब तक की विवेचना के आधार पर यह बात बलपूर्वक कही जा सकती है कि वह प्रदेश मगध नही हो सकता।

५. उज्जयिनी पक्ष
(क) ऋतु संहार की साक्ष्य

यह जन श्रुति प्रसिद्ध है कि कवि कालिदास विक्रमादित्य की राजसभा के नवरत्नों मे प्रधान थे, और विक्रमादित्य उज्जयिनी के राजा थे। यदि यह जनश्रुति कुछ भी साधार हो तो निश्चय ही कालिदास का भी कुछ सम्बन्ध उज्जयिनी से अवश्य रहा होगा। इसकी पुष्टि कवि के ग्रन्थो के अन्तः साक्ष्य से भी हो जाती है। ऋतु संहार कवि की प्रथम रचना है उसमें वह प्रौढ़ता तथा कल्पना की उड़ान देखने को नही मिलती जो उसके दूसरे काव्यों तथा नाटको में पायी जाती है। जान पड़ता है कि कवि अपने जीवन के नव-प्रभात मे ही जीविका की खोज में जन्म स्थान से निकल पड़ा और अनेक प्रदेशों का परिभ्रमण करता हुआ उज्जयिनी पहुँच गया। वहाँ उसे अपना मनचाहा राजाश्रय तथा अनुकूल सहृदय समाज मिल गया और उसके दिन सुख से कटने लगे। ऋतु संहार को देखने से प्रतीत होता है कि उसकी रचना करते समय कवि का निवास स्थान

---

१. सेयं मदीया जननीव तेन मान्येन राज्ञा सरयू वियुक्ता।
दूरे वसन्तं शिशिरानिलैर्मां तरङ्ग हस्तै रूप गूहतीव ॥ रघु० सर्ग १३ श्लोक ६३ .

मध्य भारत के अन्तर्गत विन्ध्य के आस-पास का ही कोई प्रदेश रहा होगा क्योंकि उसमे ग्रीष्म, वर्षा, शरद आदि ऋतुओं के जिस रूप का वर्णन किया गया है वह मध्य भारत के जलवायु के सर्वथा अनुरूप है। वहाँ ग्रीष्म में उग्र सूर्य की धूप बड़ी तीव्र है। शीतल जलो मे स्नान सुहावने लगने लगते है। सायंकाल सब ओर शान्ति फैल[१] जाती है, कामदेव का आवेग विलासिजनों में भी मन्द पड़ जाता है और रात्रियाँ चन्द्रिका से सुखद हो जाती है। परदेश में पड़े जिन प्रेमियों के हृदय अपनी प्रेयसियों की विरहाग्नियो से जल रहे है वे सूर्य की प्रचण्ड धूप से झुलस रही और आँधी के भयकर ववडरों से उड़ी धूल से व्याप्त पृथ्वी की ओर देख नही सकते[२]। भानु के तीव्र आतप से सताए हुए मृगों के तालु घाम के मारे सूख गए है। घुटे हुए सुरमे की तरह श्याम आकाश को दूर से वे पानी समझ उसकी ओर भागे[३] जा रहे है। वन के एक कोने मे सुलगा दावानल पवन के वेग से भड़क कर पहाड़ की घाटियों में फैलता जा रहा है, सूखे हुए बाँसों के जंगलों में चड़-चड़ करता हुआ जल रहा है और घास-फूस के ढेरों को पल भर में भस्म करता हुआ पशु पक्षियों को व्याकुल कर रहा[४] है। फिर वहां कामीजनों का प्यारा पावस किसी घमण्डी राजा की तरह आ पहुँचता है वह पानी वरसाते मेघ रूपी मस्त हाथी पर सवार है, उसकी बिजली रूपी पताकाएँ आकाश मे फहरा रही है और बादलो की गड़गडाहट ही उसके नगाडे की ध्वनि है[५]। वर्षा लगते ही वहाँ कदम्बों के वन पुलकित हो जाते है, अर्जुन खिलने लगते है और केतकी के उपवनों की महक से पवन भर

---

१. प्रचण्ड सूर्यः स्पृहणीय चन्द्रमाः सदावगाह क्षमवारि संचयः ।
दिनान्त रम्योऽभ्युपशान्तमन्मथो निदाघ कालः समुपागतः प्रिये ॥
ऋतु० १-१ ॥

२. असह्य वातोद्धत रेणुमण्डला प्रचण्ड सूर्यातप तापिता मही ।
न शक्यते द्रष्टु मपि प्रवासिभि· प्रिया वियोगानलदग्ध मानसै. ॥ऋतु १-१०॥

३. मृगाः प्रचण्डा तपतापिता भृशं तृषा महत्या परिशुष्कतालव. ।
वनान्तरे तोयमिति प्रधाविता निरीक्ष्य भिन्नाजन सन्निभं नभ· ॥ऋतु १-११।

४. ज्वलति पवन वृद्धः पर्वताना दरीषु,
स्फुटति पटु निनाद. शुष्क वंशस्थलीषु ।
प्रसरति तृण मध्ये लब्धवृद्धिः क्षणेन,
ग्लपयति मृग वर्गं प्रान्तलग्नो दवाग्निः ॥ ऋतु १-२५ ॥

५. ससीकराम्भोधरमत्त कुजर स्तडित्पताकोऽशनि शब्द मर्दलः ।
समागतो राजवदुद्धतद्युति र्घनागमः कामिजन प्रियः प्रिये ॥ ऋतु २-१ ।

जाता है। महिलाएँ मौलसरी, मालती और जूही की फूल मालाओं से अपने जूड़ों को सँवारने लगती है[1]। फिर काश कसुम के शुभ्र वस्त्र धारण किए, विकसित कमल रूपी मुखवाली, शरद ऋतु उस नव वधू के समान वहाँ आ जाती है जिस के चरणों मे रुनझुन बजते नूपुरों की तरह राजहंस मधुर ध्वनि किया करते है और धान के पके हुए लहलहाते खेत रूपी जिसकी कमर बल खा जाया करती है[2]। मोर नाचना भूल जाते है और उनकी मस्ती मधुरस्वर वाले हंस ले लेते है। पुष्पों की शोभा कदम्ब, कुटज, अर्जुन और साल के वृक्षों[3] से हटकर सप्तवर्णो मे पहुँच जाती है। आकाश बारीक पिसे हुए सुरमे के समान श्याम हो जाता है। पृथ्वी जहाँ तहाँ खिले गुलदुपहरी के फूलों से लाल हो जाती है और पहाड़ो के पठार पके हुए धान के खेतों से लहलहा उठते है यह देखकर किस नवयुवक का हृदय उत्कण्ठित नही हो जाता[4]। स्त्रियाँ अपनी घनी घुघरीली काली लटों को चमेली के फूलों और सुवर्ण कुण्डल वाले कानों को नील कमलों से सजाने[5] लगती है। उन्होंने प्रसन्न होकर अपनी छाती पर चन्दन का लेप कर लिया है और उस पर मोतियों के हार धारण कर लिए है। उनकी

---

१. (क) कदम्ब सर्जार्जुन केतकीवनं विकम्पयं स्तत्कुसुमाधिवासितः।
सशीकरा म्भोधरसंग शीतलः समीरणः कं न करोति सोत्सुकम्॥
(ख) शिरसि बकुल माला मालतीभिः समेतां,
विकसित नव पुष्पैर्यूथिकाकुडमलैश्च।
विकच नवकदम्बैः कर्णपूरं वधूनां,
रचयति जलदौघ. कान्तवत्कालएषः॥ ऋतु २–१७, २५॥

२. काशांशुका विकचपद्ममनोज्ञवक्ता, सोन्माद हंसरवनूपुर नादरम्या।
आपक्वशालि चिरा नतगात्रयष्टि. प्राप्ता शरन्नववधूरिव रूपरम्या॥
ऋतु ३–१।

३. नृत्य प्रयोग रहितान् शिखिनो विहाय हंसानुपैति मदनो मधुर प्रगीतान्।
मुक्त्वा कदम्वकुटजार्जुनसर्जनीपान् सप्तच्छदानुपगता कुसुमोद्गमश्रीः॥
३–१३।

४. भिन्नांजन प्रचय कान्ति नभो मनोज्ञं बन्धूक पुष्परजसाऽरुणिता च भूमिः।
वप्राश्च पक्व कलमावृतभूमि भागाः प्रोत्कण्ठयन्ति न मनो भुवि कस्य यून.॥
ऋतु ३ श्लोक ५

५. केशान्नितान्त घननील विकुचिताग्रानापूरयन्ति वनिता नव मालतीभिः।
कर्णेषु च प्रवर कांचनकुण्डलेषु नीलोत्पलानि विविधानि निवेशयन्ति॥
ऋतु ३ श्लोक १९॥

कमर में करधनी और पैरों में मधुर ध्वनि करने वाले नूपुर[१] बजते है। ऋतु-संहार के हेमन्त तथा शिशिर के वर्णनो में भी कुंकुम[२] तथा कालागुरू[३] के लेप, तेल मालिश,[४] मोटे कपड़े,[५] बन्द झरोखे,[६] अंगीठी[७], धूप[८] सेकने, गन्ने[९], चावल[१०], गुड़[११] तथा मदिरा[१२] की चर्चा बार-बार हुई है। शीतल पवन[१३] के चलने, और ओस[१४] टपकने का भी जिकर किया गया है किन्तु पहाड़ों के बरफ से ढँक जाने, जगह-जगह पानियों के जम जाने और खेतों में केसर के फलों के खिलने का कही नाम मात्र को भी निर्देश नही। इसके पश्चात् कवि ने वसन्त का वर्णन करते हुए ऋतु संहार में फिर लिखा है कि स्त्रियों के कानों में लगे पीले कनेर के फूलों, और काली लटों में गुँथे अशोक और चमेली के फलों ने उनके सौन्दर्य को चार चाँद लगा दिए। वापियों के जलों, मणि-निर्मित मेखलाओं, चाँद की चाँदनी, कामिनियों तथा मंजरी के बोझ से झुके आम के वृक्षों को वसन्त ने उनका खोया सौभाग्य पुनः प्रदान कर दिया[१५]।

---

१. हारैः स चन्दनरसैः स्तनमण्डलानि श्रोणीतटं सुविपुलं रसना कलापैः। पादाम्बुजानि कलनूपुर शेखरैश्च नार्यः प्रहृष्ट मनसोऽद्यविभूषयन्ति ॥ ऋतु ३ श्लोक २०

२. पयोधरैः कुंकुम राग पिंजरैः। ऋतु ५ श्लोक ९।

३. गात्राणि कालेयक चर्चितानि। ऋतु. ४ श्लोक ५ ॥

४. अभ्यंजनं विदधति प्रमदाः सुशोभाः ॥ ऋतु ४ श्लोक १८।

५. गुरुणि वासांस्यबलाः सयौवनाः ॥ ऋतु ५ श्लोक २।

६. निरुद्धवातायन मन्दिरोदरं। ऋतु० ५ श्लो० २।

७. हुताशनो ···। ऋतु० ५ का २।

८. भानु मतो गभस्तयः ॥ ऋतु ५ श्लोक २ ॥

९. १० ११. प्रचुरगुड विकारः स्वादु शालीक्षुरम्यः,
प्रबल सुरत केलिर्जात कन्दर्प दर्पः।
प्रियजन रहितानां चित्त संतापहेतुः,
शिशिर समय एषश्रेय से वोस्तु नित्यम् ॥ ऋतु ५ श्लोक १६ ॥

१२. निशासु हृष्टाः सहकामिभिः स्त्रियः पिबन्ति मद्यं मदनीय मुत्तमम्।
ऋतु० ५ श्लोक १०।

१३. १४. शरदिकुमुद संगा द्वायवो वान्ति शीताः ॥ ३ का २१। १६
तृणाग्रलग्नै स्तुहिनैः पतद्भिः। ऋतु ४ का ७।

१५. वापी जलनां मणि मेखलानां। ६–४।

सुनहरे कमल के समान सुन्दर, और चन्दन-कुंकुम आदि के रस से चित्रित कामिनियो के कपोलो पर आई पसीने की बूंदे नाना प्रकार के रत्नों के बीच जड़े हुए मोतियो[1] की तरह दिखने लगी। अशोक वृक्षों मे नीचे से ऊपर तक मूंगे के रंग के लाल-लाल फूल खिल उठे और उन्हे देखकर विरहिणी नव-यौवनाओं के हृदय शोक[2] से व्याकुल होने लगे। वसन्तागमन के कारण जलती हुई आग की लपटो जसे लाल-लाल फूलों के बोझ से झुके जा रहे और हवा से हिलते हुए इन किंशुक वृक्षों के कारण वन-भूमि लाल साड़ी पहने नई दुलहिन[3] सी दीख रही है। वसन्त का यह चैत्र मास कामिनियो के मन मे काम-वेदना उत्पन्न करने के लिए, उन्हे मधु से मदमाते भौरों और कोकिलो की ध्वनि से गूंजते हुए आम्र तथा कनेर के पुष्परूपी अपने तीक्ष्ण तीरो से बीध[4] रहा है।

५.(ख) ऋतु संहार के साक्ष्य का उपसंहार

ऋतु संहार में किया गया ६ ऋतुओं का यह वर्णन मध्यभारत तथा विन्ध्य के आसपास के प्रदेशो के ही अनुरूप है, गढ़वाल, कुमाऊँ या कश्मीर के अनुरूप नही। कवि ने स्वयं भी २, ३ स्थलों[5] पर विन्ध्य का नाम लेकर इसमें सन्देह का अवसर नही रहने दिया। अपना प्रथम नाटक

---

१. सपत्र लेखेषु विलासिनीनां मुखेषु हेमाम्बुरुहो पमेषु।
रत्नान्तरे मौक्तिक संगरम्यः स्वेदागमो विस्तरतामुपति ॥ ऋतु ६ का ८ ॥

२. आमूलतो विद्रुम राग ताम्रा. सपल्लवाः पुष्पचयं दधाना.।
कुर्वन्त्यशोका हृदयं सशोकं निरीक्ष्यमाणा नव यौवनानाम्। ऋतु ६. १८.

३. आदीप्त वन्हि सदृशैर्मरुतावधूतै. सर्वत्रकिंशुक वनै· कुसुमावनम्रैः।
सद्यो वसन्त समयेन समाचितेयं रक्तांशुका नववधूरिव भाति भूमिः ॥
ऋतु ६ का २१।

४. समद मधुकराणां कोकिलानां च नादै., कुसुमित सहकारै· कर्णि कारैश्च रम्यैः
इषुभिरिव सुतीक्ष्णैर्मानसं मानिनीनां तुदति कुसुम मासो मन्मथो द्दीपनाय ॥
ऋतु ६ का २९ ॥

५. (क) तृणोत्करैरुद्गत कोमलाकुरैश्चितानि नीलैर्हरिणी मुखक्षतैः।
वनानि वैन्ध्यानि हरन्ति मानसं विभूषितान्युद्गत पल्लवैर्मुखैः ॥
ऋतु २ का ८

(ख) जलभर नमितानामाश्रयोस्माकमुच्चै,
रयमिति जलसेकैस्तोयदा स्तोयनम्राः।
अतिशय परुपाभिर्ग्रीष्म वन्हे. शिखाभिः
समुपजनिततापं ह्लादयन्तीव विन्ध्यम् ॥ ऋतु २ का २८।

मालविकाग्निमित्र भी कवि ने संभवतः उज्जयिनी में रहते समय ही लिखा है उसमें एक स्थान पर विन्ध्य का निर्देश उपमान[१] के रूप में किया गया है। सभी पर्वतों पर बिजली चमकती है और पानी बरसता है पर कवि ने रघुवंश में भी एक स्थान पर उपमान के रूप में विन्ध्य का ही निर्देश किया है। उसने लिखा है कि अभिषेक के समय तीर्थों के जल श्रीराम पर इस प्रकार गिर रहे थे जैसे मेघों के जल विन्ध्य[२] पर गिरा करते है। उपमा आदि में कवि प्रायः ऐसे ही पदार्थों को उपमान के रूप में रक्खा करते हैं जो प्रसिद्ध होने के साथ कवि के सामने प्रायः रहते हैं या जिनका गहरा प्रभाव उसके हृदय पर पड़ा रहता है।

५. मेघदूत का साक्ष्य
(ग) मेघदूत का यक्ष प्रवास के दिन विन्ध्य की घाटियों में काटता है

मध्यभारत तथा विन्ध्य के साथ कवि की जिस घनिष्ठता की झलक ऋतु संहार में देखी जाती है मेघदूत उसी पर और अधिक प्रकाश डालता है और उसकी पुष्टि करता है। देखिए अलकापुरी का निवासी कोई यक्ष अपनी नव-विवाहिता पत्नी के प्रेम में पड़कर प्रमाद करने लगा। इस पर कुपित होकर राजराज कुबेर ने उसे एक वर्ष के लिए निर्वासित कर उसकी पत्नी से अलग कर दिया। निर्वासित होकर उसे रामगिरि पर्वत के घनी छाया वाले उन आश्रमों मे निवास करना पड़ा जहाँ वनवास के दिनो में श्रीराम रहे थे और जहाँ के जलों को सीता जी ने अपने स्नान से पवित्र किया था[३]। पत्नी वियोगी उस प्रेमी यक्ष के कुछ महीने तो वहाँ किसी तरह कट गए पर विरह-वेदना से वह ऐसा दुबला-पतला हो गया कि उसका सोने का कड़ा ढीला होकर

---

१. वाप्पा सारा हेमकांची गुणेन श्रोणी विम्बा दप्युपेक्षाच्युतेन।
चण्डी चण्डं हन्तु मभ्युद्यता मां विद्युद्दाम्ना मेघ राजीव विन्ध्यम्॥
मालविका० ३ अंक २१ श्लोक।

२. सरित्समुद्रान् सरसीश्चगत्वा रक्षः कपीन्द्रै रुप पादितानि।
तस्या पतन्मूर्ध्निजलानि जिष्णो र्विन्ध्यस्य मेघ प्रभवा इवापः॥
रघु० सर्ग १४ श्लो० ८॥

३. कश्चित्कान्ताविरहगुरुणा स्वाधिकार प्रमत्तः
शापेनास्तं गमित महिमा वर्षभोग्येन भर्त्तुः,
यक्षश्चक्रे जनक तनयास्नान पुण्योदकेषु
स्निग्धच्छाया तरुषुवसतिं रामगिर्याश्रमेषु॥ पूर्व मेघ १॥

एक दिन उसके हाथ से खिसक गया। तभी आपाढ के पहले दिन, उसने पहाड़ की चोटी पर धीरे-धीरे चले जा रहे एक मेघ को देखा, वह उस मस्त हाथी की तरह था जो अपने दाँतों की चोट से टीलों को ढहाने का खेल कर रहा हो[1]। विरहियों के हृदय मे टीस पैदा करने वाले उसे देखते ही राजराज-कुवेर के अनुचर यक्ष की आंखों में आँसू छलछला आए, उन्हे रोककर वह उसके सामने खड़ा-खड़ा कुछ देर तक सोचता रहा, क्योंकि मेघदर्शन से तो सब तरह से सुखी जनों का हृदय भी बेचैन हो जाता है, फिर उसके तो कहने ही क्या जो गले लगाने को उत्सुक अपनी प्यारी से बिछुड़ कर वहुत दूर जा पडा है[2]। आषाढ़ तो लग चुका है, अव श्रावण को भी कुछ देर नही। वर्षा के उन दिनों अपनी प्राण प्यारी के जीवन की रक्षा के लिए चिंतित हो, उसने अपना कुशल समाचार मेघ द्वारा भेजने का विचार किया और तुरंत के खिले कुटज के फूलों का पूजोपहार निवेदन कर वड़े मधुर शब्दों मे उसने मेघ का स्वागत करते हुए कहा[3]—

'जगत्प्रसिद्ध पुष्कर और आवर्त्तक नामक मेघों के कुल में तुम्हारा जन्म हुआ है। मै यह भी जानता हूँ कि तुम मन चाहा रूप धारण कर सकते हो और देवराज इन्द्र की सरकार के तुम प्रमुख अधिकारी हो। मै विधिवश अपने वन्धु जनो से बिछुड़ गया हूँ और तुम्हारे सामने हाथ पसार रहा हूँ क्योकि भले मानस के द्वार से खाली हाथ लौटना भी उतना वुरा नही जितना नीच

---

१. तस्मिन्नद्रौ कति चिदवला विप्रयुक्त, सकामी
नीत्वा मासान् कनकवलय भ्रशरिक्त प्रकोष्ठः।
आपाढस्य प्रथमदिवसे मेघ माश्लिष्ट सानु
वप्रक्रीडा परिणतगज प्रेक्षणीयंददर्श ॥ पूर्वमेघ २ ॥

२. तस्यस्थित्वा कथमपिपुरः कौतुकाधान हेतो-
रन्तर्वाष्पश्चिर मनुचरो राजराजस्य दध्यौ।
मेघा लोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथा वृत्तिचेतः
कण्ठाश्लेप प्रणयिनिजने किं पुनर्दूर सस्थे ॥ पूर्व मेघ ३ ॥

३. प्रत्यासन्ने नभसि दयिता जीविता लम्बनार्थी
जीमूतेन स्वकुशल मयी हारयिष्यन्प्रवृत्तिम्।
स प्रत्यग्रै कुटज कुसुमैः कल्पितार्घाय तस्मै
प्रीतः प्रीतिप्रमुखवचनं स्वागतं व्याज हार ॥ पूर्वमेघ ४ ॥

के हाथों इच्छा पूरी हो जाना।[१] हे मेघ, तुम संतप्त प्राणियों के प्राणों को शीतलता प्रदान करते हो। मैं **धनपति** कुवेर जी के क्रोध का पात्र वन कर अपने वन्धु से विछुड़ गया हूँ । तुम मेरा संदेश उस तक पहुँचा दो । इसके लिए तुम्हें यक्षेश्वरों की नगरी उस अलका तक जाना पड़ेगा जिसके वडे-वड़े भवन वाहर के उद्यान मे विराजमान शिवजी के सिर की चन्द्रकला के प्रकाश से सदा जगमगाया[२] करते है । पवन के रथ पर सवार होकर, आकाश मार्ग से जाते हुए तुम्हे, जव परदेसियों की प्यारियाँ, आँखों पर विखरी लटों को हटा कर देखेगी तो उन्हे वड़ा ढारस मिलेगा कि उनके प्यारे अवश्य ही घर लौट रहे होगे क्योकि तुम्हे उमड़ते देखकर, भला कौन ऐसा निठुर होगा जो **पराधीन न होता हुआ** भी मेरी तरह अपनी विरहिणी प्रेयसी की उपेक्षा कर सके[३] ।

५. (घ) मेघदूत का यक्ष कवि का प्रतिनिधित्व करता है

मेघदूत के इन प्रारंभिक पद्यों में आए राजराज (पूर्व मेघ ३) विधि वश (पूर्व मेघ ६) धनपति क्रोध (पूर्व मेघ ७) पराधीन वृत्ति (पूर्व मेघ ८) तथा उत्तर मेघ के वैरी विधि (उत्तर मेघ ३९) शब्द अवश्य ही विशेप अभिप्राय रखते है। प्रसंगानुसार राजराज शब्द का अर्थ राजाधिराज अर्थात् कवि का आश्रयदाता सम्राट् भी होना चाहिए। धनपति का अर्थ कुवेर तो है ही किन्तु यहाँ उसका व्यग्यार्थ वेतन देने वाला भी प्रतीत होता है । पराधीन वृत्ति शब्द से कवि ने राजा की

---

१. जात वंशे भुवनविदिते पुष्करा वर्तकानां
जानामि त्वा प्रकृति पुरुषं कामरूप मघोनः ।
तेनार्थित्वं त्वयि विधिवशाद्दूरवन्धुर्गतोऽहं
याच्ञा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा ॥ पूर्वमेघः ६

२. संतप्तानां त्वमसि शरणं तत्पयोद प्रियायाः
सन्देशं मे हर धनपति क्रोध विश्लेपितस्य ।
गन्तव्या ते वसतिरलका नाम यक्षेश्वराणां
वाह्योद्यान स्थित हरशिरश्चन्द्रिका धौतहर्म्या ॥ पूर्वमेघ ७ ॥

३. त्वामारूढंपवन पदवीमुद्गृहीतालकान्ताः
प्रेक्षिष्यन्ते पथिक वनिताः प्रत्ययादाश्वसन्त्यः ।
कः सन्नद्धे विरह विधुरां त्वय्युपेक्षेत जायां
न स्याद न्योऽप्यहमिव जनो यः पराधीन वृत्तिः ॥ पूर्वमेघ ८ ॥

इच्छा के सामने अपनी पराधीनता प्रकट की है। विधि के भी दो अर्थ है दैव तथा आदेश या राजाज्ञा, (विधिर्विधाने दैवे च—अमर कोष)।

ऋतु सहार मे ऋतुओ तथा प्रकृति का वर्णन प्राय: विषय प्रधान है। उसे पढ़ने से उसके प्रति कवि की भावना का अनुमान कर सकना कठिन है। किन्तु मेघदूत विषयी प्रधान रचना है और वह आद्योपान्त कवि की भावना से ओत प्रोत है। उसमें किसी विशेष घटना का वर्णन नहीं है। जान पड़ता है कि राजाश्रय प्राप्त करने के पश्चात् कवि को प्राय. अपने जन्म स्थान से दूर तथा अपने बन्धु-बान्धवों से अलग राजधानी मे ही रहना पड़ता होगा। उन दिनों यात्रा के लिए वे सुविधाएँ सर्वसुलभ न थी जो आज रेलगाडी, बस और हवाई जहाज आदि के कारण प्राप्त हैं। अत. प्रवासी जन कभी बहुत भारी आवश्यकता आ पड़ने पर ही यात्रा करते होगे। और वह यात्रा उन्हे वर्षा प्रारम्भ होने, उससे नदियों के उमडने तथा मार्गों के बन्द हो जाने से पूर्व ही करनी पडती[१] होगी। अनुमान है कि किसी ऐसे ही अवसर पर जब कवि घर जाने के लिए अपना मन बना चुका था और उसकी बहुत कुछ तय्यारी भी हो चुकी थी, तभी किसी आकस्मिक राज-कार्य से विवश होकर उसे रुक जाना पड़ा। मगध के पक्ष को पढने से पता चलता है कि तब तक कवि मगधेश्वर के आश्रय मे पहुँच चुका था। सभव है कि उन दिनों कवि मगध में, अथवा उससे भी कुछ दक्षिण को, मध्यभारत के किसी प्रदेश मे प्रवास कर रहा था। तभी अकस्मात् राजाज्ञा ने उसके सुख स्वप्न को भग कर दिया। उसने इस कटु सत्य को तीव्रतापूर्वक अनुभव किया कि आर्थिक तथा सामाजिक प्रतिष्ठा की दृष्टि से राजसेवा कितनी ही स्पृहणीय क्यो न हो, किन्तु है तो परतन्त्रता ही। जंजीर सोने की हो या लोहे की—बॉधती दोनों ही हैं। उसने देखा कि समाज उसका कितना भी आदर करे, किन्तु राजाधिराज के लिए तो वह एक तुच्छ[२] अनुचर ही है। और

५. (ङ) विन्ध्य के इन प्रदेशों के प्रति कवि की विशेष आत्मीयता है और मेघदूत की रचना के लिए कवि को अपने जीवन की किसी घटना से प्रेरणा मिली

१. भर्तुर्मित्रं प्रिय मविधवे विद्धिमामम्बुवाहं
तत्सन्देशै हृदय निहितै रागत त्वत्समीपम्।
यो वृन्दानि त्वरयति पथि श्राम्यता प्रोषितानां
मन्द्रस्निग्धै र्ध्वनिभिरवलवेणि मोक्षोत्सुकानि ॥ उत्तर मेघ ३६ ॥

२. अन्तर्वाष्पश्चिर मनुचरो राजराजस्य दध्यौ। पूर्व मेघ २ श्लोक ३।

धनपति अर्थात् वेतनदाता की अप्रसन्नता उसे उसके पारिवारिक[1] जीवन के सुख से भी वंचित कर सकती है। कवि हृदय की इस अनुभूति की प्रसववेदना ने मेघदूत को जन्म दे दिया।

मेघदूत के पूर्व मेघ में ६३ पद्य हैं। इन पद्यो में कुल मिलाकर इकत्तीस[2]

१. सन्देशं मे हर धनपति क्रोधविश्लेपितस्य ॥ पूर्व मेघ श्लोक ७ ॥

२. क. रामगिरि आश्रम (पूर्वमेघ श्लो० १) ख. अलका (पूर्वमेघ श्लो० ७) ग. मानस (पूर्वमेघ श्लो० ११) घ. मालक्षेत्र (पूर्वमेघ श्लो० १६) ङ. आम्रकूट पर्वत पर आमो के वन (पूर्वमेघ श्लोक १७) च. विन्ध्य के टीलो में अनेक पतली पतली धाराओं मे बंट कर बहती हुई नर्मदा, वहाँ पर जामुन तथा कदम्बों के वन और उनमें चातक तथा मोर (पूर्वमेघ श्लो० १९, २०, २१, २२) छ. दशार्ण देश, उसमे उपवनो के चारों तरफ केवड़े कीवाड़े और जामुनो का पकना (पूर्वमेघ श्लो० २३) ज. दूर दूर तक सब दिशाओ मे प्रसिद्ध राजधानी विदिशा (पूर्वमेघ श्लो० २४) झ. विदिशा के साथ लगकर बहती वेत्रवती नदी (पूर्वमेघ श्लो० २४) ञ. नीच नामक पहाड़ी पर कदम्बो का फूलना तथा वहाँ पर कुंजवनों मे विलासी नागरिकों और वेश्याओ का स्वच्छन्द विहार (पूर्वमेघ श्लो० ३५) ट. पश्चिम की तरफ घूमकर उज्जयिनी को जाना (पूर्वमेघ श्लो० २७) ठ. मार्ग मे निर्विन्ध्या नदी (पूर्वमेघ श्लो० २८) ड. अवन्ति प्रदेश में उज्जयिनी की प्रशंसा (पूर्वमेघ श्लो० ३०) ढ. सिप्रा नदी, उसमे कमलों का विकास, सारसों की क्रीड़ा तथा स्त्रियों का विहार (पूर्वमेघ श्लो० ३१) ण. उज्जयिनी के भवनों तथा महाकाल के मन्दिर का वर्णन (पूर्वमेघ श्लो० ३२–३८ तक) त. गभीरा नदी और उसमे वानीरों का वर्णन तथा वहाँ के प्रति कवि के हृदय का विशेष आकर्षण (पूर्वमेघ श्लो० ४०, ४१) थ. देवगिरि पर्वत पर गूलरों का पकना (पूर्वमेघ श्लोक ४२) थ. देवगिरि मे स्कंद का विशाल मन्दिर (पूर्वमेघ श्लो० ४३, ४४, ४५) द. दशपुर के राजा रन्तिदेव की कीर्ति तुल्य चंबल नदी का वर्णन तथा चबल की पतली जल धारा पर जल पीते हुए काले मेघ की उपमा मोतियो की लड़ी मे पिरोए बड़े नीलम से देना (पूर्वमेघ श्लोक ४५, ४६) ध. चंबल को पार कर दशपुर की तरफ प्रस्थान (पूर्वमेघ श्लो० ४७) न. ब्रह्मावर्त्त (पूर्वमेघ श्लो० ४८) प. कुरुक्षेत्र (पूवमेघ श्लो० ४८) फ. सरस्वती नदी (पूर्वमेघ श्लो० ४९) ब. कनखल

५. (च) विन्ध्य के इस प्रदेश के इंच-इंच से कवि का घनिष्ठ परिचय

विशेष वस्तुओं का वर्णन कवि ने किया है। इन इकत्तीस में से सत्रह[1] वर्णन मध्य भारत से सम्बन्ध रखते हैं। मध्य भारत के पश्चात् कवि मेघ को एक लम्बी छलांग लगा कर ब्रह्मावर्त्त[2] और कुरुक्षेत्र[3] होते हुए कनखल[4] के मार्ग से अलका[5] की तरफ बढ़ जाने को कहता है। इन सत्रह वस्तुओं में कुछ ऐसे मैदान[6], टीले[7], नदियाँ[8] तथा प्राकृतिक[9] दृश्य हैं जिन्हें उस प्रदेश में दीर्घकाल तक रहने वाला व्यक्ति ही

तथा गंगा (पूर्वमेघ श्लो० ४९, ५०) म. हिमाच्छन्न हिमालय के उस प्रदेश का वर्णन जहाँ से गंगा निकली है और वहाँ कस्तूरीमृगों का विचरना (पूर्वमेघ श्लो० ५२) म. देवदारु के वन और उनमें दावानल तथा चमरी गाय का वर्णन (पूर्वमेघ श्लो० ५३) य. वहाँ पर्वत पर शिव के चरणों के चिह्न और उनकी पूजा तथा उससे शिव लोक की प्राप्ति (पूर्वमेघ श्लो० ५५) र. वहाँ बांसों के वन और उनमें किन्नरियों द्वारा शिव की त्रिपुर विजय के गीत गाना। ल. उससे उत्तर की तरफ क्रौंचरन्ध्र नामक पहाड़ी दर्रा (पूर्वमेघ श्लो० ५७) व. कैलास (पूर्वमेघ श्लो० ५८, ५९, ६०) श. मानसरोवर और उसमे स्वर्ण कमलों का खिलना (पूर्वमेघ श्लो० ६२) ष. कैलास की गोद में अलका पुरी और उससे कुछ दूर पर गंगा (पूर्वमेघ श्लो० ६३)।

२. सत्रह वर्णन—क, घ, ङ, च, छ, ज, झ, ञ, ट, , ड, ढ, ण, त, थ, द, ध=कुल १७।
३. ब्रह्मावर्त्त जनपद मथः (पूर्वमेघ श्लो० ४८
४. वही " " "
५. तस्माद्गच्छे रनुकनखलं० (पूर्वमेघ श्लो०५०)
६. तस्योत्सङ्गे प्रणयिन इव स्रस्त (पूर्वमेघ श्लो० ६३)
७. माल क्षेत्र आदि।
८. टीले—विन्ध्य के पाद (श्लो० १९) नीचै नामक पर्वत, श्लोक २५।
९. निर्विन्ध्य आदि।
१०. जीवन, भौगोलिक विशेषता तथा दृश्यादि (श्लो० १४, १८, १९, २१, २३, २५, २६, २७, २८, २९, ३५, ३६, ३७, ४१, ४२, ४६ इत्यादि)

जान सकता है। पूर्वमेघ के चौदहवें पद्य में उस स्थान पर सरसनिचुलों[1] का वर्णन, अठारहवें पद्य में पके हुए पीले आमों से लदे हुए आम्र कूट पर्वत की चोटी पर बैठे श्याम मेघ के कारण उसकी तुलना पृथिवी रूपिणी नायिका के स्तन से करना,[2] उन्नीसवें पद्य में विन्ध्य की घाटियों में पतली पतली अनेक धाराओं में बिखरी हुई नर्मदा को काले हाथी के शरीर पर की गई चित्रकारी की श्वेत रेखाओं[3] से उपमा देना, नीच नामक पर्वत पर पहुँच कर वहाँ के निवासी नागरिकों का स्वच्छन्द[4] विहार और २७ से २८ तक बारह पद्यों में उज्जयिनी का भावनापूर्ण वर्णन, मार्ग टेढ़ा[5] होने पर भी वहां अवश्य जाने तथा वहां की अनुराग रसिक नगर नारियों के चंचल कटाक्षों के अवलोकन से अपने नेत्रों को सफल करने का आग्रह निःसन्दिग्ध रूप से यह प्रकट कर रहे हैं कि सामान्य परिचय के अतिरिक्त कुछ अन्य सम्बन्ध भी, कवि का उन प्रदेशों से अवश्य है। कवि की अन्तरात्मा वहां पहुंचने और वहां के जीवन का आनन्द लाभ करने के लिए तड़पती प्रतीत होती है। भगवेश्वर के प्रति कृतज्ञता तथा

---

१. स्थानादस्मात् सरस निचुला दुत्पतोदङ्मुखःखं
दिङ्नागानां पथि परिहरन् स्थूल हस्तावलेपान् ॥ पूर्वमेघ श्लो० १७ ॥

२. छन्नोपान्तः परिणतफलद्योतिभिः काननाम्रै
स्त्वय्यारूढे शिखर मचल. स्निग्ध वेणी सवर्णे।
नूनं यास्यत्यमर मिथुन प्रेक्षणीयामवस्थां
मध्ये श्यामः स्तन इव भुवः शेष विस्तार पाण्डुः ॥

३. स्थित्वा तस्मिन् वनचर वधू भुक्तकुंजे मुहूर्तं
तोयोत्सर्गं द्रुततर गतिस्तत्परं वर्त्मतीर्णः।
रेवां द्रक्ष्यस्युपल विषमे विन्ध्यपादे विशीर्णां
भक्तिच्छेदैरिव विरचितां भूतिमङ्गे गजस्य ॥

४. नीचै राख्यं गिरिमधिवसेस्तत्र विश्रामहेतो
स्त्वत्संपर्कात् पुलकितमिव प्रौढपुष्पैः कदम्बैः।
यः पण्य स्त्री रतिपरिमलोद्गारिभिर्नागराणा
मुद्दामानि प्रथयति शिला वेश्मभिर्यौवनानि ॥ २५

५. वक्रः पन्थाः यदपि भवतः प्रस्थितस्योत्तराशां
सौधोत्संगप्रणय विमुखो मास्मभूरुज्जयिन्याः।
विद्युद्दामस्फुरित चकितैस्तत्रपौराङ्गनानां
लोला पाङ्गैर्यदि न रमसे लोचनैर्वञ्चितोऽसि ॥२७॥

भक्ति का उद्रेक रहते भी मगध देश तथा उसके नागरिक जीवन के प्रति जो उदासीनता कवि ने प्रकट की है उसका अणुमात्र भी आभास उज्जयिनी वर्णन मे नही पाया जाता। वह उसे स्वर्ग के उस खण्ड के समान[1] मानता है जिसे पुण्यात्माजन स्वर्ग में अपने अधिकाश पुण्यों का उपभोग पूरा हो चुकने पर, अपने शेष पुण्यो के भोग के लिए मर्त्यलोक मे साथ ही उतार लाए हैं। कमलों के पराग से सुरभित वहा का प्रात. कालिक पवन भी उसे उस चोंचले बाज़ प्रेमी सा प्रतीत होता है जो विहार के अनन्तर अपनी प्यारी की थकान को दूर कर देता[2] है। वह मेघ को उज्जयिनी के धनी मानी पुरुषों के उन भवनों की शोभा को देखने और वहा विश्राम करने के लिए प्रेरित करता है जो फूलो की सुगन्ध से महक रहे है और जिनके फर्श उनमे रहने वाली लावण्यवती ललनाओं के चरणों की महावर की छाप से अ कित[3] हो रहे है। उसे यह भी याद आता है कि किस प्रकार उन महलो के झरोखों से अगुरुका वह धूँआ निकला करता है जिससे वे ललनाएं अपने केशो को सुगन्धित बनाया करती है और किस प्रकार गन्धवती नदी मे नहा रही युवतियो के स्तनों से छुटे चंदन कुंकुम आदि की गन्ध वाले जलकणो से शीतल पवनों से वहा के उद्यान झूमा[4]

---

१. प्राप्यावन्तीनु दयनकथा कोविद ग्राम वृद्धान्
पूर्वोद्दिष्टामनुसर पूरी श्री विशालां विशालाम् ॥
स्वल्पीभूते सुचरित फले स्वर्गिणागा गतानां
शेषै. पुण्यैर्हृतमिव दिवःकान्तिमत् खण्डमेकम् ॥ ३० ॥

२. दीर्घीकुर्वन् पटुमदकलं कूजित सारसाना
प्रत्युषेषु स्फुटित कमलामोद मैत्री कपायः।
पण्य स्त्रीणां हरति सुरत ग्लानि मगानुकूलः
शिप्रावात. प्रियतमइव प्रार्थना चाटुकारः ॥ पू० मे० ३१ ॥

३. जालोद्गीर्णैरुपचितवपु. केश संस्कार धूपै
बन्धुप्रीत्या भवन शिखिभिर्दत्त- नृत्योपहारः ॥
हर्म्येष्वस्या· कुसुम सुरभिष्वध्वखेदंनयेथा
लक्ष्मी पश्यंल्ललितवनिता पादरागांकितेषु ॥ ३२ ॥

४. भर्तुःकण्ठच्छविरितिगणैः सादरं वीक्ष्यमाणः
पुण्य यायास्त्रि भुवन गुरोर्धाम चण्डीश्वरस्य।
धूतोद्यानं कुवलय रजो गन्धिभिर्गन्धवत्या
स्तोयक्रीडानिरत युवति-स्नानतिक्तैर्मरुद्भि. ॥ ३३ ॥

करते है। ताल के अनुसार पड़ रहे पैरों की ठुमक के साथ रुनझुन करती करधनियों वाली, हीरे जड़ी चूड़ियों की झांई से जगमगाती मूठ वाले चामरों के साथ महाकाल के मन्दिर में नाच रही और वर्षा की सुखद फुहारों के पड़ने से प्रसन्न वेश्याओं[१] के तीखे श्याम कटाक्षों की मोहिनी का प्रभाव अब भी उसके हृदय पर अविकार जमाए है। अँधेरी रातो में अपने प्रियतमों से मिलने के लिए चली जा रही अभिसारिकाएं[२] बिजली की कौंध और वर्षाओं की धाराओं से व्याकुल न हो जाएं यह चिन्ता भी उसके संवेदन शील हृदय को सता रही है पर वहां उसे अपने सहचर के विरह से विकल चकवी[३] की तरह व्याकुल और पाले से कुमलाई कमलिनी जैसी म्लानमुखी, बिखरे बालों वाली, और देहली पर प्रतिदिन एक एक फूल रख कर उन द्वारा विरह की अवधि[४] के दिन गिनती किसी पति-परायणा पत्नी के दर्शन की चाह नहीं है।

पूर्व मेघ के इन प्रकरणों के पढ़ने से जान पड़ता है कि कवि ने मध्यभारत के इन प्रदेशों में दीर्घ काल तक निवास किया था। कहां खड़े होकर, किस नदी, किस पर्वत, किस स्थान का दृश्य, किस ऋतु में कैसा दिखता है—इसका स्पष्ट तथा जीता जागता यथार्थ चित्र उसके हृदय पर अङ्कित था और कवि

५.(छ) श्री हरप्रसाद शास्त्री का भ्रम और उसका कारण

---

४. पादन्यासैः क्वणितरशनास्तत्र लीला वधूतै
रत्नच्छाया खचित वलिभि श्चामरैः क्लान्तहस्ताः।
वेश्यास्त्वत्तो नखपद सुखान् प्राप्यवर्षाग्रबिन्दू
नामोक्ष्यन्ते त्वयि मधुकर श्रेणि दीर्घान् कटाक्षान्॥ ३५ ॥

५. गच्छन्तीनां रमण वसतिं योषितां तत्र नक्तं
रुद्धालोके नरपतिपथे सूचिभेद्यै स्तमोभिः।
सौदामिन्या कनकनिकषस्निग्धया दर्शयोर्वी
तोयोत्सर्गस्तनित विमुखो मास्मभूर्विक्लवास्ताः॥ ३७ ॥

६. तांजानीयाः परिमित कथां जीवितं मे द्वितीय
दूरी भूते मयि सहचरे चक्रवाकीमिवकाम्।
गाढोत्कण्ठा गुरुषु दिवसेष्वेषु गच्छत्सुबालां
जातांमन्ये शिशिर मथितां पद्मिनी वान्यरूपाम्॥ उ० मे० २० ॥

१. शेषान् मासान् विरह दिवसस्थापितस्या वधेर्वा
विन्यस्यन्ती भुविगणनया देहली दत्त पुष्पैः।
मत्संगंवा हृदय निहितारम्भ मास्वादयन्ती,
प्रायेणैते रमण विरहेष्वंगनानां विनोदाः। उत्तर मेघ २४॥

कल्पना ने उसके साथ मिलकर, इस मेघदूत में मणिकांचन संयोग कर दिया है। किसी यात्रा के अवसर किए सामान्य अवलोकन के आधार पर या केवल कल्पना के बल से ऐसा सूक्ष्म तथा भावुकतापूर्ण वर्णन संभव नही। यह भी प्रतीत होता है कि कवि ने अपने जीवन वसन्त के उन स्वर्णिम क्षणो को वहां व्यतीत किया है जिनमे हृदय मे जगमगाने वाले प्रेमप्रदीप की प्रभा से संसार के सभी पदार्थ कमनीय हो उठा करते है। तभी तो ग्रीष्म ऋतु मे, नटतरुओं के सूखकर झड़ गए पीले पत्तों से ढकी क्षीण निर्विन्ध्या[1] नदी भी उसे प्रियतम के विरह मे सूखी जा रही और पीली पड़ गई प्रेमिका सी प्रतीत हुई। यही कारण है कि म० म० श्री हरप्रसाद[2] शास्त्री जैसे विचार शील विद्वान् भी इन प्रदेशो को ही कवि की जन्म भूमि समझ बैठे।

५. (ज) उज्जयिनी कवि का जन्म स्थान नहीं

मेघ के मार्ग का ध्यान पूर्वक अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि उसके द्वारा कवि ने क्रमशः अपने तात्कालिक निवास स्थान, जवानी के दिनों के अस्थायी निवास के कुछ प्रिय प्रदेश तथा अपने अभिजन अर्थात् जन्मस्थान का केवल दिशा निर्देश किया है। रामगिरि से कवि का अभिप्राय केवल इतना ही है कि उक्त खण्ड काव्य के निर्माण काल मे वह किसी ऐसे प्रदेश मे रह रहा था जिसकी स्थिति मध्य भारत मे वर्तमान रामटेक के आसपास थी। इसी प्रकार अलका से भी उसका अभिप्राय यही है कि उसकी पत्नी उत्तर भारत के किसी ऐसे स्थान पर निवास करती है जहां गंगा तथा हिमालय की स्थिति साथ साथ है और जहां मेघ ने सदेश पहुँचाना है। मेघ की यात्रा का उपक्रम मध्य-भारत से हो कर उसका उपसंहार गढ़वाल में होता है, अतः

---

१. वेणी भूतप्रतनु सलिलाऽसावतीतस्यसिन्धुः
पाण्डुच्छाया तटरुह तरु भ्रंशिभिर्जीर्णपर्णै.।
सौभाग्य ते सुभग विरहावस्थया व्यंजयन्ती,
कार्श्यं येन त्यजति विधिना स त्वयैवोपपाद्यः॥ पूर्व मेघ २९॥

२. "कालिदास को पश्चिम मालवा के छोटे छोटे नदी नालो एव अन्य बातो का अत्यन्त सूक्ष्म तथा साक्षात् परिचय है, जिससे प्रतीत होता है कि वह मन्दसौर (दशपुर) या उसके किसी अत्यन्त निकट वर्ती प्रदेश का निवासी था और इसीलिए उज्जैन के राज दरबार और वहाँ के नागरिक जीवन मे उनका घुल मिल जाना स्वाभाविक था (अर्ली हिस्ट्री आफ़ इण्डिया वि० स्मिथ पृष्ठ ३२१)

उज्जयिनी उसका लक्ष्य नहीं है। उसका महत्त्व तो, भिक्षा मांग कर लौटते हुए गाय को भी साथ हाँक लाने के बराबर है। इस प्रकार मेघदूत के अन्तः साक्ष्यों से यह सिद्ध होता है कि कवि की जन्म भूमि उज्जयिनी नहीं है।

उज्जयिनी के क्रीडा-काननों, शिप्रातटों, गृहमन्दिरों, प्रेमी-प्रेमिकाओं, उत्सव आमोदों के प्रति कवि के हृदय में असाधारण आकर्षण है, उनसे वंचित हो जाने की कसक है, उनमें पुनः पहुँचने की साध है इसका कोई विशेष कारण होना ही चाहिए। किन्तु इनके आधार पर उसे कवि की जन्मभूमि नहीं ठहराया जा सकता। इस पक्ष को स्वीकार किया जा सकता था यदि उसका इससे भी अधिक अनुराग तथा भक्ति हम गंगायुक्त हिमालय के प्रदेश के प्रति न देखते।

६. (क) श्री प्रो० लक्ष्मीधर कल्ला का कश्मीर पक्ष—मेघ उत्तर दिशा को जाता है और कश्मीर भारत के उत्तर में है अतः कवि का जन्म स्थान कश्मीर है।

कतिपय विद्वानों ने मेघ दूत में कवि के द्वारा मेघ को उत्तर[1] दिशा में जाने की प्रेरणा से यह अनुमान कर लिया कि उस उत्तर दिशा का लक्ष्य कश्मीर है और इस लिए कश्मीर ही कालिदास का जन्म स्थान होना चाहिए। इस पक्ष के प्रधान पोषक दिल्ली विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग के भूतपूर्व अध्यक्ष स्वर्गीय लक्ष्मीधर[2] कल्ला थे जिनकी युक्तियों की संक्षिप्त समीक्षा आगे की जा रही है। इस कश्मीर-पक्ष के सम्बन्ध में कीथ[3] महोदय अपने संस्कृत साहित्य के इतिहास के प्राक्कथन में लिखते हैं "..... उसके निवास को कश्मीर में नियत करने का, और उसकी कविता में वहीं के प्रत्यभिज्ञा शास्त्र के—ईश्वरीय प्रेम की

---

१. वक्रः पन्थाः यदपि भवतः प्रस्थितस्योत्तराशां
सौधोत्संग प्रणय विमुखो मास्म भूरुज्जयिन्या॥ पूर्वमेघ श्लो० २७॥

२. (देहली युनिवर्सिटी पब्लिकेशन्स नं० १) बर्थ प्लेस आफ कालिदास, बाई लक्ष्मीधर कल्ला सन् १९२६।

३. डाक्टर मंगल देव जी कृत, कीथका हिस्टरी आफ संस्कृत लिटरेचर का हिन्दी अनुवाद (सन् १९६०) पृ० ६, ७।

एकता के-सिद्धान्त की छाया को ढूढने का यत्न करना केवल खीचातानी है। क्योकि ऐसी स्थिति मे तो कालिदास (उस) ध्वनि के सिद्धहस्त लेखक बनजाएंगे, जिस ध्वनि का काव्य के आत्मा के रूप में, आगे चलकर कश्मीर में निश्चित रूप से विकास ध्वनिकार ने किया था· · । ऐसा सुझाव भी दिया गया है कि कालिदास ने पद्म पुराण का उपयोग किया था, परन्तु यह ग्राह्य नही। वाकाटको के साथ उसके संभावित सम्बन्ध के विषय मे अनुसन्धान किया गया है, और क्षेमेन्द्र द्वारा किसी 'कुन्तलेश्वर' दौत्य' को उसकी कृति बतलाने का भी उपयोग किया गया है, परन्तु यह सब कोरी स्थापना (कल्पना) ही है।"

६. (ख) प्रो. कल्ला की स्थापना

प्रोफेसर कल्ला ने अपने निवन्ध के पृष्ठ ६ पर लिखा है 'यदि हम अपने कवि (कालिदास) के जन्मस्थान के विषय में, उसके ग्रन्थो के आधार पर अनुसन्धान करना चाहे और देखे कि कवि ने, उनमे, इसके सम्बन्ध मे कुछ नही लिखा है तो हमारे पास, इसके सिवाय कोई उपाय नही रह जाता कि हम उसके ग्रन्थो से यह पता लगाने का यत्न करे कि (भारत के) किस प्रदेश का ज्ञान उसे अन्यों की अपेक्षा अत्यधिक है, और ऐसा करते समय, भ्रम से वचने के लिए, हमे यह भी देखना होगा कि कवि का किया हुआ उस स्थान का वर्णन केवल किसी दर्शक के किए हुए वर्णन सा है या उस स्थान के प्रति विशेष लगाव रखने वाले वहा के निवासी के किये वर्णन सा। इतना ही नही, हमें यह भी जानने का यत्न करना होगा कि वह कौन सा विशेष स्थान है जिसके (मधुर) सम्बन्धो ने उसके हृदय को सर्वाधिक प्रभावित किया है और वे अनायास ही, वारवार, उसकी अन्तश्चक्षु के सम्मुख उपस्थित हो जाते है, तथा वह कही भी चला जाए, उसका हृदय अनजाने ही रह रह कर, वहा की (मधुर) स्मृतियों में निमग्न हो जाया करता है। किन्तु, इतना ही पर्याप्त नही। हमे यह भी जानना चाहिए कि किस प्रदेश के दृश्यों और कहां के व्यवहारों का उसे ठीक ठीक तथा घनिष्ठ परिचय है, और कहां के रीति-रिवाजों, परम्पराओ तथा इसी प्रकार की अन्य विशेष वातों का वर्णन उसने अपने स्थायी अनुभवों के आधार पर किया है न कि पढे, सुने या अपने ही अस्थायी निवास के अनुभवो के आधार पर, और उसके धर्म

---

१. विक्रम स्मृति ग्रन्थ मे पृ० ३०७ से ३४० तक श्री चन्द्रवलि पाण्डेय का लेख 'कालिदास का दूत कर्म।'

तथा विश्वास भी उस प्रदेश के धर्म तथा विश्वास के साथ मेल खाते है या नही क्योंकि मनुष्य साधारणतया उसी धर्म का अनयायी बन जाया करता है जो उसके परिवार या प्रदेश में चल रहा होता है। अन्त में हमें यह भी न भूलना चाहिए कि कवि ने अपने ग्रन्थों में कोई ऐसे निर्देश तो नही रख दिए जो उसके जन्म स्थान की ओर सकेत करते हों क्योंकि कालिदास, विशेष रूपसे, अपने काव्य मे व्यंग्यार्थ की ध्वनि के लिए प्रसिद्ध है। कालिदास के जन्मस्थान के प्रश्न पर इस दृष्टि से विचार करने पर हमारा ध्यान निम्नलिखित पाच बातों की ओर विशेष रूप से आकृष्ट होता है :

I. कालिदास के ग्रन्थों मे हिमालय के, विशेपतया कश्मीर के उत्तरीय प्रदेश के भौतिक तथा प्राकृतिक दृश्यों का अधिक विस्तार के साथ तथा सूक्ष्म वर्णन मिलता है।

II. कश्मीर के प्रति उसने विशेप अनुराग तथा भक्ति का प्रदर्शन किया है।

III. उसके ग्रन्थों में कश्मीर के दृश्यों, स्थानो तथा लोक गाथाओं का वर्णन या निर्देश अन-जाने तथा अनायास हुआ है।

IV. कश्मीर के व्यवहारों, सामाजिक रीति रिवाजों और ऐसी ही अनेक बातों का वर्णन कवि ने किया है जिनका ज्ञान साधारणतया किसी कश्मीरी को ही संभव है ।

V. कालिदास शैवधर्म के उस प्रत्यभिज्ञा दर्शन के सिद्धान्तो का अनुयायी था जो उस समय केवल कश्मीर मे प्रचलित था ।

VI. मेघदूत मे ऐसे अनेक संकेत पाये जाते है जो कश्मीर को ही कालिदास की जन्म भूमि सिद्ध करते है, इत्यादि।

प्रो० कल्ला के पक्ष की समीक्षा

प्रोफेसर कल्ला महोदय के दिखाए प्रकार से यदि कालिदास के ग्रंथों का अनुशीलन किया जाए तो उससे उनकी अपनी स्थापना ही सवसे पहले ढहती दीखती है। क कालिदास के काव्यों व नाटकों में कश्मीर का नाम तक कही देखने को नही मिलता, उसके प्रति विशेप अनुराग व भक्ति की तो वात

अभिज्ञान शाकुन्तल का आधार महाभारत है न कि नीलमत पुराण।

ही क्या? ख. रघुवंश या शाकुन्तल के जिन स्थानों— नदियो, पर्वतो, तीर्थों आदि की स्थिति वे नील मत पुराण आदि के आधार पर कश्मीर में सिद्ध करना चाहते है वे वस्तुतः वहाँ के नही हो सकते। कालिदास के अभिज्ञान शाकुन्तल का आधार महाभारत के आदिपर्व का शाकुन्तलोपाख्यान है। और महाभारत में वर्णित मालिनी गंगा, शचीतीर्थ शक्रावतार, कण्वाश्रम आदि स्थान गढ़वाल तथा उसके आस पास ही माने जाने उचित है। रघुवंश का वशिष्ठाश्रम तथा गौरीगुरु की (हिमालय) घाटी भी कहीं अयोध्या के आस पास ही अधिक जँचते है न कि कश्मीर में। मेघदूत की अलका कश्मीर में नही किन्तु गढ़वाल में ही हो सकती है क्योंकि वहाँ जाने के लिए मेघ को कुरुक्षेत्र से कनखल होते हुए गंगा द्वार का मार्ग लेना पड़ा है। यह कनखल भी कश्मीर का नहीं किन्तु हरद्वार का निकटवर्ती वर्त्तमान कनखल ही होना चाहिए। कुमारसंभव के औषधिप्रस्थ, गौरीशिखर तथा कोशी प्रपात की खोज भी गढवाल के पर्वतों में ही करनी उचित है न कि कश्मीर मे। रघुवंश के १३ वें सर्ग में सरयू का वर्णन करते हुए कवि ने उसका निर्गमनस्थान ब्रह्मसर बतलाया है। कल्ला महोदय ने इसका सम्बन्ध भी नीलमत पुराण के ब्रह्मसर से जोड़ दिया। अयोध्या के साथ बहने वाली सरयू का निर्गम हिमालय के ब्रह्मसर से हुआ है इसमें सन्देह नहीं किन्तु उस ब्रह्मसर की स्थिति कश्मीर मे केन्द्रित नही की जा सकती। इसी प्रकार मेघदूतकी मालवान्तर्गत सिन्धु तथा रघुवश की सिधु की एकता कश्मीर की किसी सिन्धु से करना भी खीचातानी ही समझनी चाहिए। विवाह के अवसर पर अक्षत चावलों के तिलक तथा नाटक देखने की प्रथा को भी कश्मीर के क्षेत्र में ही सीमित कर देना उचित नही। उनके निबंध में इन तथा इसी प्रकार के और और भौगोलिक स्थानों के सम्वन्ध मे उनकी युक्तियो के जानने के लिए देखिए। बर्थ प्लेस आफ कालिदास—देहली यूनिवर्सिटी पब्लिकेशन्स नं १ के पृ० १२, १६, १७, १८, १९)

रीति रिवाज

कालिदास के नाटकों तथा काव्यों मे जिन व्यवहारों तथा रीतिरिवाजों के वर्णन द्वारा श्री कल्ला महोदय ने उसे कश्मीरी पण्डित सिद्ध करने का यत्न किया है वे प्राय सारे भारत मे उसी प्रकार पाये जाते है अतः उनसे कुछ परिणाम नहीं निकाला जा सकता। (बर्थ प्लेस आफ कालिदास पृ० १९–२२ तक)

उदाहरणार्थ—रघुवंश में, (क) स्वयंवर के दृश्य में, इन्दुमती ने वरमाला अज के गले में स्वयं न पहना कर अपनी धात्री सुनन्दा द्वारा पहनवाई है। किन्तु ध्यान रखना चाहिए कि वह अवसर विवाह का न था। अतः स्वयंवर के व्यवहार के आधार पर विवाह के सम्बन्ध में कोई परिणाम निकाल लेना ठीक नहीं। (ख) विवाह के पश्चात् पलंगचार आदि की विधि के अवसर पर प्रायः सर्वत्र ही वरवधू के मस्तक पर अक्षततिलक लगाया जाता है केवल कश्मीर में ही नही। (ग) विवाह के पश्चात् नाटक देखने का वर्णन कालिदास ने कुमारसंभव में तो किया है रघुवंश में नही। अतः यह नही कहा जा सकता कि क्योंकि उसने शिव पार्वती के नाटक देखने का वर्णन किया है अतः वह कश्मीर का ही था। कवि का तात्पर्य उक्त वर्णन से संभवतः यह है कि शिव स्वयं महानट है और नाट्य के परमाचार्य है, अतः उनके विवाह के अवसर पर इन्द्रादि ने अप्सराओं द्वारा नृत्य का आयोजन किया। विक्रमोर्वशीय नाटक में भी कवि ने मुनिभरत द्वारा अप्सराओं से खेले गए नाटक का वर्णन किया है। तथा मालविकाग्निमित्र में कहा है कि नाट्य तो देवताओं के नेत्रों को तर्पण करने वाला एक यज्ञ है। स्वयं शिवजी ने पार्वती जी से विवाह करके उस संयुक्त नृत्य का आविष्कार किया था जिसके ताण्डव तथा लास्य—ये दो भेद प्रसिद्ध है इत्यादि। घ. मृत्यु के वाद दसवे दिन शुद्धि का वर्णन तो मनु आदि के धर्म-शास्त्र में ही प्रतिपादित है। (मनु स्मृति अध्याय ५ का श्लोक ५९)। १. मनुस्मृति मे मछुवे को निपाद कहा है (मनु अध्याय १० का श्लो० ८ तथा ४८) और उसका जन्म ब्राह्मण पिता से शूद्रस्त्री मे माना है। इस प्रकार के सभी संकरों से उत्पन्न होने वालों को धर्मशास्त्रों में घृणा की दृष्टि से देखा गया है। अत. शाकुन्तल में आए मछुवे के दृश्य से हम कोई निर्णायक परिणाम नही निकाल सकते।

केसर तथा चावल आदि की युक्ति पर विचार

कल्ला महोदय ने केसर, धान तथा सूर्य की पूजा के आधार पर भी कालिदास को कश्मीर निवासी सिद्ध करने का प्रयास किया है। इसमे सन्देह नही कि कवि को केसर की खेती का पता है। रघुवंश के चतुर्थ सर्ग के ६७वे पद्य मे सिन्धु या वंक्षु के तट पर रघु की सेना के घोडों द्वारा केसर के खेतों में लोटने का वर्णन है। केसर कश्मीर में उत्पन्न होता है यह तथ्य उसके पर्यायवाचक शब्द 'कश्मीरज' से ही प्रकट है। कालिदास यह जानता था सारे भारत मे, तथा उससे वाहर भी, क्या विशेप पदार्थ कहां

उत्पन्न होता है। किन्तु इस ज्ञान के आधार पर उसे उन सब प्रदेशों का निवासी नही ठहराया जा सकता। कवि ने अपनी रचनाओं मे, जगह जगह, अगराग आदि के लिए केसर का वर्णन किया है, खेतो में खिल रहे केसर के फूल का नही।" कालिदास को केसर पर वह गर्व नही जो कश्मीरी कवि बिल्हण[1] को है जिसने यहाँ तक लिख दिया कि 'मै तो समझता हूँ कि कवि-प्रतिभा के विलास भी केसर सरीखे ही होते है क्योकि मैने उसे—(केसर को) शारदा (अर्थात् सरस्वती) के देश कश्मीर से अन्यत्र तथा कवि प्रतिभा के विलास को शारदाऽऽदेश (सरस्वती की कृपा) के बिना अंकुरित होते नही देखा। मेघदूत में यक्ष के भवन मे जिस केसर[2] का वर्णन हुआ है वह मौलसरी है न कि कुकुम, क्योकि कवि ने उसे नायिका की मुखमदिरा[3] का लोभी कहा है। केसर के पौधे का मुखमदिरा से कोई सम्बन्ध नही है।

कालिदास ने ऋतु संहार मे जगह जगह तथा अन्यत्र भी धान के खेतो का वर्णन किया है। किन्तु धान तो सारे ही भारत में उत्पन्न होता है, अतः प्रो० कल्ला को धान की खेती के साथ केसर की खेती को मिलाना पड़ा। उनकी युक्ति है कि कवि का निवास स्थान वह प्रदेश होना चाहिए जहाँ ये दोनों वस्तुएँ उत्पन्न होती है और ऐसा प्रदेश कश्मीर ही है अतः कालिदास वही

---

१ सहोदराः कुकुम केसराणां भवन्ति नूनं कविता विलासाः।
न शारदा देश मपास्य दृष्टस्तेषांतदन्यत्र मया प्ररोहः॥
विक्रमाक देव चरित, सर्ग १ का श्लोक २१

२. रक्ताशोकश्चल किसलयः केसरश्चात्र कान्तः
प्रत्यासन्नौ कुरबकवृतेर्माधवी मण्डपस्य।

३ एकः सख्यास्तव सह मया वाम पादाभिलाषी,
कांक्षत्यन्यो वदनमदिरां दोहदच्छद्मनाऽस्याः॥
उत्तरमेघः १८ श्लोक

पादा हतः प्रमदया विकसत्यशोक. शोक जहाति बकुलो मुखसीधुसिक्तः।
आलोकित. कुरबक. कु ते विकास मालोडित स्तिलक उत्कलिको विभाति॥
कुमार संभव के सर्ग ३ के २६वें श्लोक की टीका मे मल्लिनाथ।

का निवासी था। इसका उत्तर पहले ही दिया जा चुका है कि कालिदास ने केवल एक स्थान पर केसर की खेती का वर्णन किया है और वह भी भारत से बाहर।

सूर्य की पूजा

कालिदास ने विक्रमोर्वशीय मे सूर्य पूजा[1] का विशेष वर्णन किया है तथा सूर्य की पूजा विशेषतया कश्मीर[2] में ही होती थी। यह युक्ति भी प्रो० कल्ला महोदय के पक्ष की पुष्टि नहीं कर सकती। ऋग्वेद[3] के अनेक सूक्तों मे सूर्य की स्तुति की गई है। वह प्रसिद्ध गायत्री[4] मन्त्र, जिसका जप प्रत्येक द्विजाति हिन्दू के लिए आवश्यक है तथा जो चारों वेदों के मन्त्रों में सर्वश्रेष्ठ समझा जाता है सूर्य देवता[5] का ही है। उपनिषदों में सूर्य की वन्दना के मन्त्र हैं। सिकन्दर के आक्रमण के दिनों में भी भारत में सूर्य की उपासना का पता चलता है। उसके साथ आए ग्रीक लेखकों ने उसकी विजय यात्रा के जो विवरण दिए है उनके अनुसार उसने पंजाब में व्यास नदी के तटपर अपने स्मारक के रूप में जो बारह सुविशाल वेदियाँ बनवाई थीं, उन पर ग्रीक देवी देवताओं के प्रति कृतज्ञता प्रकाशन के साथ साथ भारतीय देवता सूर्य[6] का भी अभिनन्दन किया गया था। सर्य देवता की पूजा भारत के विस्तृत भू-भाग पर प्रचलित थी, केवल कश्मीर में ही सीमित न थी। कई ऐतिहासिक मानते हैं कि मगध के

---

१. (क) विक्रमोर्वशीय प्रथम अंक मे प्रस्तावना के तुरन्त पश्चात् राजा की उक्ति। कालिदास ग्रन्थावलि पृ० १०७

(ख) विक्रमोर्वशीय तृतीय अंक मे १७ व श्लोक के आगे चित्रलेखा की उक्ति। (कालिदास ग्रन्थावली पृ० १४६)

२. वर्थ प्लेस आफ कालिदास—लक्ष्मीधर कल्ला पृ० २५।

३. ऋग्वेद प्रथम मण्डल, सूक्त ५० तथा ११५

४. भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।
ऋ० मण्डल ३, सूक्त ६२ मन्त्र १०

५. मैकडानल कृत हिस्टरी आफ सस्कृत लिटरेचर तृतीय संस्करण पृ० ७९। तथा प्रश्नोपनिषद् प्रथम वल्ली ८ मन्त्र।

६. वि० स्मिथ अर्ली हिस्टरी आफ इण्डिया पृ० ८१

शासक शुंग[1] राजा भी सूर्य के उपासक थे। इसलिए कल्ला महोदय को स्वयं ही अपनी इस युक्ति पर संतोष न हुआ और उन्होंने प्रश्न उठाया कि सूर्य के मन्दिर तो मुल्तान तथा दशपुर (वर्तमान मालवा मे मन्दसौर) में भी थे तब केवल सूर्यपूजा के आधार पर कवि को कश्मीरी ही क्यों माना जाए। और उन्होने इसका समाधान किया कि सूर्य पूजा के साथ-साथ कालिदास का परिचय कश्यप ऋषि से भी है और कश्यप ऋषि का आश्रम कश्मीर में ही था अतः इन दोनों बातों को मिला कर देखने से कालिदास कश्मीर निवासी सिद्ध होते है। दुःख का विषय है कि कल्ला महोदय ने यहां भी यह स्वतः सिद्ध मान लिया कि अभिज्ञान शाकुन्तल मे वर्णित कश्यप-आश्रम कश्मीर मे ही था और फिर इस स्वीकृति के आधार पर अपनी कल्पना को खड़ा कर लिया।

प्रत्यभिज्ञा शास्त्र तथा शिवपूजा की युक्ति पर विचार

ऊपर लिखा जा चुका है कि कालिदास के ग्रन्थों में प्रत्यभिज्ञा शास्त्र के सिद्धान्तो की छाया ढूंढ़ना केवल खींचातानी है। इसके साथ ही उसके शैव होने के कारण भी उसे कश्मीर निवासी नही ठहराया जा सकता। शिव तथा विष्णु की पूजा बहुत प्राचीन काल से भारत मे दूर-दूर तक फैल चुकी थी। मैकडानल महोदय ने अपने संस्कृत साहित्य के इतिहास के पृ० १८१ पक्ति ३२, मे लिखा है कि यजुर्वेद का रुद्र बहुत पहले से पौराणिक शिव का रूप ग्रहण करने लगा था। महाभारत[2] मे अनेक स्थानो पर शिव की पूजा का निर्देश है। कृष्ण के रूप मे विष्णु की पूजा तो महाभारत मे सर्वत्र व्याप्त है ही।

प्रोफेसर कल्ला महोदय का अन्तिम आधार मेघदूत रह जाता है। उस पर अधिक विचार करने की आवश्यकता नहीं। क्योकि

---

१. प्राचीन भारत—सी० एस० श्री निवासाचारी तथा एम० ऐस० रामस्वामी आयगर, अनुवादक गोरखनाथ चौबे, प्रकाशक रामनारायण लाल। द्वितीय संस्करण पृ० १२५।

२. (क) महा भारत वनपर्व, १०८ अध्याय २४ श्लोक
   (ख) ,, ,, ,, ३६ अध्याय ३१ श्लोक
   (ग) ,, ,, ,, द्रोणपर्व ८० अध्याय

मेघदूत पर विचार

उसमें ऐसी साक्षी का प्रायः सर्वथा अभाव है जिससे उनके पक्ष का समर्थन हो सके। प्रो० कल्ला कहते है कि इस खण्ड काव्य में कवि ने यक्ष को निमित्त बनाकर अपनी उन भावनाओं और अनुभूतियों को व्यक्त किया है जिन्हें वह सीधे कह कर प्रकट नही कर चाहता था। यदि करता तो उसमें वह सजीवता न आती जो अब आ गई है क्योंकि वह राज सेवक था और सेवक को यह अधिकार नहीं कि वह अपने उचित असंतोष या रोष को भी खुलकर प्रकट कर सके। इसलिए उसने जो कुछ कहा वह यक्ष की आड़ में होकर कहा। कल्ला महोदय ने यह प्रश्न भी उठाया है कि कवि ने यहाँ अपना प्रतिनिधित्व करने के लिए यक्ष को ही क्यों चुना। जबकि साहित्य में यक्ष प्रशंसा के पात्र नहीं हैं। इस प्रश्न का समाधान करते हुए वे कहते हैं कि कश्मीर में यह प्रसिद्धि है कि वहाँ पहले यक्षों का निवास था। अनेक परिवार वहाँ अब भी यच्छ (यक्ष) कहलाते हैं क्योंकि कश्मीरी जनता यक्ष को देवयोनि अर्थात् अतिमानव या प्रेत आदि नहीं मानती। वहाँ के किस्से कहानियों में यच्छबाबा जिस प्रकार ओतप्रोत है वैसा भारत में अन्यत्र नहीं। मेघदूत का यक्ष भी हमारी तरह का मानव मात्र है। कश्मीरी साहित्य में किसी यक्ष के दण्डित होकर निर्वासित होने का भी उल्लेख है। इस पृष्ठ भूमि को देखते हुए यह बिलकुल स्वाभाविक प्रतीत होता है कि कालिदास को कश्मीर निवासी ही स्वीकार किया जाए।

किन्तु मेघदूत को ध्यानपूर्वक पढ़ने से उसके नायक यक्ष की वह पृष्ठ-भूमि नहीं प्रतीत होती, जो प्रो० कल्ला महोदय ने दिखाई है। कवि ने दो तीन स्थानों पर धनपति, धनद, राजराज आदि शब्दों से उस व्यक्ति का निर्देश किया है जिसके कारण उसे अपनी पत्नी से मिलन का अवसर नही मिल सका तथा उसने अपना निर्देश 'गुह्यक' शब्द से किया। इसका अर्थ है गोपनीय व्यक्तित्व वाला (गुह्यः=गोपनीयः, कः=आत्मा-स्वरूपं यस्य। 'को ब्रह्मण्यात्मनि रवौ मयूरेऽग्नौ यमेऽनिले।' हेमचन्द्रः) पहले लिखा जा चुका है कि धनपति, तथा राजराज और धनद आदि शब्दों से कवि संभवतः यही सूचित करना चाहता है कि उसका आश्रयदाता धनवान् है राजाधिराज है तथा उसे धन अर्थात् वेतन और पुरस्कार आदि देता है। स्वामी कितना ही सहृदय, न्याय परायण तथा उदार हो तो भी शासक के लिए ऐसे अवसर तो प्रायः आते ही रहते हैं जब कर्त्तव्यवश उसे ऐसे आदेश भी देने पड़ते हैं जो उसके

अधिकारियो तथा सेवकों को रुचिकर नही होते। अभिमानी तथा उद्धत राजाओ का तो कहना ही क्या, और वह भी राजतन्त्र शासन मे। कवि ने ऋतु सहार मे वर्षाकाल को राजा की तरह उद्धत कहा है जबकि राजा का वहाँ कोई प्रसग न था। जान पड़ता है कि कवि ने राजा तथा उद्धतपन को प्राय: साथ-साथ देखा होगा अत: वर्षाकाल के उद्धतपन को देखते ही राजा का विचार भी उसकी कल्पना में उपस्थित हो गया।

मेघदूत का मेघ कश्मीर की तरफ नही और जाता अलका के वृक्ष तथा ऋतु भी कश्मीर के अनुरूप नही।

कालिदास मेघ को कुरुक्षेत्र से पजाब होकर कश्मीर जाने को नही प्रत्युत कनखल होते हुए, मार्ग मे हिमालय की शिला पर अकित सिद्धगणो से अर्चित शिव जी के चरण चिह्न (हरकी पैडी) की भक्तिपूर्वक परिक्रमा करके अलका की ओर और बढ़ जाने को कहता है। पूर्व मेघ का ६१वा पद्य भी ध्यान देने योग्य है। उसमे कवि मेघ से कहता है 'हे सखे, उस अलका नगरी मे मनचली सुर ललनाएँ अपनी चूड़ियो मे जड़े हीरो की नोक से छेद-छेद कर तुम्हे उस धारा गृह सा बना लेगी जिसमें चारों तरफ फुहारे छूटा करते है और वहाँ बैठकर वे गर्मी मे भी ठंड का आनन्द लूटेगी। यदि वे तुम्हे किसी तरह भी छोड़ने को तय्यार न हो तो तुम अचानक भयानक गर्जना करके उन्हे डरा देना।' यद्यपि गर्मियो मे कश्मीर बहुत ठढा नही रहता, तो भी कोई सहृदय कवि उन दिनों वहाँ शीतल धारा गृहो मे चल रहे फुआरो में भीगने की कल्पना को सुखद नही समझ सकता। उत्तर मेघ के पन्द्रहवे तथा सोलहवे श्लोको में यक्ष अपने भवन का वर्णन करता हुआ कहता है कि उसके आगन मे रक्ताशोक तथा मौलसरी के दो वृक्ष पास-पास खड़े है, उन-पर मरकत मणियो से जड़ी सोने की एक छड़ लगी है, जिस पर रात के समय पालतू मोर बसेरा लिया करता है। रक्ताशोक और मौलसरी के वृक्ष कश्मीर मे स्वभाव से नही उत्पन्न होते और जाड़ों की रातो मे उन पर पालतू मोर का रहना भी सभव नही। उत्तर मेघ के अन्त मे, ४७वे पद्य मे, यक्ष अपनी पत्नी को भेजे सन्देश की समाप्ति पर कहता है 'हे प्यारी, अगली कार्त्तिक शुक्ला एकादशी को जब भगवान् विष्णु निद्रा त्याग कर शेष शय्या से उठेगे तभी हमारा शाप भी समाप्त हो जाएगा। इसलिए इन बचे हुए चार

महीनों को तुम आँख मूँद कर किसी प्रकार निकाल दो। फिर तो, हम दोनों विछोह के इन दिनों में पूरी न होने से बढ़ी हुई मन की साध को, शरद के दिनों की सुहावनी चाँदनी रातों में पूरी कर लेंगे।' इससे सिद्ध होता है कि यक्ष की पत्नी किसी ऐसे प्रदेश में रहती है जहाँ शरद की चाँदनी रातें भी अत्यन्त सुखद होती हैं। और वह स्थान कश्मीर नहीं हो सकता। प्रो० कल्ला महोदय स्वयं ही नील भत पुराण का साक्ष्य उद्धृत करते हुए लिखते हैं—'कश्मीर का निर्माण हो चुकने पर कश्यप ऋषि वहीं रहने लगे। नागों तथा देवताओं को भी रहने के लिए वहाँ अलग-अलग स्थान मिल गए। ऋषि ने जब मानवों को भी वहाँ बसाना चाहा तो नागों ने इस पर आपत्ति की। कुपित होकर ऋषि ने उन्हें शाप दे दिया कि तुम्हें पिशाचों के साथ निवास करना पड़ेगा। तब नील नामक नाग ने प्रार्थना कर ऋषि को कुछ शान्त किया और उन्होंने शाप की कठोरता को कम करते हुए कहा कि देश में (कश्मीर में) पिशाचों का निवास सदा न होकर, वर्ष मे केवल ६ महीने आश्विन से चैत्र तक हुआ करेगा।' सब जानते हैं कि कश्मीर में अक्तूबर में ही काफ़ी ठंड पड़ने लगती है फिर कार्त्तिक के अन्त अर्थात् नवम्बर का तो कहना ही क्या। इसलिए मेघदूत कश्मीर पक्ष की पुष्टि नहीं करता।

कालिदास के किसी भी ग्रन्थ में कश्मीर के दृश्य तथा वृक्ष वनस्पतियों का वर्णन नहीं, कश्मीर से उसका परिचय अवश्य है किन्तु उससे कुछ सिद्ध नहीं होता

ऋतु संहार में विभिन्न ऋतुओं, उनमें विलासी जनों के विनोदों तथा वृक्ष वनस्पति आदि का जो चित्र खीचा गया है, कुमार संभव में हिमालय के जिस भूभाग का वर्णन है, अभिज्ञान शाकुन्तल, विक्रमोर्वशीय और रघुवंश में भी जिस हिमालय का निर्देश है उसका कश्मीर के साथ मेल नहीं बैठता। कश्मीर के हिमपात, हिमाच्छादित पर्वत मालाएँ, अंगीठियाँ, बड़ी-बड़ी झीलें, चश्मे, चनार तथा सफेदा के वृक्ष, और अंगूर आदि फलों का वर्णन कालिदास के काव्यों तथा नाटकों में नही मिलता। अतः उसका जन्म स्थान कश्मीर सिद्ध नहीं होता।

७. बंगाल पक्ष

कवि ने धान के खेतों, उनमें कमलों के खिलने तथा धान के पौधों को एक स्थान से उखाड़ कर दूसरे स्थान पर लगाने की प्रक्रिया का निर्देश रघुवंश में किया है। इस पर कुछ विद्वानों का विचार है कि कालिदास अवश्य ही बंगाली रहे होंगे

क्योंकि उपर्युक्त दृश्य प्रायः बगाल मे ही देखने को मिलता है। इसका उत्तर रघुवश के उसी प्रकरण मे रक्खा हुआ है और उसके लिये कही दूर जाने की आवश्यकता नही। कई बार लिखा जा चुका है कि कालिदास दूर-दूर तक बहुत घूमे थे और उनकी निरीक्षण शक्ति भी असाधारण थी। उनकी सर्व-ग्राहिणी दृष्टि से क्या बच सका होगा—नही कहा जा सकता। यह स्पष्ट है कि उन्होंने अपने अत्यन्त स क्षिप्त वर्णनों मे भी वहाँ-वहाँ के प्रतिनिधि विशेष पदार्थो तथा व्यवहारो का चित्र खीच दिया है। बंगाल भी उनकी उस दृष्टि से कैसे बच सकता था ? यदि कालिदास बंगाली होते तो वे यह कभी न लिखते कि नेता रघु ने उन बंगाली प्रतिद्वन्द्वियों को चुटकियों में ही उखाड़ फेका जो अपनी जल सेना सजा कर उससे लोहा लेने आए थे और गगा सागर के प्रदेश मे उसने अपनी विजय के झण्डे गाड़ दिये। पराजय स्वीकार कर लेने पर रघु ने उन्हे फिर से अपने राज्य मे इस प्रकार प्रतिष्ठित कर दिया जैसे किसान धान के पौधो को एक जगह से उखाड़ कर दूसरी जगह लगा देता है और वे राजा भी धान के उन पौधो की तरह ही उपहार रूपी फल भार लिए हुए आकर उसके चरण कमलों मे झुक गए। रघु की इस दिग्विजय यात्रा के प्रसग मे कवि ने मगध का पराजय नही दिखाया, वह चाहता तो बंगाल को भी इससे बचा सकता था क्योकि रघु का दिग्विजय कोई ऐतिहासिक तथ्य तो था नही। फिर कालिदास तो केवल काव्य लिख रहा था न कि इतिहास। ऐसी निर्ममता से बंगाल के पराजय की घोषणा से सिद्ध होता है कि कवि के हृदय में उसके प्रति ममता नही है।

गंगा तथा हिमालय का प्रदेश—कालिदास के ग्रन्थों को पढ़ने से यदि किसी स्थान के प्रति उसका सर्वतोऽधिक प्रेम प्रकट होता है तो वह गगायुक्त हिमालय का प्रदेश ही है। इस प्रदेश के प्रति कवि के हृदय मे आदर है, भक्ति है, वहाँ निवास के दिनो का उल्लास तथा वहाँ से प्रवास के समय की उत्कण्ठा है। विरहावस्था मे, आषाढ़ के प्रथम दिन[1] पूर्व की ओर से उठकर, गिरिशिखरो पर वप्रक्रीड़ा करते गज के समान सुन्दर मेघ को देखकर कण्ठाश्लेष-प्रणयिजन

मेघदूत का साक्ष्य

---

१. आषाढस्य प्रथम दिवसे मेघमाश्लिष्ट सानुम्,
वप्रक्रीड़ा परिणत गज प्रेक्षणीय ददर्श ॥ पूर्वमेघ, श्लोक २ ॥

की स्मृति से कवि व्याकुल हो जाता है। उसके नेत्रों में आँसू छलछला आते[1] हैं हृदय हाथ से निकल जाता है, विवेक जाता रहता है, वह चेतनाचेतन[2] का भी विचार न करता हुआ, उसे ही अपना सन्देशहर बना लेता है। वह उसे मार्ग में आम्रकूट, दशार्ण को राजधानी विदिशा, उज्जयिनी, देवगिरि, दशपुर, ब्रह्मावर्त्त और कुरुक्षेत्र की सैर कराता हुआ कनखल पहुँचा देता है। कनखल वह स्थान है जहाँ पर्वतों से निकलकर गंगा सर्वप्रथम समभूतल पर प्रवाहित होती है। कनखल[3] से आगे वह अपने दूत को गंगोत्तरी और हंसद्वार से गुजरकर कैलाश जाने के लिए कहता है, जिसके अक मे प्रणयी के बाहुपाश में आबद्ध कामिनी की तरह अलकापुरी[4] सुशोभित है। इस अलका का वर्णन करते समय कवि के हृदय की समस्त भावना उसकी लेखनी के अग्रभाग पर केन्द्रित हो गई प्रतीत होती है। मेघ को देखकर उसकी सौदामिनी सी कामिनियों, उसके इन्द्रधनुप से चित्रपटों, उसके गम्भीर घोपसी ध्वनिवाले मृदगों से युक्त अलका के मणिजटित प्रासाद उसकी आँखों के आगे नाचने लगते[5] हैं। उपवन कुसुमों के आभूपणों से अलकृत ललनाओं की नर्म-क्रीड़ाएँ, उसे विह्वल कर डालती है। मधुर कण्ठ से कुबेर का गुणगान करते हुए किन्नरों से युक्त वैभ्राज नामक वाह्योद्यान मे

---

१. मेघालोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथा वृत्ति चेतः
कण्ठाश्लेप प्रणयिनि जने किं पुन र्दूरसस्थे ॥ पूर्वमेघ, श्लोक ३ ॥

२. कामार्ता हि प्रकृति कृपणाश्चेतना चेतनेपु। पूर्व मेघ। श्लोक ५॥

३. तस्माद्गच्छेरनु कनखल शैलराजावतीर्णाम्,
जह्नो. कन्या सगरतनयस्वर्ग सोपान प क्तिम् ॥ पूर्वमेघ, श्लोक ५०॥

४. तस्योत्संगे प्रणयिन इव स्रस्त गंगादुकूलां-
न त्व दृष्ट्वा न पुनरलका ज्ञास्यसे कामचारिन् ॥
पूर्वमेघ, श्लोक ६३ ॥

५. विद्युत्वन्त ललितवनिताः सेन्द्रचापंसचित्राः,
सगीताय प्रहतमुरजाः स्निग्धगंभीर घोपम् ॥
अन्तः स्तोयं मणिमय भुवस्तुगमभ्र लिहाग्राः
प्रासादास्त्वां तुलयितुमल यत्र तैस्तैर्विशेपैः ॥
उत्तरमेघ, श्लोक १ ॥

वार्तालाप करते हुवे युगलप्रेमियों को देख वह मन मसोस कर रह जाता[1] है।

वहाँ उसका अपना घर, उसके आगे मन्दारतरु[2], स्वर्ण कमलो से अलंकृत वापिका[3], क्रीड़ाशैल, बकुल तथा अशोक-वृक्ष[4] और इन सबके बीच मे कलामात्र शेष हिमांशु लेखासी उसकी विरहक्षामा[5] पत्नी--इन सबको स्मरण कर उसके नेत्रो से अश्रुधारा बहने लगती है।

८. (ख) कुमार संभव का साक्ष्य

किन्तु यही पर हम एक अत्यावश्यक बात कह देना चाहते है, वह यह कि पुराणो मे वर्णित इस अलका से कवि का कोई सम्बन्ध नही है; जिस प्रकार मेघदूत के प्रारम्भ में कवि ने यक्ष को रामगिरि पर्वत पर खड़ा करके अपने प्रवास स्थान की केवल दिशा ही दिखाई है, वास्तविक स्थान नही, उसी प्रकार यहाँ भी उसने अपने अभिजन की दिशा ही बतलाई है,

---

१. अक्षय्यान्तर्भवन निधय: प्रत्यहं रक्तकण्ठै
रुद्गायद्भिर्धनपति यश: किन्नरै: यत्र सार्धम्,
वैभ्राजाख्य विबुधनिता वारमुख्यासहाया,
बद्धालापा वहिरुपवन कामिनो निर्विशन्ति ॥

उत्तरमेघ, श्लोक ८ ॥

२. यस्योपान्ते कृतक तनय: कान्तया वर्धितो मे
हस्तप्राप्यस्तबकनमितो बालमन्दार वृक्ष: ॥

उत्तरमेघ, श्लोक १२ ॥

३. वापीचास्मिन् मरकत शिला बद्धसोपान मार्गा
हैमैरछन्ना विकच कमलै: स्निग्ध वैदूर्य नालै ॥

उत्तरमेघ, श्लोक १३ ॥

४. रक्ताशोकश्चल किसलय: केसरश्चात्र कान्त:
प्रत्यासन्नौ कुरबकवृते माधवी मण्डपस्य ॥

उत्तरमेघ, श्लोक १५ ॥

५. अधिक्षामा विरहशयने सनिपण्णैकपार्श्वाम्
प्राचीमूले तनुमिवकलामात्र शेषां हिमांशो: । उत्तरमेघ, श्लोक २६ ॥

उसका सीधा निर्देश नही किया । कवि का यह आशय सर्वथा नही कि वह अलका का ही निवासी है। उसके पास के ही किसी अन्य स्थान को वह उससे भी अधिक मानता है, यह कुमारसम्भव के चतुर्थ सर्ग से स्पष्ट हो जाता है । वहाँ लि ा है कि वे सप्तर्षि-गण कैलाशवासी शिव के स्थान से चलकर, हिमालय के नगर "औपधिप्रस्थ" में पहुँचे । वह नगर सब सम्पत्तियों के आगार अलका से भी बढ़कर था। मालूम होता था कि स्वर्ग की उत्कृष्टतम विभूतियों को लाकर उनसे उसकी रचना की गई थी[1]। पाठक इन शब्दो को ध्यान से पढ़कर इससे कवि के उज्जयिनी वर्णन को मिलावे तो स्पष्ट विदित हो जावेगा कि उसका अनुराग इस स्थान के प्रति कही अधिक है। उज्जयिनी स्वर्ग के समान या उससे कुछ कम ही थी जबकि यह नगर उससे कही बढ़कर है।

इस नगर के चारों ओर खाई थी, जिसमे गंगा की धारा प्रवाहित हो रही थी। इसके साल अर्थात् चारों ओर की दीवारे मणिमाणिक्यों से अलंकृत तथा इसके वप्र अर्थात् दीवारो के स्थूल आधार नाना प्रकार की औपधियों की आभा से जगमगा रहे थे[2]। इसके आगे कवि ने प्राय. उन्ही शब्दों तथा उन्ही भावों मे

---

१. ते चाकाशमसिश्यामम‌ुत्पत्य परमर्षय· ।
आसेदुरोपधीप्रस्थं मनसा समरहस·॥ कुमार सर्ग ६—३७॥
अलकामति वाह्येव वसति वसु सपदाम् ।
स्वर्गाभिष्यन्द वमनं कृत्वेवोपनिवेशितम् ॥ कुमार०, सर्ग ६—३७॥

२. गंगा स्रोतः परिक्षिप्त वप्रान्तर्ज्वलितौपधि ।
वृहन्मणिशिलासाल गुप्ता वपि मनोहरम् ॥ कुमार०, सर्ग ६—३८॥

३. (।) यत्र कल्पद्रुमैरेव विलोलविटपांशुकै· ।
गृह यत्रपताकाश्रीरपौरादर निर्मिता ॥ कुमार०, सर्ग ६—४१॥
(ख) लाक्षाराग चरणकमलन्यासयोग्य च यस्याम्
एक· सूते सकलमवलामण्डनं कल्पवृक्षः॥ उत्तरमेघ।
श्लोक ११॥

(॥) (क) शिखरासक्तमेघाना व्यज्यन्ते यत्र वेश्मनाम्।
अनुगर्जितसंदिग्धा करणैर्मुरजस्वना:॥ कुमार०, सर्ग ६—४०॥
(ख) विद्युत्वन्त ललितवनिताः सेन्द्रचापं सचित्राः,
सगीताय प्रहतमुरजाः स्निग्धगम्भीरघोषम्।

उसका वर्णन किया है जिनमे उसने मेघदूत की अलकापुरी का किया था। दोनों वर्णन तुलना के योग्य है। नीचे हम पाठकों के मनोरजनार्थ दोनों को उद्धृत किए देते है[1]। सबसे अन्त मे कवि कहता है कि "हिमालय के इस कमनीय नगर को देखकर वे दिव्य मुनि भी चकित हो गए और सोचने लगे कि इतने पुण्यों से केवल स्वर्ग ही प्राप्त करके वे तो ठगे गए[2]।" यह है कवि के भावावेश की पराकाष्ठा। इसे ही किसी ने दूसरे शब्दों मे कहा है—"जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।" ध्यान रहे कि हिमालय का यह नगर देवलोक मे नही, इसी भूमि पर है। हिमालय कहता है—"हे मुनिगण! आपने मेरे गृह मे पधारकर मेरा गौरव बढ़ाया है, जिससे मै अपने आपको मूर्ख होता हुए भी बुद्धिमान्‌सा, लोहमय होता हुवा भी हिरण्मयसा और भूमिस्थ होता हुआ भी स्वर्गरूढ़सा समझने लगा हूँ।"[3] हे मुनियों! अपने शिर पर धारण किये हुए गगा के जलप्रपात तथा आपके चरणोदक से मै पवित्र हुआ। अबसे सब प्राणी आत्मशुद्धि के लिए मेरा आश्रय लिया करेंगे क्योकि जिस स्थान को आप जैसे सज्जन अपनी पदधूलि से पवित्र कर देते है वही तीर्थ हो जाता है। आपके चरणस्पर्श से मेरा यह स्थावररूप तथा आपके

अन्तस्तोयं मणिमयभुवस्तुगमभ्र लिहाग्राः,
प्रासादास्त्वां तुलयितुमलं यत्र तैस्तैर्विशेषैः ॥ उत्तर मेघ।
श्लोक १ ॥

(III) (क) भ्रू भेदिभिः सकम्पोष्ठै र्ललितागुलितर्जनैः,
यत्र कोपैः कृताः स्त्रीणा माप्रसादार्थिनः प्रियाः ॥
कुमार, सर्ग ६—४५ ॥

(ख) सभ्रूभंगप्रहितनयनैः कामिलक्ष्येष्वमोघैः,
तस्यारभश्चतुरवनिताविभ्रमैरेव सिद्ध. ॥ उत्तर मेघ।
श्लोक १ ॥

१. अथ ते मुनयो दिव्याः प्रेक्ष्य हैमवतं पुरम्,
स्वर्गाभिसंधि सुकृतं वञ्चनामिव मेनिरे ॥ कुमार०, सर्ग ६—४७ ॥

२. मूढ बुद्धमिवात्मानं हैमीभूतमिवायसम्।
भूमेर्दिवमिवारूढं मन्ये भवदनुग्रहात्।
अद्य प्रभृति भूतानामधिगम्योऽस्मि शुद्धये।
यदध्यासितमर्हद्भिस्तद्धितीर्थ प्रचक्षते ॥ कुमार०, सर्ग ६—५५-५६ ॥

आज्ञानुग्रह से मेरा यह चेतनरूप–दोनों ही आज कृतकृत्य हुए[1]। मुझसे आपकी क्या सेवा बन सकती है ? मैं आपके लिए क्या नहीं कर सकता ? मालूम होता है कि मुझे केवल कृतार्थ करने के लिए ही आपने यहाँ पधारने का कष्ट किया है[2]। स्वयं मैं, मेरी धर्मपत्नी, कुल की सर्वस्व यह मेरी कन्या–सब आपकी सेवा मे उपस्थित हैं। बस आज्ञा कीजिए[3]। इसके उत्तर मे ऋषि बोले—तुमने जो कुछ कहा सब ठीक है; तुम्हे यही शोभा देता है। तुम्हारा हृदय भी तुम्हारे शिखरों के समान ही समुन्नत है। तुम्हारे स्थावररूप को शास्त्रों में साक्षात् विष्णु कहा गया है। यह ठीक ही है, क्योंकि तुमने चराचर को धारण किया हुआ है[4]। अपने विमल विस्तार से निरन्तर फैलने वाली, समुद्र तक व्याप्त तुम्हारी कीर्तियाँ तथा नदियाँ लोक को पवित्र कर रही है। परमेष्ठी महादेव का तथा तुम्हारा आश्रय प्राप्त कर त्रिलोक पावनी गंगा अपने आपको धन्य मानती है[5]। यज्ञ भाग को प्राप्त करनेवाले देवगणों मे तुम्हारी भी गणना होती है, तुम्हारे

---

१. अवैमि पूतमात्मानं द्वयेनैव द्विजोत्तमाः।
मूर्ध्नि गंगाप्रपातेन धौत पादाम्भसाच वः॥" कुमार०, सर्ग ६—५७॥
जंगमं प्रैष्यभावे वः स्थावरं चरणांकितम्।
विभक्तानुग्रहं मन्ये द्विरूपमपि मे वपुः॥ कुमार०, सर्ग ६—५८॥

२. कर्तव्यं वोन पश्यामि स्याच्चेत् किं नोपपद्यते।
मन्ये मत्पावनायैव प्रस्थानं भवताभिह। कुमार०, सर्ग ६—६१॥

३. एते वयममीदाराः कन्येयं कुलजीवितम्।
ब्रूत येनात्र वः कार्यमनास्था बाह्यवस्तुषु॥ कुमार०, सर्ग ६—६३॥

४. उपपन्नमिद सर्वमतः परमपि त्वयि।
मनसः शिखराणाञ्च सदृशी ते समुन्नतिः॥ कुमार, सर्ग ६—६६॥
स्थाने त्वाँ स्थावरात्मानं विष्णुमाहुस्तथा हि ते।
चराचराणा भूतानां कुक्षिराधारतां गतः॥ कुमार०, सर्ग ६—६७॥

५. अच्छिन्नामलसन्तानाः समुद्रोर्म्यनिवारिताः।
पुनन्ति लोकान् पुण्यत्वात् कीर्तयः सरितश्चते॥ कुमार०, सर्ग ६—६९।
यथैव श्लाघ्यते गंगा पादेन परमेष्ठिनः।
प्रभवेण द्वितीयेन तथैवोच्छिरसा त्वया॥ कुमार०, सर्ग ६—७०

समक्ष सुवर्णमय शिखरोंवाला सुमेरु मन्दप्रभ है[१]। अस्तु हम जिस कार्य के लिए आये है वह वस्तुतः तुम्हारा ही है, किन्तु उसे तुम्हारे सम्मुख उपस्थित करने का श्रेय हमें अवश्य मिलेगा[२]। तदन्तर ऋषियो ने अनेक प्रकार से शिव का परिचय देते हुए कहा कि वे शम्भु स्वयं तुम्हारी कन्या का पाणिग्रहण करना चाहते है और इसी प्रार्थना के लिए उन्होने हमे तुम्हारी सेवा मे भेजा है। अत जिस प्रकार वाणी अर्थ से युक्त है तुम भी पार्वती को शिव से युक्त करदो। अपनी पुत्री योग्य वर को देकर माता पिता निश्चिन्त हो जाते है[३]। तुम्हारी कन्या के बडे भाग्य है कि सभी देवता शिव से दूसरे नम्बर पर इसके ही चरणो मे प्रणाम किया करेगे। तुम्हारी कन्या वधू, देनेवाले तुम, माँगनेवाले हम और वर स्वयं शम्भु—तुम्हारे कुल का इससे अधिक गौरव क्या हो सकता है[४]? जो किसी की स्तुति नही करता किन्तु जिसकी स्तुति सब करते है, जो किसी की वन्दना नही करता, किन्तु जिसकी वन्दना सब करते है उससे अपनी कन्या का सम्बन्ध कर तुम विश्वगुरु के भी गुरु बन जाओ[५]।

इस प्रकार हमने देख लिया कि कवि के लिए हिमालय केवल मिट्टी और पत्थरो का ढेर नही, वह देवतात्मा भी है—देवता रूप[६] है। वह उसकी

---

१. यज्ञभागभुजा मध्ये पदमातस्थुषा त्वया,
उच्चै हिरण्मयं शृंगं सुमेरोर्वितथी कृतम् ॥ कुमार०, सर्ग ६—७२॥

२ तदागमनकार्य नः शृणु कार्य तवैव तत् ।
श्रेयसामुपदेशात्तु वयमत्राशभागिन ॥ कुमार०, सर्ग ६—७४॥

३. स ते दुहितरं साक्षात् साक्षी विश्वस्य कर्मणाम् ।
वृणुते वरदः शम्भुरस्मत् संक्रामितैः पदैः ॥ कुमार०, सर्ग ६—७८॥
तदर्थमिव भारत्या सुतया योक्तुमर्हसि,
अशोच्या हि पितुः कन्या सद्भर्तृप्रतिपादिता ॥ कुमार०, सर्ग ६—७९॥

४. प्रणम्य शितिकण्ठाय विबुधास्तदनन्तरम् ।
चरणौ रञ्जयन्त्वस्याश्चूडामणि मरीचिभि ॥ कुमार०, सर्ग ६—८१॥
उमा वधूर्भवान् दाता याचितार इमे वयम्,
वरः शम्भुरलंह्येष त्वत् कुलोद्भूतये विधिः ॥ कुमार०, सर्ग ६—८२॥

५ अस्तोतु. स्तूयमानस्य वन्द्यस्यानन्यवन्दिनः
सुतासम्बन्ध विधिना भव विश्वगुरोर्गुरुः ॥ कुमार०, सर्ग ६—८३॥

६. अस्त्युत्तरस्या दिशि देवतात्मा, हिमालयो नाम नगाधिराज.
॥ कुमार०, सर्ग १, श्लोक १॥

आराध्या देवी भगवती पार्वती का ही गुरु अर्थात् पिता नही किन्तु विश्वभर के गुरु स्वयं शिव का भी गुरु है। त्रैलोक्य नमस्कृत महादेव उसे सिर झुकाकर प्रणाम करते है। वे उसे अपना श्वसुर बनाकर अपने आपको कृतार्थ मानते[1] है। इस प्रसंग मे इसी सर्ग का चतुर्थ पद्य भी विचारणीय प्रतीत होता है उसमे कवि ने शिव के मुख से कहलवाया है कि उन्नत, मर्यादाशील, तथा जगत् की धुरी को धारण करने वाले उस हिमालय से सम्बन्ध जुडने के कारण मुझे (अर्तात् कालिदास को) भी आप कृतार्थ समझिए[2]।

गगायुक्त हिमालय के इस थोड़े से प्रदेश के प्रति कवि का पक्षपात रघुवंश मे भी प्रकट हुए विना नही रह सका। रघु की विजय-वाहिनी सब देशों को पादाक्रान्त करती हुई फारस, हूण देश और कम्बोज होती हुई, पजाब को पार कर अन्त मे कवि के इसी गौरी-गुरु हिमालय के चरणो मे आ पहुँची[3]। कवि का स्वदेशानुराग इसे मगध की तरह विना निर्देश किये आगे बढने नही देता। वह इसकी पराजय भी नही दिखलाता। अतः कवि लिखता है:—"रघु की घुड़सवार सेना हिमालय पर चढ़ने लगी। घोड़ों के सुमो के आघात से उठी रेणु से मानों वह उसके शिखरों का अभिवर्धन-अभिनन्दन कर रही थी। वहाँ कन्दराओ मे सोये हुए सिंहों ने, सैन्यघोष से निद्रा भग होने पर एक बार गर्दन फेरकर निर्भयता से उस ओर देखा ओर फिर लेट गए[4]। मानो उन्होने यह कहा कि हम भी तुम्हारी तरह ही वीर है, तुम्हारी कुछ परवाह नही करते। तुम हमे न छेड़ो, हम तुम्हे कुछ न कहेगे। यहाँ कवि ने जिस कौशल से अपने प्रदेश के पुरुष-सिंहो की आनबान का वर्णन कर दिया है वह केवल सहृदय ही समझ सकते है। यह हिमालय का कौनसा प्रदेश है—यह सन्देह किसी को न रह जाए इसलिए कवि कहता है कि "भूर्जपत्रों मे मर्मरित तथा वेणुओं से वंशी ध्वनि करने वाले और गगा के जलकणो से सुशीतल मारुत उसकी सेवा

८. (ग) रघुवंश का साक्ष्य

१. ह्रीमानभूद्भूमिधरो हरेण, त्रैलोक्य वन्द्येन कृत प्रणामः,
॥ कुमार०, सर्ग ७, श्लोक ५४ ॥

२. उन्नतेन स्थिति मताधुर मुद्वहताभुवः,
तेन योजित संम्बन्धं विद्ध मामप्य वंचितम्॥ कुमार०, सग ६, पद्य ४॥

३. ततो गौरी गुरु शैल मारुरोहाश्वसाधनः,
वर्धयन्निव तत् कूटानुद्धूतैर्धातु रेणुभिः ॥ रघु०, सर्ग ४, श्लोक ७१ ॥

४. शशास तुल्य सत्त्वाना सैन्यघोपेऽप्यसंभ्रमम्,
गुहागयाना सिंहानां परिवृत्यावलोकितम् ॥ रघु०, सर्ग ४, श्लोक ७२ ॥

कर रहे' थे। यहाँ से कुछ आगे बढ़ते ही रघु का संघर्ष पर्वतीय गण राज्यों से हुआ।[२]

राजा दिलीप वशिष्ठ ऋषि की धेनु नन्दिनी को चराने के लिए प्रतिदिन वन मे ले जाया करते थे। एक दिन राजा की परीक्षा करने के लिए वह गौरी गुरु हिमालय[३] की उस घाटी मे जा पहुँची, जहाँ गगा के प्रपात के निकट हरी हरी घास लहलहा रही थी। कहाँ हिमालय और गंगा, एव कहाँ अयोध्या तथा उसके निकट ही वशिष्ठ का आश्रम ? कुछ समझ मे नही आता कि मामला क्या है। गंगा और हिमालय ने कवि की कल्पना पर कुछ ऐसा प्रभाव कर रक्खा है कि उसे सर्वत्र वे ही दीखते है। कवि विशाखदत्त ने राजा नन्द की ऐसी ही प्रेमदशा का वर्णन राक्षस के इस उद्गार मे किया है—

"अज्ञासी· प्रीति योगात् स्थितमिव नगरे राक्षसानां सहस्रम्"

८. (घ) अभिज्ञान शाकुन्तला मे गंगा तथा हिमालय

अभिज्ञान शाकुन्तल के छठे अंक में मछुए द्वारा अँगूठी मिल चुकने के पश्चात् राजा को सब पुरानी बाते एक-एक कर याद आ रही है। "किस प्रकार मैंने शकुन्तला का तिरस्कार किया, किस प्रकार वह बेचारी अपने साथियों की ओर बढ़ी ही थी कि कण्व के शिष्य शार्ङ्गरव ने उसे निष्ठुरता से डाँट दिया और तब वह किस प्रकार अश्रुपूर्ण कातर-नेत्रों से मेरी ओर ताकती रह गई, यह कटुस्मृति मेरे हृदय को विषदिग्ध शर की तरह छेद रही है[४]।" इसी समय उसके बनाये शकुन्तला के चित्र को लेकर परिचारिका चतुरिका वहाँ आ जाती है। राजा देखकर कहता है कि यह तो अभी अधूरा ही है। वह तूलिका मंगवाता है। अपने मित्र

---

१. भूर्जेषु मर्मरीभूताः कीचक ध्वनि हेतवः,
गंगाशीकरिणो मार्गे मरुतस्तं सिषेविरे ॥ रघु०, सर्ग ४, श्लोक ७३ ॥

२. तत्र जन्यं रघोर्घोरं पर्वतीयैर्गणैरभूत् ॥ रघु०, सर्ग ४, श्लोक ७७ ॥

३. अन्येद्युरात्मानुचरस्य भावं जिज्ञासमाना मुनिहोमधेनुः।
गगाप्रवातान्तविरूढ़शष्पं गौरीगुरोर्गह्वरमाविवेश ॥ रघु०, सर्ग २-२६ ॥

४ इतः प्रत्यादेशात्स्वजनमनुगन्तुं व्यवसिता,
मुहुस्तिष्ठेत्युच्चैर्वदति गुरुशिष्ये गुरुसमे,
पुनर्दृष्टिं वाष्पप्रसर कलुषामर्पितवती
मयि क्रूरे यत्तत्सविषमिव शल्यं दहति माम् ॥ शाकु० ६ ॥ ९ ॥

माधव्य के यह पूछने पर कि इसमें अब और क्या बनाना शेष है ? राजा उत्तर देता है कि सुनो—'पहले तो इसमें मालिनी नदी बनानी है, जिसके पुलिन मे हंस-युगल केलि कर रहे हैं। उसके दोनों प्रान्तों में गौरीगुरु हिमालय के पावन टीले अंकित करने है। फिर, जिसकी शाखाओं में मुनियो के वल्कल वस्त्र लटक रहे है ऐसे तपोवन तरु के नीचे कृष्णमृग के सीग से अपने वामनेत्र को खुजाती हुई एक हरिणी का भी चित्र बनाना चाहता हूँ[1]। कवि चाहता तो चित्र को पहले ही पूर्ण कर सकता था, ऐसा न करके उसने पीछे से गिनाई इन वस्तुओ पर विशेष बल ही दिया है। नही तो गौरी-गुरु के प्रति कवि का असाधारण अनुराग पाठकों के ध्यान में कैसे आता ?

८ (ङ) विक्रमोर्वशीय में भी वही गंगा तथा हिमालय

कुमार-सम्भव, शाकुन्तल और मेघदूत की तरह विक्रमोर्वशीय नाटक की घटना का मुख्य स्थान भी हिमालय ही है। उर्वशी आदि अप्सराएँ कुवेर के यहाँ से लौट रही थी कि मार्ग मे उन पर हिरण्यपुरवासी केशी दानव ने आक्रमण कर दिया। उसने उर्वशी तथा चित्रलेखा को वन्दी बना लिया। शेप अप्सराओं के क्रन्दन कोलाहल को सुनकर सूर्य की पूजा करके लौटता हुआ राजा पुरुरवा अचानक वहाँ आ निकला। उसने युद्ध करके असुर के हाथ से उर्वशी का उद्धार किया। राजा की वीरता पर वह मुग्ध होकर उसके प्रेम पाश में बद्ध हो गई। अनेक विघ्नों के बाद तृतीय अंक मे दोनों प्रेमी एक दूसरे को पा सकने में सफल हुए। चतुर्थांक मे राजा पुरुरवा उर्वशी को साथ लेकर हिमालय में गन्धमादन पर्वत पर पहुँचता है। वह गगा के तट पर खेलती हुई किसी विद्याधर कुमारी को देखने लगता है इससे रुष्ट होकर उर्वशी कार्तिकेय के तपोवन में जा निकलती है और वहाँ पहुँचते ही वह लता बन जाती है। राजा उसे सर्वत्र ढूँढ़ता फिरता है, अन्त मे सगमनीय मणि के प्रभाव से वह पुन. अपनी प्रियतमा को प्राप्त कर लेता है। इत्यादि।

---

१. कार्यासैकत लीन हसमियुना स्रोतोवहा मालिनी,
पादास्तामभितोनिपण्ण हरिणा गौरीगुरोः पावनाः ॥
शाखालम्बितवल्कलस्य च तरो निर्मातुमिच्छम्यधः
शृंगेकृष्णमृगस्य वामनयनं कण्डूयमानां मृगीम् ॥ शाकु० ६।१७ ॥

२. भागीरथी निर्झरसीकराणां वोढा मुहुः कम्पित देवदारुः
यद्वायुरन्विष्ट मृगैः किरातैरासेव्यते भिन्न शिखण्डि वर्हः ॥
कुमार० सर्ग १ पद्य १५॥

कुमार-सम्भव के आधार पर पहले भी बहुत कुछ लिखा जा चुका है। अब दो पद्य और देकर इस प्रसग को समाप्त करते है। कुमार सम्भव के प्रथम सर्ग का प्रारम्भ ही हिमालय की महिमा के गान से होता है। कुछ दूर चलकर कवि लिखता है कि "और भागीरथी के झरने के जलकणों को वहन करने वाले, देवदारु के वनो को पुनः पुन आन्दोलित करते हुए, मयूरो को पुलकित करने वाले जिसके पवन को शिकार के पीछे भागते हुए किरातगण सेवन किया करते है।" इसी प्रथम सर्ग के अन्त मे कवि पुन. लिखता है—"वे गजचर्मधारी, सयतेन्द्रिय, गगा-प्रवाह से देवदारु वन को आप्लावित करने वाले महादेव कस्तूरीमृग की सुरभि से सुवासित, किन्नरगणो की मन्द सगीत ध्वनि से मुखरित, हिमगिरि के उस प्रदेश मे, समाधिस्थ हो गये।" (कुमार १-५३)।

कुमार-सम्भव मे तो है ही हिमालय का वर्णन। अतः उसे भी हम ऋतु-संहार की तरह ही किसी स्थापना के पक्ष-विपक्ष मे प्रमाण के रूप मे उपस्थित नही करते तो भी इतना अवश्य कह देना चाहते है कि वैसा वर्णन भी कोई ऐसा व्यक्ति नही कर सकता जिसके जीवन का बहुत बड़ा भाग हिमालय मे न व्यतीत हुआ हो।

'कालिदास का स्थान' का सार

१. (क) कवि ने अपने जन्म स्थान के विषय में स्वय कुछ नही लिखा।

(ख) किसी अन्य प्राचीन लेखक ने भी इस सम्बन्ध कुछ प्रकाश नही डाला।

(ग) अतः उसके ग्रन्थों का अन्तः साक्ष्य ही एक मात्र आधार शेष रह जाता है।

२. अन्त साक्ष्य के आधार पर चार मत प्रचलित है।

(क) मगध वाला मत।

(ख) मध्य भारत मे उज्जयिनी वाला मत।

(ग) कश्मीर वाला मत।

(घ) बंगाल वाला मत।

३. **मगध पक्ष**—रघुवश मे मगध के प्रति कवि का विशेष पक्षपात है। सुदक्षिणा तथा सुमित्रा को कवि ने मगध की राज कन्या कहा है। रघुवश के

छठे सर्ग में मगधेश्वर को स्वयंवर सभा में प्रथम स्थान प्रदान कर इन्दुमती से उसे प्रणाम करवाया है। किन्तु उसी चतुर्थ सर्ग में दिग्विजय के प्रसंग में रघु से उसका पराजय नहीं दिखाया।

इसका उत्तर पक्ष--मगधेश्वर के प्रति भक्ति प्रकाशित करते हुए भी कवि ने मगध देश तथा वहाँ के जीवन के प्रति किसी प्रकार का अनुराग प्रकट नहीं किया।

४. मध्य भारत में उज्जयिनी वाला पक्ष--(क) ऋतु संहार में ऋतुओं, प्राकृतिक दृश्यों तथा मानव जीवन का वर्णन मध्यभारत के जलवायु के अनुरूप हुआ है। कहीं-कहीं विन्ध्याचल का स्पष्ट निर्देश भी मिलता है।

(ख) मेघदूत में कवि ने जिन ३१ नगर, पर्वत, नदी, दृश्य तथा मानव-जीवन आदि का वर्णन किया है उनमें से १७ मध्यभारत से सम्बन्ध रखते हैं और इस प्रदेश के पद-पद से उसका साक्षात् परिचय है। उज्जयिनी उसके लिये विशेष आकर्षण का विषय है। महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री तथा मि० स्मिथ भी इस मत के पक्षपाती हैं।

इसका उत्तर पक्ष—उज्जयिनी में कवि का मेघ महाकाल को भक्ति से प्रणाम करता है, वहाँ के प्रेमी प्रेमिकाओं को देखता है, खिलती केतकियों की महक से सुवासित शिप्रा के शीतल पवनों का आनन्द लेता है किन्तु वहाँ उसे यक्ष की पति परायणा पत्नी के दर्शन नहीं होते और वह अपनी यात्रा पर आगे बढ़ जाता है। अतः यह प्रदेश कवि का जन्म स्थान नहीं जहाँ वह मेघ को दूत बना कर अपना सन्देश भेजना चाहता है।

५. कश्मीर पक्षः—प्रो० लक्ष्मीधर कल्ला कश्मीर को कालिदास का जन्म स्थान मानते है क्योंकि—

(क) कवि ने मेघ को सन्देश देकर उत्तर दिशा में भेजा है और कश्मीर भारत के उत्तर में है।

(ख) कवि के ग्रन्थों में जिन भौगोलिक स्थानों—कण्वाश्रम, कश्यपाश्रम, गंगा, मालिनी, शचीतीर्थ ब्रह्मसर आदि का वर्णन हुआ है वे 'नीलमत पुराण' के अनुसार कश्मीर के अन्तर्गत हैं।

(ग) कवि ने जिन सामाजिक रीति रिवाजों और व्यवहारों तथा विश्वासों का वर्णन किया है वे कश्मीर में आज भी प्रचलित हैं और केवल कश्मीरी लेखक को ही उनका ज्ञान हो सकता है।

(घ) कालिदास के ग्रन्थों मे शैवधर्म के उस प्रत्यभिज्ञा दर्शन के सिद्धान्तों का प्रति पादन किया गया है जो उस समय केवल कश्मीर में ही विदित थे ।

(ङ) सूर्यपूजा, केसर, धान की खेती तथा यक्ष भी यही सिद्ध करते हैं कि कवि कश्मीर का निवासी था।

इसका उत्तर पक्ष—(क) कवि का लक्ष्य कश्मीर नही किन्तु गढ़वाल है क्यों कि मेघ कश्मीर न जाकर कुरुक्षेत्र से गंगा द्वार की ओर चला जाता है ।

(ख) कालिदास ने जिन भौगोलिक स्थानों—कण्वाश्रम, गंगा मालिनी, तथा शचीतीर्थ आदि का वर्ण किया है वे कश्मीर के नही किंतु गढवाल के हैं क्योंकि कवि के इन वर्णनों का आधार नीलमत पुराण नही प्रत्युत महाभारत है।

(ग) जिन रीति-रिवाज़ों आदि के द्वारा प्रो० कल्ला कवि को कश्मीरी सिद्ध करना चाहते हैं वे केवल कश्मीर तक ही सीमित नही ।

(घ) प्रत्यभिज्ञा दर्शन वाली युक्ति को प्रो० कीथ कुछ महत्त्व नही देता।

(ङ) सूर्य पूजा भारत में सर्वत्र प्रचलित थी न कि केवल कश्मीर में। यक्ष केसर तथा धान की खेती से परिचय भी कवि को कश्मीरी सिद्ध करने को पर्याप्त नही ।

६. बंगाल पक्ष—कुछ बंगाली विद्वान् कालिदास को बंगाली मानते हैं क्योंकि धान के खेतों के सम्बन्ध में कालिदास ने जो कुछ लिखा है वह किसी बंगाली के ही अनुभव का विषय है। किन्तु यह पक्ष भी ठीक नही क्योंकि कवि न रघु की दिग्विजय के प्रसंग में बंगाल की पराजय का वर्णन निर्ममता से किया है।

७. हमारा मत—हमारा विचार है कि कवि गढ़वाल के किसी ऐसे प्रदेश का निवासी था जहां गंगा तथा हिमालय साथ-साथ हैं। क्योंकि :—

(क) ईस प्रदेश के प्रति कवि का सर्वाधिक अनुराग है।

(ख) मेघ की यात्रा वही समाप्त होती है और वह यक्ष का सन्देश वही पहुँचाता है।

(ग) मेघदूत में वर्णित जीवन, ऋतु, वृक्ष आदि इसी प्रदेश के अनुकूल है।

(घ) कुमार संभव मे सप्तर्षियों तथा शिव की उक्तियां भी इसी पक्ष का समर्थन करती हैं।

कालिदास के समय का भारत

तथा

कवि का जीवन और व्यक्तित्व

कालिदास ने अपने जन्म स्थान, समय तथा जीवन के विपय में कुछ नहीं लिखा, और उसके सम्बन्ध में प्रचलित लोक गाथाएँ तथा किंवदन्तियाँ विश्वसनीय नही, अत: उसके ग्रन्थों के अन्त: साक्ष्यों के आधार पर जो अनुमान लगाए जा सकते है मुख्यतया उनके सहारे ही यहाँ कवि के जीवन के सम्बन्ध में लिखने का साहस किया जाएगा।

१. कवि को ठीक तरह से समझने के लिए उसकी परिस्थितियों का ज्ञान आवश्यक है

कवि का हृदय अत्यन्त प्रभावग्राही होता है, इसलिए यह बिलकुल स्वाभाविक है कि तात्कालिक परिस्थितियो तथा घटनाओं का गहरा प्रभाव उस पर पड़े विना न रह सके, और वह उसकी कृतियो मे भी यत्र-तत्र प्रतिबिम्बित हो जाए। अत: कालिदास के विचारों को पूर्णतया हृदयंगम करने तथा उसकी कविता का रसास्वाद अधिक से अधिक कर सकने के लिए अत्यावश्यक है कि उसने जिन राजनीतिक धार्मिक सामाजिक, नैतिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक परिस्थितियों में एवं जिन प्रदेशों और अवस्थाओं में रह कर अपने ग्रन्थों की रचना की थी, पाठक पहले उन्हे भी भली भाँति समझले।

२. कवि के ग्रंथों में आए महत्त्वपूर्ण सकेतों की उपेक्षा नहीं की जा सकती

यहाँ यह आपत्ति की जा सकती है कि कवि ने अपने कथा प्रसंग का विकास करने के लिए किन्ही देशों, नगरो या राजवंश आदि का निर्देश तो करना ही था, अत: उसके पीछे किसी छिपे संकेत की खोज अनुचित है। किन्तु यह ठीक नहीं। उदाहरण के लिए दिलीप की पटरानी सुदक्षिणा, दशरथ की रानी सुमित्रा तथा मगधेश्वर के विषय में कुछ संकेत किए गये है जिनका वर्णन पहले किया जा चुका

है। क्या इस सारे संविधान या जोड-तोड़ को निरुद्देश्य अथवा आकस्मिक कहकर टाला जा सकता है ? यदि नही तो ऐसे सुगठित निर्देशो से निकाले गए परिणामों को बिना विचारे ही त्योज्य नही ठहराया जा सकता।

राजनीतिक पृष्ठभूमि

प्राचीन भारत के इतिहास का अध्ययन करने से पता चलता है कि ईसा से लगभग १८० वर्ष पूर्व मगध साम्राज्य के सेनापति पुष्यमित्र शु ग ने मौर्यवशी अन्तिम बौद्ध सम्राट वृहद्रथ को मारकर उसके सिहासन पर अधिकार कर लिया था। पुष्यमित्र की राजधानी मगध मे पाटलिपुत्र थी, किन्तु उसके राज्य का विस्तार पश्चिम में भी बहुत दूर तक था। विदर्भ का राज्य तो उसी समय जीता गया था। अत साम्राज्य के इस पश्चिमाचल की रक्षा के लिए विदिशा को उपयुक्त स्थान समझा गया और वहाँ का शासक उसने अपने पुत्र अग्निमित्र को बनाया। पश्चिमी पजाब में आबाद यवनों ने शाकल के शासक मिनान्दर के नेतृत्व में भारत पर आक्रमण किया और वे अयोध्या तथा मथुरा तक बढ़ आए। किन्तु अन्त में उन्हे पुष्यमित्र से मुँह की खानी पड़ी और कुछ समय के लिए भारत विदेशियो के आक्रमण से बच गया। शुंगों के शासनकाल मे विदिशा का महत्त्व बढता गया और वह दूर-दूर तक प्रसिद्ध हो गई। इस वश के पॉचवे राजा भागभद्र के समय तक्षशिला के यवन नृपति अन्तलिखिकद का राजदूत हेलियो दोरस विदिशा आया। वह भागवत धर्म को स्वीकार कर वैष्णव बा गया था, इसलिए उसने भगवान् वासुदेव की पूजा के लिए वहाँ एक गरुड़ ध्वज का निर्माण करवाया। ७२ ईस्वी पूर्व, शु ग वंश के दसवें राजा देवभूति को उसके मंत्री वासुदेव कण्व ने मार कर कण्व वश की स्थापना की। इस वश के ८ शासकों ने ४९ वर्ष तक राज्य किया। ये राजा शुंग भृत्य भी कहलाते थे। कुछ आश्चर्य नही कि इस वंश का सस्थापक वासुदेव भी पुष्यमित्र की ही तरह अन्त तक यही कहता रहा कि वह तो स्वामी के मर जाने पर भी, एक विश्वस्त सेवक के रूप मे, उसके राज्य की केवल रखवाली कर रहा है। ये शासक अत्यन्त निर्बल थे, अतः सिन्धु घाटी के शको ने सौराष्ट्र तथा मालवा पर अधिकार कर लिया जिन्हे ईसा पूर्व ५८ मे उज्जयिनी के महाराजा विक्रमादित्य ने परास्त किया।

(क) रघुवंश मे वर्णित इन्दुमती स्वयवर मे पंजाब तथा सिन्धु घाटी का

४. कालिदास के ग्रंथों में उस समय के कुछ राजनीतिक संकेत

कोई राजा सम्मिलित नहीं हुआ। मेघदूत का मेघ भी कुरुक्षेत्र से आगे पंजाब की तरफ नहीं बढ़ा। इससे प्रतीत होता है कि उन प्रदेशों पर कोई विदेशी अनार्य लोग शासन कर रहे थे और यदि कोई आर्य राज्य थे भी तो, बहुत छोटे, अतः नगण्य से। (ख) रघुवंश के छठे सर्ग में मगध, अङ्ग, उज्जयिनी, शूरसेन, अनूपदेश, तथा महेन्द्र देश के अनन्तर पाण्ड्यों का निर्देश है। यह भी उस समय की राजनीतिक स्थिति पर प्रकाश डालता हैं। ज्ञात होता है कि तब तक दक्षिण भारत में पाण्ड्यों का ही प्रभुत्व था और उनकी राजधानी उरगपुर थी। दिग्विजय के अवसर पर रघु का संघर्ष भी इन्हीं के साथ हुआ। तब तक चोलों ने शक्ति प्राप्त कर पाण्ड्यों को परास्त नहीं किया था। (ग) कामरूप तथा विदर्भ के राजा कालिदास के आश्रयदाता सम्राट के मित्र थे। रघुवंश के छठे सर्ग से भी इस तथ्य की पुष्टि होती है। (घ) कलिंग के चेदि राजा भी कुछ बलशाली हो गए थे, और उन्होंने रघु से लोहा लेने का साहस किया था। (ङ) रघुवंश के सोलहवें सर्ग से पता चलता है कि मध्य भारत में नाग लोग भी अपनी शक्ति बढ़ाने में लग रहे थे। उनके वंश की कन्या कुमुद्वती से कुश ने विवाह किया था। (च) हूण लोग तब तक यहाँ नहीं आए थे। रघु के साथ उनका युद्ध भारत से बाहर ही हुआ था। (छ) विक्रमोर्वशीय में केशी दानव का प्रसंग आता है जिसका निवास ईशान दिशा अर्थात् भारत के उत्तर-पूर्व में था। संभवतः ये लोग भी हूणों की तरह दाढ़ी, मूँछ और बड़े-बड़े बाल रखते थे। (ज) विक्रमोर्वशीय से ही यह भी पता लगता है कि उन दिनों निकट भविष्य मे ही किसी विदेशी शक्ति के आक्रमण की प्रबल संभावना थी। कालिदास ने रघुवंश मे कुश द्वारा अयोध्या के फिर से बसाने का वर्णन किया है। संभवतः यह भी उस समय की किसी ऐतिहासिक घटना का सूचक हो।

राजा तथा प्रजा के सम्बन्ध

राजा तथा प्रजा के परस्पर सम्बन्ध, अत्यन्त मधुर थे। राजा अपना प्रधान कर्त्तव्य प्रजानुरंजन समझता था और प्रजा को अपनी संतान के समान मानता था। प्रजा भी उसे पितृ तुल्य समझती थी। यद्यपि दण्ड व्यवस्था कठोर थी किन्तु उसकी आवश्यकता कदाचित् ही पड़ती थी। राजा स्वतन्त्र था किन्तु निरंकुश नहीं। वह न्याय मे अपने पराये का भेद न करता था। प्रजा

से लिया कर प्रजा पर ही व्यय कर दिया जाता। राजा ही प्रजा की शिक्षा दीक्षा तथा उसकी जीविका की व्यवस्था के लिए उत्तरदायी था। राज्य-कोष पर राजा का अधिकार न था, वैयक्तिक दान-पुण्य वह अपनी निजी संपत्ति में से करता था। रघु ने कौत्स को जो दान दिया था वह राज्य-कोष से नही किन्तु निजी संपत्ति में से। तपोवनो तथा ऋषि मुनियो के आश्रमो से कोई राजकर नही लिया जाता था। राजा विनीत वेप मे वहाँ जाता था और नम्रता पूर्ण व्यवहार करता था। ऋषियों के आश्रम नगर, ग्राम आदि से दूर होते थे तभी तो रघु की दिग्विजय का हाल वरतन्तु के गुरुकुल मे पढ़ते कौत्स को न मालूम हुआ क्योंकि गुरुकुल वस्तुतः ही माता के गर्भ जैसे होते थे जिन पर वाहर की उथल-पुथल का प्रभाव नही पड़ता था। विद्यार्थी एकाग्र होकर अपने अध्ययन में लगे रहते थे। राजा लोग विना किसी आडम्वर के वहाँ जाते थे और तपस्वी गुरुजनों के चरणो मे वैठ कर गौरव अनुभव करते थे। ये ऋषि-मुनि अपने आदर्श, आचार तथा उपदेश से देश के नैतिक स्तर को ऊँचा उठाते रहते थे और यही वह धर्ममय षष्ठ पाठ भाग था जो उनसे राजा को मिलता था। दशरथ को वसिष्ठ के चरणो मे वैठे देखकर कितने ही उच्च वृत्ति वाले नवयुवकों को राजसी ठाट वाले दशरथ की अपेक्षा तपस्वी वसिष्ठ वनने की प्ररणा मिलती थी जिससे राजा का शस्त्र और वैश्य का धन इतनी शक्ति नही पा सकता था कि वह प्रजा का उत्पीडन कर सके। वह ब्रह्म शक्ति से नियन्त्रित था।

५. धार्मिक तथा सामाजिक पृष्ठ भूमि

(क) **बौद्ध धर्म का उदय**—भारत मे वहुत प्राचीन काल से वह कर्मकाण्ड-प्रधान वैदिक धर्म प्रचलित था जिसमें दैनिक अग्निहोत्र तथा दर्श पौर्ण मास आदि विविध यज्ञो का विशेष महत्त्व था। ये यज्ञ अत्यन्त जटिल तथा आडम्वर-पूर्ण वन गये थे जिनके सम्पादन के लिए कुशल पुरोहितों की आवश्यकता पडती थी। ये पुरोहित प्राय. ब्राह्मण वर्ण के ही होते थे अतः समाज में इस वर्ण को विशेष गौरव प्राप्त था। यद्यपि वर्ण व्यवस्था को मान्यता प्राप्त थी तो भी उसके सम्वन्ध में और खान-पान तथा विवाह आदि के लिए कठोर नियम न थे। प्राचीन आर्य प्रकृतिकी शक्ति रूप विभिन्न देवताओं के पीछे उनके नियामक अदृश्य परमात्मा, आत्मा, पुनर्जन्म तथा कर्मफल मे विश्वास रखते थे। धीरे-धीरे यज्ञो मे पशु हिंसा का समावेश हुआ और जव वह वहुत वढ़ गई तो समाज में उसके विरुद्ध एक प्रतिक्रिया उठ खडी हुई।

उस प्रतिक्रिया का एक रूप वह ज्ञान-मार्ग था जिसकी झांकी उपनिषदों तथा आस्तिक दर्शनों के चिन्तन मे मिलती है, तथा दूसरा रूप अहिंसावादी जैन और वौद्ध धर्मो का उदय था। इन धर्मो के आचार्य वड़े प्रतिष्ठित कुलों के क्षत्रिय राजकुमार थे, उनका व्यक्तित्व आकर्षक तथा प्रभावशाली था और उन्होंने अपने प्रचार का माध्यम भी लोक भाषा को वनाया, अतः उनकी शिक्षाएँ शीघ्र ही सारे देश में फैल गईं। अशोक द्वारा दीक्षा-ग्रहण कर लेने पर तो वौद्ध धर्म राजधर्म ही वन गया और उसके प्रयत्नों से इस धर्म का प्रचार भारत से वाहर भी हो गया। स्थान-स्थान पर वौद्ध विहार वन गए जिनमें तरुण भिक्षुक भिक्षुकियाँ आनन्द का जीवन व्यतीत करने लगी। इसका परिणाम यह हुआ कि वौद्ध संघ में अवांछनीय व्यक्तियों की संख्या वढ़ गई और उसमें नैतिक पतन ने घर कर लिया। अन्त में सन् १८० ई० पूर्व जव पुष्यमित्र ने अन्तिम वौद्ध सम्राट् वृहद्रथ को मारकर उसके सिंहासन पर अधिकार कर लिया तो जर्जर वौद्ध धर्म विलकुल ही लड़खड़ा गया और वहुत समय से दवे पड़े वैदिक धर्म ने फिर सिर उठा लिया। भगवान् वुद्ध अनीश्वरवादी तथा क्रान्तिकारी विचारों के थे। उनकी शिक्षाओं ने तात्कालिक समाज के मूल आधार पर ही कुठाराघात कर दिया जिससे सव सामाजिक वंधन टूट गये। समाज इस अवस्था को अधिक न सह सका और उसके विरोध का परिणाम यह हुआ कि भारत मे वौद्ध धर्म विलकुल ही लुप्त हो गया।

(ख) जैन धर्म

जैन धर्म अनात्मवादी न था। वह हिंसा प्रधान यज्ञयागादि का विरोधी होता हुआ भी सुधारवादी था, क्रान्तिकारी नही। उसने आचार की शुद्धता, कठोर तप, और सत्य, अहिंसा, अस्तेय तथा अपरिग्रह पर विशेष वल दिया। समाज में फैली हुई वुराइयों को इस प्रकार सुधारने का यत्न किया कि उसका यह कार्य किसी को खटका नही। जैन-धर्म मे दीक्षित होने वालों को खान-पान रहन-सहन आदि के सम्वन्ध में कठोर नियमों का पालन करना पड़ता था अतः अवसरवादी अवांछनीय व्यक्तियों के लिए उसमें कोई आकर्षण न था। इसलिए यद्यपि जैन-धर्म का प्रचार उतना अधिक न हुआ जितना वौद्ध-धर्म का, किन्तु वह आज भी जीवित है तथा भारतीय समाज पर उसका प्रभाव चिर-स्थायी है और जैनधर्मावलम्वी आज हिन्दू समाज के अभिन्न अंग है। वर्त्तमान हिन्दू समाज में जो व्रत, उपवास, तथा अहिंसावाद पाये जाते हैं उसका वहुत कुछ

श्रेय जैन धर्म को ही है। शैव होते हुए भी कालिदास जैन धर्म की शिक्षाओं से बहुत प्रभावित था जैसा कि हम आगे देखेंगे।

नये ब्राह्मण धर्म का जन्म

बौद्धयुग की समाप्ति पर जब वैदिक धर्म का पुनरुत्थान हुआ तो समाज के नवनिर्माण के लिए नए आधारों की आवश्यकता प्रतीत हुई, क्योकि पुराने अनेक आधार अपना महत्व खो चुके थे। अतः उस समय के आचार्यो ने एसी धार्मिक, सामाजिक, नैतिक तथा राजनीतिक व्यवस्थाओं की रचना की जो समाज को सुदृढ़ ढांचे मे ढाल सके और उसे सुरक्षित भी रख सके। उन नवीन व्यवस्थाओं को प्रामाणिकता तथा मान्यता प्रदान करने के लिए कहा गया कि वे मुख्यतया श्रुति अर्थात् वेद पर आधारित है किन्तु उन्हे क्रियात्मक रूप देने के लिए ही, समय के अनुसार कतिपय ऐसी उपव्यवथाऐ बनानी पड़ी है जो वेदानुकूल है तथा जिनका आधार बड़े-बूढ़े लोगो की स्मृति मे सुरक्षित प्राचीन परम्पराएँ और सदाचार है। जिन ग्रंथो मे इन व्यवस्थाओं का संग्रह किया गया वे स्मृति[1] ग्रंथ कहलाए क्योंकि उनका आधार पुरानी याद अर्थात् स्मृति थी। मनुस्मृति नामक प्रसिद्ध ग्रंथ भी तभी बना जिसमें चार वर्ण तथा चार आश्रमों के कर्त्तव्य, विवाह सम्बन्ध, खान पान, सोलह सस्कार, व्यवहार, अपराधो का निर्णय और उनके लिए राज दण्ड आदि के विस्तृत नियम दिये गये है। बौद्ध युग में वैदिक धर्म तथा उसकी वर्णव्यवस्था को एक बार जो धक्का लग चुका था उसकी पुनरावृत्ति को रोकने के लिए यह भी आवश्यक प्रतीत हुआ कि प्रजा द्वारा इन नियमों का पालन राजा कठोरता से करवाए। अत. राजा

---

१. वेदोऽखिलो धर्म मूलं स्मृति शीले च तद्विदाम्।
आचारश्चैव साधूनामात्मन स्तुष्टिरेवच॥
श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्म शास्त्रं तु वै स्मृति.।
ते सर्वार्थेष्वमीमांस्ये ताभ्यां धर्मो हि निर्वभौ॥
श्रुतिं पश्यन्ति मुनयः स्मरन्ति च यथा विधि।
तस्मात्प्रमाणं मुनयः प्रमाणं प्रथितं भुवि॥
मनु० अध्याय १ के ६, १०, १७

को वर्णाश्रम धर्म का रक्षक तथा ईश्वर का प्रतिनिधि[1] कहा गया । रघुवंश[2] में शंबूक नामक उस शूद्र के वध का वर्णन किया गया है जो तपस्या कर रहा था, क्योंकि इन नई व्यवस्थाओं के अनुसार शूद्र को तप करने का अधिकार न था जबकि बौद्धयुग में जाति भेद के विचार के बिना, कोई भी व्यक्ति भिक्षु बन सकता था या अपने लिए इच्छानुसार कोई व्यवसाय चुन सकता था। पुष्यमित्र ने अपने समय के प्रकाण्ड पण्डित महर्षि पतंजलि को पुरोहित बना उनके तत्त्वावधान में अश्वमेध यज्ञ कर मानो बौद्ध युग की समाप्ति की घोषणा कर दी। साथ ही यवनों पर उसकी विजयों और उत्तर भारत के बहुत बड़े भाग पर साम्राज्य स्थापना ने भारतीय हृदय को जातीय गौरव की भावना से भर दिया।

७. धर्म के इस नए रूप की सर्व प्रियता तथा उसका प्रभाव

वैदिकधर्म के इस नये स्मार्त्त या पौराणिक रूप ने समाज मे नव जीवन का संचार कर दिया। बौद्ध युग से पहले भी हिमालय के प्रदेशों में शैव धर्म अंकुरित हो चुका था जिसकी सूचना केन उपनिषद की हैमवती उमा[3] दे रही है और वेद का 'तीन कदम रखने वाला विष्णु' वामनादि रूप धारण करने वाला पौराणिक कृष्ण बन कर भागवत धर्म की नींव डाल

---

१. अराजके हि लोकेस्मिन् सर्वतो विद्रुते भयात् ।
रक्षार्थ मस्य सर्वस्य राजानमसृजत्प्रभुः ॥
इन्द्रानिल यमार्काणा मग्नेश्च वरुणस्य च ।
चन्द्र वित्तेशयोश्चैव मात्रा निर्हृत्य शाश्वती: ॥
यस्मा देषां सुरेन्द्राणा मात्राभ्यो निर्मितो नृप: ।
तस्मादभिभवत्येष सर्वभूतानि तेजसा ॥
बालोपि नाव मन्त व्यो मनुष्य इतिभूमिपः ।
महती देवता ह्येषा नररूपेण तिष्ठति ॥
मनु० अध्याय ७ के ३, ४, ५, ८ ।

तंराजवीथ्यामधिहस्ति यान्त माधोरणालम्बितमग्र्यवेशम् ।
षड्वर्ष देशीयमपि प्रभुत्वात्प्रैक्षन्त पौराः पितृ गौरवेण ॥
कामं न सोऽकल्पत पैतृकस्य सिंहासनस्य प्रतिपूरणाय ।
तेजो महिम्ना पुनरावृतात्मा तद्व्याप चामी कर पिंजरेण ॥
रघुवंश सर्ग १८ के पद्य ३९, ४०

२. रघुवंश सर्ग १५, पद्य ४२—५३ ।

३. केन उपनिषद ३–१२

चुका था। इन्हीं दिनों अनेक स्थानीय तथा बाहर से आने वाली अनार्य जातियाँ—यवन (ग्रीक), शक, गुर्जर आभीर आदि भी हिन्दू धर्म के इस नये रूप की ओर आकृष्ट हुई और भारतीय समाज ने उन्हें आत्मसात् कर लिया। जैन तथा बौद्ध धर्मों की पूजा विधि मे अग्नि होत्र का स्थान साकार व्यक्ति पूजा ने ले लिया था, संभवत: इससे ही नये वैदिक धर्म में भी शिव तथा विष्णु और ब्रह्मा—इन साकार देवताओं का महत्त्व बढ़ गया और उनकी पूजा होने लगी। धार्मिक दृष्टि से वह युग समन्वय वादी था कट्टर नही। राजा लोग एक धर्म के अनुयायी होते हुए भी दूसरे धर्म वालों का आदर करते थे। कालिदास यद्यपि शैव था किन्तु विष्णु मे भी उसकी आस्था कम न थी। ब्रह्मा, विष्णु महेश—तीनों को उसने एक ही परम शक्ति के तीन प्रकाशन माना[2] है। भगवान् की पूजा के विविध प्रकारों और उनके प्रतिपादक शास्त्रों[3] को भी वह आदर की दृष्टि से देखता है। ऐसा ज्ञात होता है कि कालिदास के समय तक शिव के लिंग की पूजा का प्रचलन अधिक न हुआ था। रघुवंश मे कवि ने रामेश्वर में राम द्वारा लिंग की स्थापना का वर्णन नहीं किया। मेघदूत में पूर्वमेघ के चतुर्थ पद्य मे तथा उत्तरमेघ के १४वे पद्य मे साक्षात् शिव या उसके चरण चिह्न की ही पूजा का वर्णन मिलता है। उस समय का समाज भी काफी उदार था। विवाह अपने वर्ण से बाहर भी किया जा सकता था। कुश ने नाग कन्या से विवाह किया था। मनु ने भी असवर्ण विवाहों को वैध[4] स्वीकार किया है और बाहर से आकर यहाँ

---

१. (क) तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः। दिवीव चक्षु राततम्।
(ख) इदं विष्णु विचक्रमे त्रेधानिदधे पदम्। समूढ मस्य पांसुरे।
यजु० ५-१५, २०

२. एकैव मूर्त्ति र्बिभिदे त्रिधा सा सामान्य मेषां प्रथमाऽवरत्वम्।
विष्णो र्हरस्तस्य हरिः कदाचि द्वेधास्तयोस्तावपि धातु राद्यौ॥ कुमार सर्ग ७

३. बहुधाऽप्यागमैर्भिन्नाः पन्थानः सिद्धिहेतवः।
त्वय्येव निपतन्त्योघा जान्हवीया इवार्णवे॥ रघु ०.१० का २६

४. सवर्णाग्रेद्विजातीनां प्रशस्या दारकर्मणि।
कामतस्तु प्रवृत्ताना मिमा. स्युः क्रमशोऽवराः॥
शूद्रैव भार्या शूद्रस्य सा च स्वाच विशः स्मृता।
ते च स्वाचैव राज्ञश्च ताश्चस्वाश्चा ग्रजन्मन.॥ मनु अध्याय ३ पद्य १२, १३

वस गई सैनिक प्रवृत्ति वली यवन, शक, पल्हव, हूण आदि जातियों को क्षत्रियों[1] के अन्तर्गत। इस उदारता के परिणामस्वरूप कितना विदेशी तत्त्व उन दिनों हिन्दू समाज मे मिल गया और उन लोगों के कितने व्यवहारों मान्यताओं और कला आदि ने भारतीय संस्कृति के निर्माण तथा विकास मे योग दिया इसका ठीक ठीक अनुमान कर सकना अत्यन्त कठिन है।

८. कालिदास और अहिंसा

रघुवंश महाकाव्य में रघु का विशेप महत्त्व है। उसी के नाम से आगे चलने वाले सारे वंश का नाम रघुवंश[2] पड़ा और उसमें उत्पन्न व्यक्ति राघव कहलाए। दिलीप तथा उसकी पत्नी ने वड़ी सावना तथा व्रत करके रघु-सा पुत्र प्राप्त किया था। दिलीप ने जव अश्वमेघ-यज्ञ का घोड़ा छोड़ा तो उसका रक्षक इस रघु को ही नियुक्त किया। घोड़े को इन्द्र ने हर लिया तो रघु ने उस से भी लोहा लिया और उसके दॉत खट्टे कर दिये। इन्द्र गुणज्ञ था, वह रघु के पराक्रम से प्रसन्न[3] हुआ, और उसने घोड़े[4] के अतिरिक्त कुछ भी मांगने के लिए रघु को कहा। इस पर रघु ने प्रार्थना की कि 'यदि आप

---

१. शनकैस्तु क्रिया लोपा दिमा. क्षत्रिय जातयः।
वृपलत्वं गता लोके ब्राह्मणा दर्शनेन च ॥ मनु
मनु का अभिप्राय यह प्रतीत होता है कि कभी भारत का विस्तार उत्तर-पश्चिम में वहुत दूर तक था तव ये जातियाँ क्षत्रिय थी। किन्तु धीरे २ उन प्रदेशों से भारत का सम्बन्ध टूट गया और ये लोग पतित हो गये।

२. तत समानीय स मानितार्थी हस्तौ स्वहस्तार्जितवीरशब्दः।
वंशस्य कर्त्तार मनन्त कीर्त्तिं सुदक्षिणाया तनय ययाचे ॥
रघु० सर्ग २ पद्य ६७

३. तथापि शस्त्र व्यवहार निष्ठुरे विपक्ष भावे चिरमस्य तस्थुपः।
तुतोप वीर्यातिशयेन वृत्रहा पदं हि सर्वत्र गुणैं निधीयते ॥
रघु० सर्ग ३ पद्य ६२

४. असंग मद्रिष्वपि सारवत्तया न मे त्वदन्येन विसोढ मायुधम्।
अवेहि मां प्रीत मृतेतुरंगमात्किमिच्छ सीति स्फुट माह वासवः ॥
रघु० सर्ग ३—पद्य ६३

घोड़ा नहीं देना चाहते तो मेरे पिता को उसके बिना ही अश्वमेध यज्ञ का समग्र[1] फल प्राप्त हो जाए' यह वर दीजिए। यहाँ यह प्रश्न विचारणीय है कि रघु तथा इन्द्र के संघर्ष की यह घटना रामायण में नही मिलती, कवि की अपनी ही सूझ है। इससे नायक के असाधारण बल पराक्रम का पता चलता है किन्तु साथ ही इन्द्र से उसकी हार की भी तो घोषणा होती है। महाकाव्य के प्रारंभ मे ही अपने श्रेष्ठ नायक की हार कवि ने क्यो दिखलाई? वह बड़ी सुगमता से इसे कोई अन्य सुन्दर रूप दे सकता था। क्या यह संभव नही कि शैव होते हुए भी वह यज्ञों मे होने वाली निरीह पशुओ की निर्मम हत्या को पसन्द न करता था। अतः नायक की प्रतिष्ठा की उपेक्षा करके भी उसने अपनी भावना को प्रकाशित किया। कवि ने रघुवंश के दूसरे सर्ग मे भी सिंह वाले प्रसंग की रचना कर एक गाय के लिए दिलीप[2] को अपने प्राणों की बलि देने के लिए उद्यत दिखलाया। इस सर्ग के पढ़ने से यह भी पता चलता है कि उस समय गाय की महिमा बहुत बढ़ गई थी। फिर रघुवंश के पाँचवे सर्ग मे हम पढ़ते है कि स्वयंवर मे भाग लेने के लिए रघु का पुत्र अज विदर्भ को जा रहा था, रास्ते मे उसके पड़ाव पर एक जंगली हाथी[3] टूट पड़ा। 'हाथी मर न जाए' इस बात का विचार कर, केवल डराने के उद्देश्य से अज ने एक साधारण[4] सा तीर उस पर छोड़ा जिसके लगते ही वह हाथी गन्धर्व रूप धारण कर अज के सम्मुख उपस्थित हो गया और बोला कि मै प्रियंवद् नामक गन्धर्व हूँ जो मतग नामक ऋषि के शाप से हाथी बन गया था। तुमने क्षत्रिय

---

१. अमोच्य मश्वं यदि मन्यसे प्रभो ततः समाप्ते विधि नैव कर्मणि।
अजस्रदीक्षा प्रयप्तः स मद्गुरुः क्रतोरशेषेण फलेन युज्यताम्॥
रघु सर्ग ३ पद्य—६५

२. तथेतिगामुक्तवते दिलीप. सद्यः प्रतिष्टम्भ विमुक्त बाहुः।
स न्यस्त शस्त्रो हरये स्वदेह मुपानयत्पिण्डमिवामिषस्य॥
रघु सर्ग २ पद्य ५९१

३. सच्छिन्नवन्ध द्रुत युग्य शून्यं भग्नाक्ष पर्यस्तरथं क्षणेन।
रामा परित्राण विहस्तयोधं सेना निवेशं तुमुलं चकार॥
रघु० सर्ग ५ पद्य ४९

४. तमापतन्तं नृपते रवध्यो वन्यः करीति श्रुतवान् कुमारः।
निवर्त्तयिष्यन् विशिखेन कुम्भे जघान नात्यायतकृष्टशार्ङ्गः॥
रघु सर्ग ५ पद्य ५०

के कर्त्तव्य का पालन करते हुए भी दया को न छोड़ा और मेरे प्राण नही लिए । इसलिए मै आज से तुम्हारा मित्र हूं, और इस मित्रता को स्मरणीय बनाने के लिए तुम्हे यह संमोहन नामक अस्त्र देता हूँ जो बिना[१] हिंसा किए शत्रुओं को पराजित करने वाला है। और सातवे सर्ग में हम देखते है कि अज ने अपने शत्रुओं पर उस अस्त्र का प्रयोग कर उन्हे हरा दिया किंतु मारा[२] नही।

मनु[३] ने शिकार को व्यसन कह कर उसका निषेध किया है । कालिदास ने भी उसकी पुनरावृत्ति करते हुए दशरथ[४] के उस शिकार खेलने की निन्दा की है जिसमें उसके हाथों श्रवण कुमार का वध हो गया था । अभिज्ञान शाकुन्तल में भी माधव्य[५] के मुख से कवि ने शिकार खेलने को बुरा ठहराया है। शाकुन्तल के छठे अंक मे कोतवाल ने मछुवे के व्यवसाय को बुरा कह कर उसका मजाक किया है और फिर उसके मुंह से यज्ञ मे पशु मारने वाले श्रोत्रिय ब्राह्मण[६] व्यंग्य से कटाक्ष किया है। इससे तो इंकार नही किया जा सकता कि उस समय शिकार खेला जाता था, यज्ञों मे पशु हिंसा की जाती थी और ब्राह्मण भी मांस खाते थे किंतु यह सब कालिदास को रुचिकर न था। बौद्ध युग में बलात् ठूंसी गई अहिंसा के प्रति विद्रोह भावना होने पर भी भारतीय नागरिक के के हृदय पर अहिंसा की गहरी छाप अवश्य लग गई थी। आज भी ऐसे शुद्धाचारी ब्राह्मणों की कमी नही जिनका हाथ एक चूहे पर भी नही उठ

---

१. संमोहनं नाम सखे ममास्त्रं प्रयोग संहार विभक्त मन्त्रम् ।
गान्धर्व मादत्स्व यतः प्रयोक्तु र्न चारि हिंसा विजयश्च हस्ते ।।
रघु० सर्ग ५ पद्य ५७

२. यशोहृतं संप्रति राघवेण न जीवितं वः कृपयेति वर्णाः ।
रघु० सर्ग ७ पद्य ६५

३. पान मक्षाः स्त्रियश्चैव मृगया च यथा क्रमम् ।
एतत्कष्टतमं विद्याच्चतुष्कं कामजे गणे ।।
मनु अध्याय ७ पद्य ५०

४. नृपतेः प्रतिषिद्ध मेव तत्कृतवान् पंक्ति रथो विलंघ्य यत् ।
अपथे पदमर्प यन्ति हि श्रुतवन्तोपि रजोनिमीलिताः ।। रघु० सर्ग ९ पद्य ४७

५. राजा—मन्दोत्साहः कृतो स्मि मृगया पवादिना माधव्येन । शाकुन्तल अंक २

६. सहजं खलु यद्विनिन्दितं न खलु तत्कर्म विवर्जनीयम् ।
पशुमारण कर्म दारुणः—अनुकम्पा मृदुरेवश्रोत्रियः ।।
अभि अंक १ पद्य १

सकता किंतु वे युक्ति प्रमाणों से यह सिद्ध करते हैं कि यज्ञ मे पशु हिंसा पाप नही, पुण्य है। कुछ आश्चर्य नही कि हमारी इस अहिंसा की भावना के अन्तस्तल में जैन धर्म का प्रभाव अन्तर्हित हो। कवि ने अनेक स्थानों पर अर्हन्[1] शब्द का प्रयोग बडे आदर[2] के साथ किया है जो इस प्रसंग मे विचारणीय है । पाद टिप्पणी में उद्धृत घ. पद्य का तीर्थ शब्द भी ध्यान देने योग्य है। गगा आदि नदियों तथा प्रयाग आदि तीर्थों मे स्नान स्वर्ग प्राप्ति का साधन समझा जाता था। जनता शकुनो मे भी विश्वास रखती थी।

प्राचीन भारतीय आर्यो के जीवन में, शरीर को सुखा देने वाली कठोर तपस्या का कोई स्थान न था। वैदिक यज्ञ प्रायः पाक यज्ञ हुआ करते थे और यज्ञ शेष के रूप मे स्वादिष्ठ भोजन के साथ वे समाप्त होते थे । उपनिषदों[3] मे 'उसने अन्न को ब्रह्म जाना।' अन्न की निन्दा न करे,' 'अन्न का निषेध न करो' 'अन्न बहुत उत्पन्न करो' इत्यादि उपदेश दिया है लम्बे उपवासों का कही विधान नही किया। भगवान् बुद्ध कठोर तपस्या मे आस्था न रखते थे और मध्यममार्ग की शिक्षा देते थे। मनु[4] ने केवल वानप्रस्थ तथा घोर पाप का प्रायश्चित्त करने वाले के लिए ही पंचाग्नितापन आदि तपों तथा उपवासों या

---

१. (क) तवार्हितो ना भिगमेन तृप्तं मनो नियोगक्रिययो त्सुकमे।
रघु० सर्ग ५ पद्य ११

(ख) सत्व प्रशस्ते महिते मदीये वसँश्चतुर्थोग्निरिवाग्न्यगारे।
द्वित्राण्य हान्यर्हसि सोढुमर्हन् यावद्यते साधयितुं त्वदर्थम् ॥
रघु० सर्ग ५ : पद्य २५

(ग) अर्हणा मर्हते चक्रमुं नयो नय चुक्षुषे॥ रघु० सर्ग १—पद्य ५५

(घ) अद्य प्रभृति भूताना मभिगम्यो स्मि शुद्धये।
यदध्यासितमर्हद्भि स्तद्धि तीर्थ प्रचक्षते॥
कुमा० सर्ग ६ पद्य ५६। इत्यादि

२. सर्वज्ञोजितरागादिदोषस्त्रैलोक्यपूजितः।
यथास्थितार्थवादी च देवोऽर्हन् परमेश्वरः॥

३. अन्न ब्रह्मेतिव्यजानात्। अन्नं न निन्द्यात्। अन्नं न प्रत्याचक्षीत। अन्नं बहु कुर्वीत। तैत्तिरीय उपनिषद भृगुवल्ली प्रथम अनुवाक।

४. (क) मनुस्मृति पंचम अध्याय, श्लोक १७-२४ तक।
(ख) मनुस्मृति अध्याय ६, पद्य १५६

कठोर व्रतों की व्यवस्था की है। अतः कुमार संभव के पाँचवे सर्ग में पार्वती की कठोर तपस्या का जो सुन्दर चित्रण कवि ने किया है और रघुवंश के आठवे सर्ग के अन्त मे अज द्वारा[1] आमरण उपवास करते हुए, उसके शरीर त्याग का वर्णन किया है वह उस समय के समाज पर जैन धर्म के प्रभाव को सूचित करता है।

अभिज्ञान शाकुन्तल के छठे अंक में सानुमती अप्सरा ने कहा है कि 'मानव उत्सवों के बड़े प्रेमी होते है।' प्राचीन भारत में ऋतु

९. उत्सव तथा मनोरंजन

ऋतु के अपने उत्सव थे उनमे भी वसन्तोत्सव का विशेष महत्त्व था। इन उत्सवो को बड़ी धूम धाम से मनाया जाता था। इनके साथ मिष्टान्नादि उत्तम भोजनों की व्यवस्था होती थी। स्त्रियाँ पति की दीर्घायु, पुत्र की दीर्घायु, पति का प्रेम प्राप्त करना आदि अनेक प्रयोजनों से व्रत रखती थी और उनकी समाप्ति बढ़िया भोजन के साथ होती थी। ऐसे अवसरों पर ब्राह्मण देवता की पाँचों घी में रहती थी। चित्रकला, नाचना, गाना बजाना आदि मनोरजन के साधन थे। शिकार भी खेला जाता था। मदिरा पान का भी काफी रिवाज था। स्त्रियाँ भी इससे बची न थीं। मालविकाग्निमित्र नाटक मे रानी इरावती तथा कुमार संभव मे पार्वती के मदिरा पान का वर्णन कवि ने किया है। तोता, मैना, मोर आदि पक्षी तथा हरिण आदि पशु भी मनोरंजन के लिए पाले जाते थे। मन्दिरों तथा उत्सवों मे वेश्या नृत्य भी बहुत प्रचलित था।

१०. समाज में स्त्रियों की स्थिति

(क) **स्त्रियों की स्वतन्त्रता**--कालिदास के समय गृहस्थाश्रम चारों आश्रमों में श्रेष्ठ[2] समझा जाता था। गृहस्थाश्रम का आधार सत्पत्नी थी क्योकि गृहस्थ उसी की सहायता से अपने धार्मिक अनुष्ठान चला सकता था। शिवजी द्वारा बुलाए जाने पर जब सप्तर्षि उनके स्थान पर पहुंचे तो वसिष्ठ जी के वामपार्श्व में देवी अरुन्धती[3] के दर्शन कर उन्हें गृहस्थाश्रम की महिमा का

---

१. रघुवश सर्ग ८, पद्य

२. (क) कालोऽह्ययं संक्रमितुं द्वितीयं सर्वोपकारक्षम माश्रमं ते।
रघु० सर्ग ५ का पद्य

(ख) यस्मात्त्रयोऽप्याश्रमिणो ज्ञानेनान्नेन चान्वहम्।
गृहस्थेनैव धार्यन्ते तस्माज्ज्येष्ठाश्रमो गृही॥ मनु० अध्याय ३ पद्य ७८

३. तद्दर्शनादभूच्छंभोर्भूयान्दारार्थ मादरः।
क्रियाणां खलु धर्म्याणां सत्पत्न्यो मूल कारणम्। कुमार सर्ग ६ पद्य १३

अनुभव हुआ और उन्होंने विवाह का निश्चय कर लिया। उनके इस निश्चय से प्राजापत्य[1] महर्षियों का सिर भी ऊंचा हो गया जो विवाह कर लेने के कारण ही अपने आपको दूसरो से कुछ हीन समझने लगे थे। समाज मे स्त्रियो को सम्मानास्पद पद प्राप्त था यद्यपि वैदिक युग की अपेक्षा वह कुछ हीन हो गया था। वे शिक्षित होती थी और उनकी शिक्षा मे इतिहास पुराण चित्रकला तथा नृत्य संगीत आदि पर विशेष बल दिया जाता था। वे पति के साथ तो यज्ञादि धार्मिक कृत्यो में भाग लेती ही थी, किन्तु पार्वती[2] को कुमारी दशा मे भी हम अग्नि होत्र और स्वाधाय करती देखते हैं। अपने लिए पति के चुनाव में उन्हे पर्याप्त स्वतन्त्रता थी। इन्दुमती ने जिस किसी राजा के पल्ले बाँध दिए जाने की अपेक्षा स्वयंवर[3] को पसन्द किया था और पार्वती जी ने स्पष्ट ही कह दिया था कि वे शिव जी से ही विवाह करेगी। उनके माता पिता ने उन्हे यहां तक छूट दे दी थी कि वे शिव जी[4] के निकट ही कुटिया बनाकर रहे और सेवा कर उन्हें प्रसन्न करले। स्त्रिया राजदरबारों मे आती थी और राजा के साथ रानियां भी राजसिहासन पर बैठती थी। रघुवंश के चौदहवे सर्ग में कवि ने वर्णन किया है कि राज्याभिषेक हो चुकने पर जब रामचन्द्र जी अपने मित्रो—सुग्रीव विभीषण आदि को विदा करने लगे तो सीता जी[5] ने अपने हाथों से उन्हे बढ़िया

---

१. तस्मिन् संयमिना माद्ये जाते परिणयोन्मुखे।
जहुः परिग्रहव्रीडां प्राजापत्यास्तपस्विनः॥ कुमार सर्ग ६ पद्य ३४

२. कृताभिषेकां हुतजातवेदसं त्वगुत्तरासंगवतीमधीतिनीम्।
दिदृक्षव स्तामृषयोऽभ्युपागमन् न धर्मवृद्धेषु वय. समीक्ष्यते॥
कुमार सर्ग ५ पद्य १६

३. स्थाने वृता भूपतिभिः परोक्षैः स्वयंवरं साधुम मंस्त भोज्या।
पद्मेव नारायण मन्यथा सौ लभेत कान्तं कथमात्मतुल्यम्।
रघु० सर्ग० ७ पद्य १३

४. अनर्धमर्घ्येणतमद्रिनाथः स्वर्गौकसामर्चितमर्चयित्वा।
आराधना यास्य सखी समेतां समादिदेश प्रयतांतनूजाम्॥
कुमार सर्ग १ पद्य ५८

५. प्रति प्रयातेषुतपो धनेषु सुखादविज्ञातगतार्धमासान्।
सीतास्वहस्तोपहृताग्र्यपूजान् रक्ष. कपीन्द्रान् विससर्जराम.।
रघु सर्ग १४ पद्य १९

उपहार भेंट किए थे। और राजा अग्निवर्ण की मृत्यु हो जाने पर उसकी रानी[1] का विधिवत् राज्याभिषेक किया गया था।

(ख) वहु विवाह तथा सती प्रथा

राजाओं तथा धनी परिवारों में वहुविवाह भी प्रचलित था। कोई कोई स्त्री अपने पति के साथ सती भी हो जाती थी। कुश की पत्नी कुमुद्वती सती हुई थी। वह नागवंश की कन्या थी। सभव है कि नाग जाति मे सती प्रथा का प्रचार अधिक रहा हो क्योंकि कामदेव की पत्नी रति सती नही हुई। सीता तथा अग्निवर्ण की रानी के विषय मे तो कहा जा सकता है कि वे गर्भवती थी किन्तु रति के विषय मे नही। कन्या को परायाधन समझा जाता था और उसके लिए योग्यवर की चिन्ता माता पिता को सताती थी यह वात कण्व के उद्‌गार से प्रकट होती है। युवक युवतियां प्रेम विवाह भी कर लेते थे और उनके माता पिता उसे स्वीकार करते थे किन्तु कालिदास गुप्त गान्धर्व विवाह के विरुद्ध प्रतीत होता है और उसने अपना यह मत शाकुन्तल मे प्रकट किया है।

११. पुत्र

उस समय के समाज में पुत्र का अत्यधिक महत्त्व था क्योकि वही श्राद्ध तर्पण आदि द्वारा पितरो का उद्धार कर सकता था। निःसन्तान मर जाना वहुत वुरा समझा जाता था क्योकि पुत्र ही पितृ ऋण से मुक्ति का साधन था। रघुवंश के प्रथम तीन तथा दसवे सर्ग मे पुत्र की महिमा का वर्णन कवि ने मार्मिक शव्दों में किया है। कुमार संभव का तो विषय ही पुत्र जन्म है, और शकुन्तला नाटक का उपसंहार भी पुत्र प्राप्ति के साथ दिखाया गया है। योग्य पुत्र पर परिवार का उत्तरदायित्व डाल वानप्रस्थ होने का वर्णन करना कालिदास का प्रिय विषय है।

१२. (क) नैतिक परिस्थिति

वक्रम सम्वन्धी लोक गाथाओं मे एक तत्त्व ऐसा है जो प्रायः सव कथाओं में समान है। घूम फिर कर यह वात प्रायः आ जाती है कि विक्रमादित्य अत्यन्त कुशाग्रवुद्धि तथा न्यायपरायण राजा थे। कैसा भी चक्करदार मामला क्यों न हो, वे उसकी तह में पहुंच जाते और

---

१. तंभावार्थं प्रसव समयाकांक्षिणीनां प्रजाना
मन्तर्गूढक्षितिरिव नभोवीजमुष्टिदधाना।
मौलैः सार्धं स्थविर सचिवैर्हेमसिंहासनस्था
राज्ञी राज्यं विधि वदशिषद् भर्तुरव्याहताज्ञा॥
रघु० सर्ग १९ पद्य ५७

उनका न्याय दूध को दूध तथा पानी को पानी कर देता था। यह भी प्रसिद्ध है कि उनका जीवन बहुत सादा तथा तपस्यामय था। वे रात्रि के समय वेश बदल कर निकल जाते तथा छिपे अपराधियो की टोह लगा, उन्हे दण्ड देते थे। दीन दुखियों या पीड़ितो की सहायता के लिए, आवश्यकता आ पड़ने पर, वे अपनी जानपर भी खेलने को तय्यार रहते थे। प्रजा को वे अपनी सतान के समान प्यार करते और उसका पालन करते थे। उनकी दण्ड-व्यवस्था यद्यपि कठोर थी किन्तु उसके प्रयोग का अवसर कदाचित् ही आता था, क्योंकि सुशासन के कारण प्रजा सुखी और समृद्ध थी। वह उन अभावो से मुक्त थी जिनसे विवश होकर लोग अपराध करते है। राजकर्मचारी इतने सतर्क रहते थे कि अपराधी प्रवृत्ति वाले लोगों के मन मे अपराध का विचार उठते ही उनकी अन्तश्चक्षु के सामने राजा का दण्डधारी रूप प्रकट हो जाता था। कालिदास की रचनाओं में, उस समय के समाज की नैतिक दशा का जो चित्र उपलब्ध होता है वह बहुत कुछ इनसे मिलता जुलता है।

(ख) कालिदास के ग्रन्थों में नैतिक स्थिति का दिग्दर्शन

राजा दिलीप के विषय मे कवि ने लिखा है कि उसमे भयानक जल जन्तुओं और सुन्दर रत्नों से भरे समुद्र[१] की तरह, राजोचित कठोर तथा कोमल गुणों का सुन्दर समन्वय था जिसके कारण लोग उससे डरते भी थे और उसकी सेवा भी करते थे। उसके घर मे पुत्र ने जन्म लिया, तब जेलखानो मे कोई कैदी[२] न था जिसे वह छोड़ देता। प्रजा के रक्षक इस दिलीप की बराबरी कोई अन्य राजा नही कर सकता था क्योकि इसके राज्य मे चोरी[३] का नाम तो भले ही सुनाई पड़ जाए पर पराये धन को कोई छू नही सकता था। सत्पुरुष चाहे विरोधी हो तो भी कड़वी औषधी की तरह वह उसका सत्कार करता था किन्तु दुष्ट पुरुष कितना ही निकट का सम्बन्धी हो, वह उसे सांप काटी[४] उंगली की तरह अलग कर देता था। उसके लिए राजभवन ऋषि आश्रम के समान था और वह उसमे मुनि[५] की तरह रहता था। उसके

---

१. रघुवंश सर्ग १ पद्य १६।
२. रघुवंश सर्ग ३ पद्य २०।
३. रघु० सर्ग १ पद्य २७।
४. रघु० सर्ग १ पद्य २८।
५. रघु० सर्ग १ पद्य ५८।

राज्य में प्रजा को दैवी या मानुषी विपत्तियां पीड़ित नहीं करती थीं और सभी लोग सुखी दीर्घ[1] जीवन का उपभोग करते थे। राजा का ऐसा प्रताप था कि रात्रि के समय, अपने प्रेमियों के स्थान से लौटती हुई वेश्याएं यदि थक कर आधे रास्ते में ही आराम करने को रुक जाती और उन्हें नींद दबा लेती तो वायु भी उनके वस्त्रों को इधर उधर न कर सकती थी, किसी द्वारा छेड़ छाड़ की तो बात ही क्या? अपराधी को दण्ड देने की अपेक्षा अपराधों को रोकने पर अधिक ध्यान दिया जाता था।

पुत्रजन्म, विवाह, राज्याभिषेक आदि मांगलिक तथा प्रसन्नता के अवसरों पर वेश्या नृत्य का रिवाज था। दरबारों में राजा पर छत्र चामर आदि धारण करने का कार्य भी वे ही करती थीं।

(ग) वेश्याएं

पूर्व मेघ के २७ वे पद्य में वेश्याओं के साथ नगर के छैला लोगों के व्यवहार का जो वर्णन हुआ है उससे ज्ञात होता है कि युवक बहुत बड़ी संख्या में इस व्यसन के शिकार हो जाते थे और वे इसे लज्जाजनक न समझते थे। जो धनी नवयुवक अधिक स्त्रियों को अपनी ओर आकृष्ट कर सकता था वह समाज में सुभग समझा जाता था और इस प्रकार का सौभाग्य गौरव का कारण माना जाता था। इस में परस्पर होड़ भी हो जाती थी। पूर्व मेघ के २९ वे पद्य में निर्विन्ध्या नदी का वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि गर्मी के इन दिनों तुम्हारे वियोग में वह बहुत दुबली हो गई है इससे पता चलता है कि तुम सुभग हो। उत्तर मेघ के ३१वें पद्य में यक्ष मेघ को कह रहा है कि मैं अपने आपको मिथ्या सुभग समझ कर ही ये बातें नहीं कह रहा हूँ, तुम अभी देख लोगे कि मैं जो कुछ कह रहा हूँ वह अक्षरशः सत्य है। कुमारसंभव में ब्रह्मचारी जी शिव की निन्दा करते हुए कहते हैं कि हे पार्वती तुम जिस पर मर रही हो, मालूम होता है कि उसमें सौभाग्य का मद तो है ही नहीं, तभी तो वह बाँके कटाक्षों वाले तुम्हारे इन चंचल लोचनों के सम्मुख एक दम प्रकट नहीं हो जाता। मेघदूत में अन्य भी कई ऐसे उद्गार देखने को मिलते हैं जिनमें कवि ने प्रेमी के मुख से दाम्पत्य जीवन के अनेक गोपनीय व्यवहारों का वर्णन करवा दिया है जिन्हें आज का समाज अशोभन कह सकता है किन्तु हम उसे कवि पर तात्कालिक समाज की रुचि का प्रभाव ही समझते हैं। कालिदास के ग्रन्थों में अपने चरित्र की रक्षा में सदा तत्पर कुलीन कन्याओं और विवाहिता नारियों के सुन्दर चित्रों की भी कमी

---

१. रघु० सर्ग १ पद्य ६३।

नही। अभिज्ञान शाकुन्तल के छठे अंक में राजा ने शकुन्तला के विषय में कहा था कि "वैसी पतिव्रता देवी को भला कौन छू सकता है ?" और कुमार संभव में ब्रह्मचारी वेषधारी शिव ने पार्वती को कहा था कि कोई तुम पर कुदृष्टि डाले यह तो संभव ही नही क्योंकि साँप की मणि को छीनने का दु:साहस भला कौन कर सकता है ?

(घ) मद्यपान

शराब को यद्यपि दुर्व्यसन समझा जाता था किंतु लोग उससे सर्वथा बचे हुए न थे। रघुवंश के ९वे सर्ग मे दशरथ के प्रसंग में कवि ने लिखा है कि उसे शिकार, जूआ या शराब का व्यसन न था किंतु उसी काव्य के सातवे सर्ग के ११वे पद्य में हम उन स्त्रियों का वर्णन पढ़ते हैं जिनके मुख से आसव का मधुर गन्ध फैल रहा था। कुमार संभव के ८वे सर्ग में शिव जी अपने हाथ से पार्वती को वह मधु पिलाते हैं जो गन्ध मादन पर्वत की वन देवता उनके लिए वहाँ ले आई थी।

(ङ) रिश्वत

रिश्वत देने या राजकर्मचारी द्वारा बलात् रिश्वत लेने का भी एक मनोरंजक दृश्य हम अभिज्ञान शाकुन्तल मे देखते हैं।

१३. (क) साहित्यिक तथा सांस्कृतिक पृष्ठ-भूमि

कालिदास के जन्म से पूर्व ही प्राचीन वैदिक धर्म अपना नया रूप ले चुका था। जिसका प्रधान आधार वर्णाश्रम व्यवस्था थी। कालिदास ने अनेक स्थलों पर अपने नायकों द्वारा गृहस्थाश्रम के पश्चात् वानप्रस्थाश्रम में प्रवेश का सुन्दर वर्णन किया है, और जहाँ तहाँ पुंसवन, चडाकर्म, उपनयन आदि सोलह संस्कारों का निर्देश भी किया है। वह युग ऐसा संधिस्थल था जब यज्ञ-यागादि का स्थान शिव, विष्णु, स्कन्द आदि देवताओं की मूर्त्तियों की पूजा ग्रहण करती जा रही थी। उच्चवर्ग के लोगों की भाषा संस्कृत थी। दरबारों तथा साहित्य के क्षेत्र मे भी उसे प्रधान स्थान प्राप्त हो चुका था। किंतु घरों में स्त्रियाँ तथा दास-दासी आदि प्राकृतों का भी प्रयोग करते थे। उत्तर तथा पश्चिमोत्तर भारत में बौद्धों की महायान शाखा अपना साहित्य संस्कृत भाषा मे ही लिख रही थी।

(ख) शिक्षा

इस युग मे वेद का अध्ययन उसके छ. अंगों—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द तथा ज्योतिष के साथ किया जाता था। ब्राह्मण, उपनिषद, सूत्र ग्रन्थ, रामायण, महाभारत और सांख्यादि दर्शन पाठ्यक्रम के अन्तर्गत थे। पाणिनि के

व्याकरण पर कात्यायन अपना वार्त्तिक तथा पतंजलि महाभाष्य लिख चुके थे। महाभाष्य से ऐसे अनेक काव्यों का भी पता चलता है जो आज उपलब्ध नही। उसमें कंस वध आदि नाटकों का भी उल्लेख है जो रंगमंच पर खेले जाते थे। भारत में प्राचीन काल से धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष—चारों को ही उपादेय समझा जाता रहा है और उनका समयानुसार उचित मात्रा में सेवन आवश्यक कहा गया है। अतः प्रत्येक के लिए अलग ग्रन्थों की भी रचना होती रहती थी। धर्म को लेकर मनु आदि के धर्मशास्त्र तथा अर्थ के विपय में कौटिल्य आदि के अर्थशास्त्र वने। काम विषय पर भी अनेक शास्त्र लिखे गए जिनमें से वात्स्यायन का काम शास्त्र आज भी उपलब्ध है। इसके सम्वन्ध में कीथ महाशय के कुछ वाक्य यहाँ उद्धृत करने आवश्यक प्रतीत होते है क्योंकि वे उस नागरिक जीवन पर विशेप प्रकाश डालते है—जिसने कालिदास की रुचियों, भावनाओं तथा उसकी काव्य कला को बहुत अधिक प्रभावित किया था तथा जिसका वर्णन उसके ग्रंथों में हुआ है।

"कामसूत्र और कवि का वातावरण—वात्स्यायन के काम सूत्र का समय अनिश्चित है, तो भी उसका काल कालिदास से प्राचीन होना असंभव नही है। यह तो निश्चित ही है कि काम शास्त्र विपयक प्राचीनतर ग्रन्थो का सार लेकर इसे वनाया गया है। शृंगार-प्रधान कविता के लेखकों के लिए इस विषय का ज्ञाता होना अत्यावश्यक समझा जाता था, अतः जो कवि बनना चाहते थे वे व्याकरण, अलंकार, और कोप के समान ही इस सूत्र का भी अध्ययन करते थे। भारतीय जीवन के वैभव पूर्ण विस्तार में स्वभाव से ही विकसित उस नागरक के स्वरूप का विशद चित्रण हमें वात्स्यायन से प्राप्त होता है जिसके मनोरंजन के लिए कवि अपनी रचनाएँ प्रस्तुत किया करते थे। नागरक संपत्तिशाली तथा प्रायः शहर का रहने वाला होता था। उसके भवनों मे उस युग की समस्त सुख सामग्री—मुलायम गद्दे दार पीठिकाएँ, ग्रीष्मगृह, उसका दिल बहलाव करने वाली रमणियो के लिए झूले—सचित रहती थी। उसका बहुत सा समय उसके वनाव ठनाव मे ही व्यय हो जाता था। उसके शरीर में तेल की मालिश और वढ़िया उबटन लगाए जाते थे। स्नान कर वह पुष्पमालाएँ धारण करता और इतर फुलेल लगाता था। फिर वह घर के पालतू पक्षियों से मनोविनोद करता या मेढ़े और मुर्गो के युद्ध देखता था। वह वेश्याओं के साथ नगर के उपवनो मे भ्रमणार्थ जाता था और वहाँ उन द्वारा बीने गए फूलो के हारो से भूपित होकर लौटता था। सगीत गोष्ठियों, नृत्यों और अभिनयो में भी वह जाता था।

वीणा उसके पास पड़ी रहती थी, मन करते ही वह उसे बजा लेता या कोई पुस्तक पढने लगता। समय-समय पर उसका मनोरंजन करने वाले तथा प्रेम-लीलाओं में सहायता करने वाले विट विदूषक आदि छैल-छबीले दोस्त भी उसके साथ लगे रहते थे। शराब के दौर चलते थे। नागरक सुसस्कृत व्यक्ति होता था अतः उसके व्यवहार मे प्रायः उच्छृंखलता या फूहड़पन नही आने पाता था। अपने आमोदो प्रमोदों मे वह नागरोचित भद्रता, सयम तथा मर्यादा का ध्यान अवश्य रखता था। वह प्राकृत भाषा भी बोल लेता था किंतु मुख्यतया उसकी भाषा सस्कृत ही थी। वेश्याओं का सपर्क उसके लिए आवश्यक सा था। किन्तु वे वेश्याएँ भी गुण सम्पन्न होती थी, ऐसी वैसी नही। साहित्यिक योग्यता के साथ-साथ वे सब कलाओं मे कुशल तथा बहुज्ञ होती थी। मृच्छकटिक की नायिका के भवन के वर्णन से ज्ञात होता है कि उनके पास विपुल संपत्ति होती थी। साथ ही पैरिक्लीज के समय की एथन्स नगरी की तरह उनके भवनो मे जुटने वाली साहित्य सगीत और कलाओं की गोष्ठियो मे जो आह्लाद प्राप्त होता था उसकी आशा वे अपने घर की स्त्रियों से नही कर सकते थे। वे तो केवल सतानोत्पत्ति और घर की देखभाल के ही लिए होती थी।"

(ग) नाट्य शास्त्र, नाटक तथा नृत्य आदि

कालिदास को भरतमुनि के नाट्यशास्त्र का ज्ञान था। विक्रमोर्वशीय नाटक मे उसने इन्द्र सभा में एक नाटक के खेले जाने का वर्णन किया है जिसके लेखक तथा सूत्रधार भरत[1] स्वयं थे। उसने अपने नाटक मालविकाग्नि मित्र मे पूर्ववर्त्ती नाटककार भास[2] सोमिलक कवि पुत्र आदि को स्मरण किया है। इसी नाटक से यह भी पता चलता

---

१. मुनिना भरतेन यः प्रयोगो भवतीष्वष्टरसाश्रयो निबद्धः।
ललिताभिनयं तमद्य भर्ता मरुता द्रष्टुमनाः सलोकपालः।
विक्रमोर्वशीय अक २, पद्य १७

२. मा तावत्प्रथित यशसां भाससौमिलक कवि पुत्रादीनां प्रबन्धा नतिक्रम्य वर्तमान कवेः कालिदासस्य क्रियाया कथं बहुमानः।
(मालविकाग्नि मित्र की प्रस्तावना)

है कि उस समय नृत्यकला भी बहुत उन्नत दशा मे थी। मालविका[1] ने अग्निमित्र की एक गोष्ठी में परिष्कृत नृत्य, सूक्ष्म भावाभिनय और मधुर संगीत के कुशल मिश्रण का अद्भुत दृश्य उपस्थित कर दिया था।

(घ) अर्थशास्त्र तथा ललित-कलाएँ

कवि ने कौटिल्य के अर्थशास्त्र का भी अध्ययन किया था और राजनीति सम्बन्धी विचारो में वह इससे बहुत प्रभावित हुआ था इसके अनेक प्रमाण[2] उसके ग्रथो मे मिलते है। उसके समय तक मौर्यकालीन तथा शुंग युग की वास्तुकला एवं मूर्तिकला और भी अधिक परिष्कृत हो गई थी। कई-कई मंजिल के सोपान युक्त भवन बनाए जाते थे। उनके स्तम्भ पत्थर के होते थे और उन पर तरह-तरह की मूर्तियाँ तथा फूल-पत्तियाँ आदि खोदे जाते

---

१. परिव्राजिका—यथादृष्टं सर्वमनवद्यम् । कुतः—
अंगैरन्तर्निहितवचनैः सूचितः सम्यगर्थः
पादन्यासो लय मनुगत स्तल्लयत्वं रसेपु ।
शाखा योनिर्मृदु रभिनयस्तद्विकल्पानुवृत्तौ
भावो भावं नुदति विपयाद्रागबन्धः स एव ।
(माल० अंक २ पद्य ८)

२. (क) उदकान्ते सैन्य मासीत । मत्स्य ग्राहविशुद्धमवगाहेत ।
(अर्थशास्त्र पृ० ४४)
स तीर भूमौ विहितोपकार्या मानायिभिस्तामपकृष्ट नक्राम् ।
विगाहितुं श्री महिमानुरूपं प्रचक्रमे चक्रधर प्रभाव. ॥
रघुवंश सर्ग १६ पद्य ५५ ॥

(ख) चललक्ष्य परिचयार्थं मृगयारण्यं गच्छेत् ॥ अर्थशास्त्र पृ० ४४॥
परिचय चललक्ष्य निपातने भयरुषोश्च तदिगितवेदनम् ।
श्रमजयात्प्रगुणा च करोत्यसौ तनुमतोनुमत. सचिवैर्ययौ ॥
रघु० सर्ग ९ पद्य ४९ ॥
मेदश्छेदकृशोदरं लघुभवत्युत्थान योग्यं वपुः
सत्त्वानामपि लक्ष्यते विकृतिमच्चित्तं भयक्रोधयो. ।
उत्कर्प स च धन्विना यदिषव. सिध्यन्ति लक्ष्ये चले····
शाकु० अंक २ पद्य ५ ॥

थे। भवनों की दीवारों पर बड़े-बड़े चित्र बनाए जाते थे उजाड़ अयोध्या के वर्णन मे, रघुवंश के सोलहवे सर्ग मे, इसी प्रकार के एक सुन्दर[1] चित्र दृश्य का वर्णन करता हुआ कवि लिखता है कि सरोवर में कमल खिल रहे हैं, वहाँ हथिनियों के साथ हाथी क्रीड़ा कर रहा है। हथिनियाँ अपनी सूड से मृणाल तोड कर प्रेम से हाथी को खिला रही है और इन हाथियो को सचमुच के समझ कर शेर ने क्रुद्ध होकर तोड़ डाला है। भवनों मे बावलिया बनाने का भी बहुत प्रचलन था जिनमे कमल खिलते, हंस तैरते और स्त्रियाँ जल-क्रीडा किया करती

(ग) भूतपूर्वमभूतपूर्वं वा जनपदं परदेशाप वाहनेन
स्वदेशाभिष्यन्दवमनेन वा निवेशयेत् (कौटल्य पृ० ४५॥)
स्वर्गाभिष्यन्द वमनं कृत्वेवोपनिवेशितम् ॥ कुमार सर्ग ६ पद्य ३७॥

(घ) अग्न्यगारगत कार्यं पश्येद्वैद्यतपस्विनाम् ।
पुरोहिताचार्य सख: प्रत्युत्थायाभिवाद्य च ॥ कौटिल्य पृ० ३९॥
अभिज्ञान शाकुन्तल का ५वाँ अंक—यज्ञशाला में पहुँच कर, पुरोहित के साथ राजा का कण्वशिष्यो से मिलना।

(ङ) धर्मार्थाऽविरोधेन काम सेवेत ।····एकोह्यत्या सेवितो धर्मार्थकामानामितरौ पीडयति ॥ कौटिल्य पृ० १२ ॥
न धर्म मर्थ कामाभ्या ववाधे न च तेन तौ।
नार्थकामेन काम वा सोर्थेन सदृशस्त्रिषु ॥ रघु० सर्ग १७ पद्य ५७॥

(च) ब्राह्मणेनैधितं क्षत्रं मन्त्रिमन्त्राभिमन्त्रितम् ।
जयत्यजितं मत्यन्तं शास्त्रानुगमशस्त्रितम् ॥ कौ० पृ० १६॥
तव मन्त्रकृतो मन्त्रैर्दूरात् प्रशमितारिभि:
प्रत्यादिश्यन्त इव मे दृष्टलक्ष्यभिद. शरा: ॥ रघुवश सर्ग १ पद्य ६१॥

(छ) वृत्तचौलकर्मा लिपि सख्यानं चोपयुंजीत ॥ कौटिल्य पृ० १०॥
स वृत्त चूलश्चल काकपक्षकैरमात्यपुत्रैः सवयोभिरन्वित. ।
लिपेर्यथावद् ग्रहणेन वाड्मयं नदीमुखेनेव समुद्रमाविशत् ॥
रघु सर्ग ३ पद्य २८ ॥

१ चित्रद्विपा. पद्म वनावतीर्णा. करेणुभिर्दत्तमृणाल भङ्गा: ।
नखांकुशा घात विभिन्न कुम्भा. संरब्धसिह प्रहृतं वहन्ति ॥
रघु० सर्ग १६ पद्य १६॥

थी। उद्यानों में धारा-गृह भी बनाए जाते थे जिनमें जल यन्त्र चलते थे और उनके शीतल कुंजों में प्रेमी युगल ग्रीष्म की दोपहर बिताया करते थे।

कवि के नायक नायिका चित्रकला में भी अत्यन्त निपुण होते थे जो किसी व्यक्ति या दृश्य को एक बार देखकर चित्रपट पर उसका चित्र ठीक वैसा ही बना सकते थे। कालिदास के समय तक वे सुन्दर प्रस्तर वेदियाँ और तोरण द्वार और कलापूर्ण स्तम्भ बन चुके थे जिन पर अंकित जातक कथाओं के भव्य चित्र आज भी पुराने भग्नावशेषों में देखे जा सकते हैं।

१४. कालिदास का जन्म तथा शिक्षा

विक्रम संवत् के प्रारम्भ से लगभग २०, २५ वर्ष पूर्व (७०, ७५ ई० पूर्व) हिमालय पर्वत के किसी ऐसे प्रदेश में इस महाकवि का जन्म हुआ जहाँ गंगा भी साथ बहती है। वह स्थान वर्तमान गढ़वाल के अन्तर्गत टीहरी या श्रीनगर के निकट था। कालिदास ने अपने जन्म से किसी ऐसे कुलीन ब्राह्मण परिवार को महिमा प्रदान की जिसमें शास्त्रों के अध्ययन अध्यापन की परम्परा कई पीढ़ियों से चली आ रही थी। वह शैव धर्म का उपासक था किन्तु अन्य धर्मों में भी श्रद्धा रखता था। उसमें आचार विचार की शुद्धता का बहुत ध्यान रक्खा जाता था। घर तथा ग्राम के ऐसे वातावरण में बालक की शिक्षा-दीक्षा का श्रीगणेश हुआ और उसके चूड़ा कर्म, उपनयन आदि संस्कार विधिवत् संपन्न हुए। उसने शीघ्र ही व्याकरण कोश, निरुक्त, कर्मकाण्ड, छन्द, ज्योतिष दर्शन, रामायण, महाभारत, पुराण, धर्म शास्त्र, अर्थशास्त्र, कामशास्त्र, नाट्य-शास्त्र तथा काव्य नाटक आदि का अध्ययन कर लिया। संभव है कि २०, २२ वर्ष की आयु में ही उसका विवाह भी हो गया और अब उसे किसी अच्छी जीविका की चिन्ता हुई। ब्राह्मणों की कुल क्रमागत पुरोहित वृत्ति तथा पठन-पाठन का व्यवसाय तो परिवार में चलता ही था किन्तु इस नव-युवक का महत्त्वाकांक्षी तथा स्वातन्त्र्य प्रेमी हृदय उससे संतुष्ट न हो सका क्योंकि निष्प्राण कर्मकाण्ड से उसे विशेष विरक्ति थी और वह समझता था कि उसके सूक्ष्म विधि-विधानों के चक्कर में पड़कर मनुष्य वेदाभ्यास-जड़ हो जाता है, अतः वह साहस कर विस्तृत जगत् में अपने भाग्य की परीक्षा के लिए निकल पड़ा।

उन दिनों उज्जयिनी और उसके राजा विक्रमादित्य की ख्याति दूर-दूर तक फैली हुई थी। प्रसिद्ध था कि राजा विद्वानों का आदर करता है और कोई भी उसके द्वार से खाली हाथ नहीं लौटता। अतः युवक कालिदास भी इसी उद्देश्य

(ख) प्रवास तथा उज्जयिनी में आगमन

से अनेक प्रदेशों का भ्रमण करता, और वहाँ की विद्वद् गोष्ठियों का आनन्द उठाता, अन्तमे उज्जयिनी पहुँच गया। वहाँ कवि के इष्ट देव महाकाल का विशाल मन्दिर था, जहाँ प्रातः सायं बडी धूमधाम से पूजा होती थी, नगाड़े बजते थे, भक्त जन गाते थे और वेश्याएँ नृत्य करती थी। कालिदास ने भी वहाँ पहुँच कर बड़ी भक्ति से शिव के चरणो मे प्रणाम किया और भावी जीवन मे सफलता की प्रार्थना की। इस लम्बे भ्रमण से उसके अनुभव मे बहुत वृद्धि हुई। तरह-तरह के लोगो के सपर्क मे आने से उसे उनके स्वभाव के सूक्ष्म अध्ययन का अवसर मिला। विभिन्न प्रदेशों, बनो, पर्वतो, नदियों और ऋतु-ऋतु मे उनके परिवर्तित प्राकृतिक दृश्यों को उसने अपनी आँखों से देखा। उन दिनों यात्रा करना हंसी खेल न था, जगली जन्तुओं का भय तो पद-पद पर लगा ही रहता था और व्यापारी काफलो तथा यात्रियो को लूटने वाले डाकुओं की भी कमी न थी। भोजन तथा विश्राम की सुविधा का तो कहना ही क्या? किन्तु इन बातों से भी कालिदास ने कुछ सीखा ही।

(ग) साहित्य रचना ऋतु संहार

कालिदास गौरवर्ण का सुन्दर युवक था उसका माथा ऊँचा, नाक नुकीली तथा आँखे तीखी थी। उसका रूप तथा वेप राजकुमार सा था। वह भूतल पर अवतीर्ण साक्षात् इन्द्र सा प्रतीत होता था। उसे जो भी देखता, वह प्रभावित हुए बिना न रहता। उस पर भी उसकी वाग्मिता तथा समयोचित सूझ-बूझ ने उसे और भी अधिक आकर्षक बना दिया था। उसके इन गुणो के कारण उज्जयिनी के धनी मानी परिवारो मे वह शीघ्र ही सर्वप्रिय हो गया, और उनके द्वारा राजभवन के द्वार भी उसके लिए खुल गए। अब उसे भोजन तथा निवास की चिन्ता न सताती थी अतः प्राथमिक आवश्यकताओ से मुक्त होते ही उसकी नैसर्गिक प्रतिभा फूट निकली और उसने अपनी प्रथम रचना ऋतु संहार का निर्माण किया। इस खण्ड काव्य में उसने कही-कही अपनी यात्रा के कष्टो का अस्पष्ट संकेत किया है किन्तु मुख्यता विभिन्न ऋतुओं और उनके अनुकूल धनी-मानी नागरिको के उन आमोद प्रमोदो के वर्णनो की है जिन्हे वह प्रति-दिन के जीवन मे देखता था और कभी-कभी उनमें भाग भी लेता था।

सुन्दर रूप, नई जवानी, एश्वर्य सुख और इन सबके उपर राजकृपा—इन

---

१. देखो—भोजप्रबन्ध पृ० ५२ (वैंकटेश्वर प्रेस० संवत् २००९।)

परिस्थितियों में यदि प्रेम के देवता ने भी उस पर अनुग्रह कर दिया हो तो कुछ आश्चर्य नही। नही कह सकते कि वे कौन-सी पौराङ्गनाएँ थी जिनके चंचल चितवनो की चाह, उज्जयिनी छोड़ने के बहुत दिन बाद तक भी उसके चित्त में बनी रही और जिनके कारण उसने मेघ से आग्रह किया कि वह उज्जयिनी जाकर उनका आनन्द अवश्य ले।

(घ) राजाश्रय माल-विकाग्नि मित्र नाटक की रचना

उज्जयिनी विदिशा से दूर नही। यद्यपि शुंग वंश अस्तोन्मुख था तो भी विदिशा का गौरव तब तक शेष था। सभवतः कुछ ऐसे बड़े-बूढ़े लोग तब भी जीवित थे जिन्होंने पुष्यमित्र द्वारा वैदिक धर्म की पुनः स्थापना के दृश्य को अपनी आँखों से देखा था और जिन्होने इस परिवर्तन को पसन्द किया था। वे उक्त घटना की जो मनोरजक कहानियाँ सुनाया करते थे उनसे कवि को मालविकाग्निमित्र नाटक लिखने की प्रेरणा मिली। उन दिनों विदर्भ तथा विदिशा में कुछ विरोध चल रहा था। विदर्भ के शासक यज्ञसेन का साला मौर्यवंशीय था जिसे अग्निमित्र ने कैद कर लिया था। इसका कारण शुंगो तथा मौर्यों की पुरानी शत्रुता ही रही होगी। यज्ञसेन के भाई माधवसेन ने अग्निमित्र से मित्रता कर ली और अपनी बहिन का रिश्ता उससे कर दिया। इस राजनीतिक पृष्ठभूमि पर अग्निमित्र तथा विदर्भ के राजकुमार माधवसेन की बहिन मालविका के प्रेम और विवाह की कहानी इस नाटक का वर्णनीय विषय है। नाटक को जनता ने खूब पसन्द किया जिससे कवि का उत्साह बढ़ा और राजा का ध्यान भी उसकी ओर विशेष रूप से आकृष्ट हो गया।

राजदरबार मे आने-जाने की सुविधा प्राप्त हो जाने पर कवि ने अपनी प्रतिभा तथा अन्यगुणो से राजा विक्रमादित्य को अत्यधिक प्रभावित किया और वह उसकी राजसभा का मुख्य रत्न बन गया। विक्रमादित्य की किसी विशेष सफलता या विजय के उपलक्ष में कवि ने अपने दूसरे नाटक विक्रमोर्वशीय की रचना की। पहले कहा जा चुका है कि इस नाटक में विक्रम नाम का पात्र नही है फिर भी नाटक का नाम 'विक्रमोर्वशीय'[1] रखने मे कोई विशेष कारण अवश्य होना चाहिए।

---

१ विक्रमोर्वशीय के चतुर्थ अंक मे आये अपभ्रश पद्यो की भाषा के आधार पर कालिदास के काल का विचार ठीक नही। ये भाग निश्चित रूप से पीछे की मिलावट है। इन अंशों का अपने पूर्वापर सस्कृत सन्दर्भों से कुछ भी सम्बन्ध नही।

मेघदूत

राज्याश्रय प्राप्त हो चुकने पर कवि को अपने निवास स्थान से बहुत दूर मध्यभारत मे उज्जयिनी या विदिशा आदि स्थानो मे रहना पड़ता था । यात्रा की असुविधाओ के कारण वह कभी-कभी ही अपने घर आकर पारिवारिक सुख का अनुभव कर पाता था । उस युग में स्त्रियों का अपने पतियो के साथ प्रवास मे जाना अच्छा न समझा जाता था अतः उनके जीवन का अधिकतर भाग विरह कष्ट भोगने मे ही व्यतीत होता था । सम्भव है कि कभी कवि ने राजा को प्रसन्न कर कुछ दिन अपने घर जा कर रहने की अनुमति प्राप्त कर ली और जाने की तैय्यारी हो गई । किन्तु इसी बीच, किसी अनिवार्य कारण से, राजा ने उसे राजकीय कार्य के लिए रोक लिया और अन्यत्र भेज दिया । इससे कवि के प्रियामिलन की सुखद आशा पर तुषारपात हो गया और अपनी इस व्यथा को उसने मेघदूत द्वारा प्रकट किया । इस काव्य की रचना के समय तक कवि नि.संतान था और संभवतः उसके माता-पिता का भी देहान्त हो चुका था । मेघदूत के अध्ययन से ज्ञात होता है कि कवि के जीवन का बहुत बड़ा भाग मध्य भारत के इन प्रदेशो मे व्यतीत हुआ था और इनके साथ उसका विशेष लगाव भी था । इस स्थान के छोटे-छोटे नदी नाले, पहाड़, टीले, वन वृक्ष तथा मन्दिर आदि का जो व्यौरेवार वर्णन कवि ने किया है वह इनके साथ उसके घनिष्ठ परिचय का सूचक है ।

कुमार संभव

कवि के ग्रन्थ कुमार संभव का नाम भी एक समस्या बना हुआ है । कोई कहता है कि इस महाकाव्य मे कवि ने शिव पार्वती के संभोग शृंगार का जो नग्न वर्णन किया है उसे उस समय का समाज सह न सका और उनकी प्रतिकूल समालोचना से अनुत्साहित होकर कवि ने अपने प्रयास को बीच मे ही छोड़ दिया । दूसरे विचारको का कथन है कि कवि की असामयिक मृत्यु के कारण यह महाकाव्य पूरा न हो सका । यदि वह कुछ समय और जीवित रहता तो इस काव्य की समाप्ति कुमार के जन्म पर करता जैसा कि काव्य के नाम तथा उसके दूसरे सर्ग के उस प्रसंग से प्रकट है जिसमे ब्रह्माजी ने देवताओं को आदेश दिया है कि वे शिवजी का मन पार्वती की ओर आकृष्ट करने का यत्न करे जिससे कि उनका विवाह हो जाने पर उस कुमार का जन्म हो सके जो तारकासुर का सहार करेगा । किन्तु ये दोनों ही मत ठीक नही प्रतीत होते । अलंकार शास्त्र के प्राचीन आचार्य दण्डी भामह वामन आदि ने रसदोष के

प्रसंग में कुमार संभव के इस सर्ग की चर्चा नहीं की। ध्वन्यालोक के कर्त्ता आनंदवर्धन तथा उसके अनुयायी मम्मट ने भी कालिदास या कुमार संभव का नाम ले कर इस सर्ग की निन्दा नही की। पंडितराज जगन्नाथ ने गीत गोविन्द के रचियता जयदेव को तो दोष दिया, कालिदास को नही। इसका कुछ कारण अवश्य होना चाहिए। कवि की असामयिक मृत्यु से कारण कुमार संभव पूरा न हो सका—यह पक्ष भी ठीक नहीं प्रतीत होता क्योंकि इस महाकाव्य के पश्चात् कवि ने रघुवंश तथा अभिज्ञान शाकुन्तल की रचना की थी और इस अपूर्णता का वास्तविक कारण यह प्रतीत होता है कि कवि के आश्रय दाता राजा की महारानी के जब गर्भ रह गया तो सभी को प्रसन्नता हुई और वे कुमार के जन्म की उत्सुक प्रतीक्षा करने लगे। कालिदास ने भी उस कुमार संभव के अवसर पर कोई उपयुक्त भेट राजा को देने का निश्चय किया और राजकुमार तथा शिव कुमार दोनों को दृष्टि में रखकर कुमार संभव काव्य का निर्माण प्रारम्भ कर दिया। जब राजकुमार का जन्म हुआ तो कवि ने तब तक बना अपना महाकाव्य राजा को समर्पित कर दिया। वस्तुतः स्कन्द का जन्म दिखलाना महाकाव्य का मुख्य लक्ष्य था ही नहीं। यदि बालक के जन्म होने तक काव्य वहाँ तक पहुँच जाता तो कवि को कोई आपत्ति न थी, अतः कवि ने उस अधूरे काव्य को कभी पूरा नहीं किया।

शुंग तथा कण्व राजाओं के शासन काल में विदिशा तथा उज्जयिनी का महत्त्व बढ़ गया था किन्तु मगध का गौरव भी सर्वथा लुप्त नहीं हुआ था। प्रतीत होता है कि साम्राज्य के पुराने तथा प्रधान केन्द्र की दृष्टि से मगध की प्रतिष्ठा बनी ही हुई थी, अतः कालिदास को भी अपने जीवन के उत्तर भाग में मगध में जाकर रहना पड़ा और रघुवंश की रचना उसने वहीं रहकर की। उसे अपने आश्रयदाता नरेशों के साथ दूर-दूर तक भ्रमण करने पड़े और कितने ही स्थानों की यात्रा उसने तीर्थ यात्रा की दृष्टि से भी की होगी। रघुवंश के अध्ययन से पता चलता है कि कवि को भारत के कोने-कोने का सूक्ष्म ज्ञान था। वह प्रत्येक प्रदेश की भौगोलिक स्थिति, वहाँ की जनता का स्वभाव, तथा उपज आदि से खूब परिचित था। उसे बंगाल के चावल, आसाम के अगरू, मलय के चन्दन, काली मिर्च और इलायची तथा ताम्रपर्णी के मोती और काम्बोज के अखरोटों का पता था।

वृद्धावस्था में कालिदास की रुचि अध्यात्म चिन्तन तथा योग साधना की ओर भी हो गई थी। उसने विधिवत् वानप्रस्थ और सन्यास आश्रम में भी

वृद्धावस्था

प्रवेश किया था या नही—यह निश्चयपूर्वक नही कहा जा सकता किन्तु वह इन्हे पसन्द अवश्य करता था। अन्तिम नाटक अभिज्ञान शाकुन्तल की रचना उसने देवभूमि हिमालय के अक मे स्थित अपनी जन्म भूमि मे पहुँच कर की, जहाँ दुष्यन्त की तरह उसका भी अपनी चिरवियुक्ता पत्नी से पुर्नमिलन हुआ और शेष आयु उसने वही पर पुनर्जन्म के चक्कर से मुक्ति दिलाने वाले भगवान् नीललोहित शिव की आराधना मे समाप्त कर दी। वह फिर राज सेवा के लिए विदिशा, उज्जयिनी या मगध नही लौटा। कालिदास के कोई सतान थी या नही यह निश्चय पूर्वक नही कहा जा सकता। किन्तु सतान प्राप्ति के लिए जो कातरता उसके ग्रन्थो मे देखी जाती है उससे प्रतीत होता है कि बहुत समय तक उसे सतान सुख से वंचित रहना पडा होगा।

व्यक्तित्व

कालिदास की आयु का अधिकतर भाग समाज के उच्चतर वर्ग या राज-दरबारो मे व्यतीत हुआ था। अत. वह उस समय के शिष्ट व्यवहार, परिष्कृत बोलचाल, तथा रीति-नीति का पारगत विद्वान् था। सस्कृत भाषा पर उसका असाधारण अधिकार था। रामायण महाभारत को आदर्श मानकर उसने वैदर्भी शैली में काव्य रचना का अभ्यास किया था। जिसके साथ मिलकर स्वाभाविक प्रतिभा ने सोने मे सुहागे का काम किया। कवि की दृष्टि जितनी व्यापक थी उतनी ही सूक्ष्म भी। इसीलिए उसकी उपमाएं बहुत सुन्दर समझी जाती है किन्तु उन्हे ही उसकी प्रधान विशेषता समझना भूल है। उपमा तो कविता का एक अत्यन्त गौण तथा वाह्य रूप है। उसकी बडी विशेषता वह सौन्दर्य है जो उसकी रचना का प्राण बनकर सर्वत्र उच्छ्वासित हो रहा है।

उसका व्यक्तित्व

उसका व्यक्तित्व आकर्षक तथा प्रभावशाली था। कवि होने के साथ ही वह राजनीति के दाव पेचो को भी खूब समझने वाला तथा वाक्चतुर था। इसलिए राज्य के सन्धि विग्रह आदि अत्यन्त गंभीर कार्यो का उत्तरदायित्व भी कभी-कभी उस पर आ पड़ता था।

वह समस्यापूर्ति मे अत्यन्त निपुण था और उसकी पूर्ण की हुई समस्या यथार्थ घटना के रहस्य को खोलने वाली होती थी। भोजप्रबन्ध के कर्त्ता वल्लाल ने कालिदास को सरस्वती का अवतार तथा अन्तर्दृष्टि

संपन्न सिद्ध करना चाहा है किन्तु स्थूल दृष्टि के पाठक पर यह प्रभाव पड़ जाता है कि कालिदास व्यभिचारी था। भोज प्रवन्ध के आधार पर प्रचलित उसकी वेश्यानुराग सम्बन्धी गाथाएँ भी अविश्वसनीय है। कीथ लिखते है कि "एक दूसरा अधिक विस्तृत उपाख्यान, लंका मे जबकि वे राजा कुमारदास के अतिथि थे, एक लोभी वेश्या द्वारा उनकी हत्या का वर्णन करता है। इस कथन को स्वीकार करने के लिए कुछ भी आधार नही।"

आज दो हजार वर्ष व्यतीत हो चुकने पर भी, बिना किसी राजाश्रय के जिस साहित्य ने कवि की कीर्ति को अक्षुण्ण बना रक्खा है, जिसकी प्रशंसा वे विदेशी विद्वान् भी मुक्त कण्ठ से करते नही थकते, जिनकी भाषा संस्कृत नही, उसमे कोई ठोस गुण होना चाहिए और वही कालिदास की वास्तविक विशेषता है।

कालिदास एक या अनेक

बहुत समय से यह प्रसिद्धि चली आ रही है कि उपर्युक्त चारो काव्यों तथा तीन नाटको का कर्त्ता एक ही कालिदास है किन्तु कतिपय विचारक इससे सहमत नही। वे कहते है कि नाटककार कालिदास तथा काव्यकार कालिदास अलग-अलग है। राजशेखर ने एक जगह तीन कालिदासों का उल्लेख किया है। हम इस विषय के विस्तार में न जाकर काव्यो तथा नाटकों के कुछ ऐसे उद्धरण यहाँ एकत्र कर रहे है जिनसे कोई स्पष्ट परिणाम निकाला जा सकता है।

१ रघुवश सर्ग—परिचय चल लक्ष्य निपातने भयरुषोश्चतदिङ्गित वेदनम्।

(क) पद्य ४९ श्रमजयात् प्रगुणा च करोत्यसौ तनुमतोनुमतः सचिवैर्ययौ ॥

(ख) शाकु० अक ४ पद्य २

मेदश्छेद कृशोदर लघुभवत्युत्थान योग्यं वपुः
सत्त्वाना मपि लक्ष्यते विकृति मच्चित्त भय क्रोधयोः।
उत्कर्ष. स च धन्विना यदिषवः सिध्यन्ति लक्ष्ये चले
मिथ्यैव व्यसन वदन्ति मृगयामीदृग्विनोदः कुतः ॥

२. रघु० ९ का (क) पद्य ६६

अपि तुरग समीपादुत्पतन्त मयूर
न स रुचिरकलापं बाण लक्ष्यी चकार।
सपदि गतमनस्कश्चित्रमाल्यानुकीर्णे
रति विगलितबन्धे केशपाशे प्रियाया. ॥

मृदुपवन विभिन्नो मत्प्रियाया विनाशाद्
विक्रमो० अंक ४ (ख) घनरुचिर कलापो निःसपत्नोऽस्य जातः ।
का पद्य २२ रति विगलित बन्धे केशपाशे सुकेश्याः
सति कुसुम सनाथे कं हरेदेष बर्ही ॥ विक्रमो०

३. रघु०सर्ग३पद्य३३ (क) भूतार्थ व्याहृतिः सा हि न स्तुतिः परमेष्ठिनः
कुमार० ७ का १३ (ख) भूतार्थशोभा ह्रियमाण नेत्राः प्रसाधने सन्निहितेऽपि नार्यः
शाकुन्तल प्रस्तावना—सूत्रधार :—आर्ये कथयामि ते भूतार्थम् ।

४. रघु० १० का ८३ (क) ते प्रजानां प्रजानाथास्तेजसा प्रश्रयेण च ।
मनो जह्रुर्निदाघान्ते श्यामाभ्रा दिवसा इव ।
शाकुन्तल ३ का १० (ख) स्मर एव ताप हेतु निर्वापयिता स एव मे जातः ।
दिवस इवा भ्रश्याम स्तपात्यये जीवलोकस्य ॥

५. रघुवंश ११का४४ (क) तत्प्रसुप्तभुजगेन्द्र भीषणं वीक्ष्य दाशरथि राददे धनुः ।
विद्रुत क्रतुमृगानुसारिणं येनबाण मसृजद्वृषध्वजः ।
शाकुन्तल प्रस्तावना (ख) कृष्ण सारे ददच्चक्षुस्त्वयि चाधिज्यकार्मुके ।
मृगानुसारिणं साक्षात्पश्यामीव पिनाकिनम् ॥

६. रघुवंश १४ का ३१ (क) वाच्यस्त्वया मद्वचनात्स राजा ।
विक्रमो० अंक १३ (ख) कञ्चुकी—तदेवं त्वं मद्वचनात् विज्ञापय ।
शाकुन्तल अंक ४ (ग) कण्वः—शार्ङ्गरव, इतित्वया मद्वचनात् स राजा शकुन्तलां
पुरस्कृत्य वक्तव्यः ।
,, ,, २ (घ) राजा—मद्वचनाद् उच्यतां सारथिः ।
कुमार सर्ग (ङ) यदुच्यते पार्वति पापवृत्तये न रूपमित्यव्यभिचारि तद्वचः ।
तथाहि ते शील मुदारदर्शने तपस्विनामप्युपदेशतां गतम् ॥
शाकुन्तल अंक ५ (च) राजा—इदं तत् प्रत्युत्पन्नमतिस्त्रैणमिति यदुच्यते ।
,, ,, (छ) राजा—यदुच्यते रन्ध्रोपनिपातिनोऽनर्थाः ।
इति तद व्यभिचारि वचः ।

७. रघुवंश १२ का १८ (क) संध्याभ्रकपिशस्तस्य विराधो नाम राक्षसः ।
अतिष्ठन्मार्गमावृत्य रामस्येन्दो रिव ग्रहः ॥
शाकुन्तल ३–२५ (ख) छायाश्चरन्ति बहुधा भयमादधानाः,
सन्ध्यापयोदकपिशाः पिशिताशनानाम् ।

८. कुमार १–४२ (क) कण्ठस्य तस्याः स्तनबन्धुरस्य
मुक्ताकलापस्य च निस्तलस्य

अन्योन्य शोभा जननाद् बभूव
साधारणो भूषण भूष्यभावः ॥

विक्रमो० २ का ३ (ख) आभरणस्याभरण प्रसाधन विधेः प्रसाधनविशेषः ।
उपमानस्यापि सखे प्रत्युपमानं वपुस्तस्याः ॥

९. कुमार १ का ५७ (क) तत्राग्निमाधाय समित्समिद्धं
स्वमेव मूर्त्यन्तरमष्ट मूर्तिः ।
स्वय विधाता तपस. फलानां
केनापि कामेन तपश्चचार ॥

शाकुन्तल ७ का १२—(ख) प्राणानामनिलेन वृत्ति रुचिता सत्कल्प वृक्षे वने,
तोये काञ्चन पद्मरेणुकपिशे पुण्याभिषेकक्रिया ।
ध्यान रत्न शिला तलेषु विबुधस्त्री सनिधौ सयमो'
यत्काक्षन्ति तपोभिरन्य मुनयस्तस्मि स्तपस्यन्त्यमी ॥

१०. कुमार ५ का ९ (क) यथा प्रसिद्धैर्मधुर शिरोरुहै
र्जटाभि रम्प्येव मभू त्तदाननम् ।
न षट्पद श्रेणिभिरेव पकज
सशैवला सगमपि प्रकाशते ॥

शाकु'·· ··१/१९ (ख) सरसिज मनुविद्ध शैवलेनापि रम्य,
मलिन मपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मी तनोति ।

११. कुमार–८/८ ३ (क) अंगुलिभिरिव केशसंचय
सन्निगृह्य तिमिरं मरीचिभिः ।
कुड्मली कृत सरोज लोचनं चुंबतीव
रजनी मुख शशी ॥

विक्रमो० ३ का ६ (ख) उदय गूढशशाङ्क मरीचिभि स्तमसि दूरतरं प्रतिसारिते
अलकसयमनादिव लोचनै हरति मे हरिवाहन दिङ्मुखम् ॥

१२. पूर्वमेघ का ४१वा पद्य तथा विक्रमोवर्शीय ४ का ७वा । उत्तर मेघ का
१२ वाँ पद्य तथा शाकुन्तल का ४ का ५वाँ पद्य ।

१३. रघु० ८ सर्ग का—द्रमु सानुमता किमन्तर यदि वायौ द्वितयेऽपि ते चलाः ।

शाकु० अंक ६— ननु प्रवातेपि निष्कम्पा. गिरयः ।

१४. कुमार ८ का ६२—तथा शकुन्तला का ३ का ५ ।

१५. रघुवंश ४ सर्ग—जयोदाहरणं वाहोर्गापया मा स किन्नरान् ।

विक्रमो० अंक १ में——चित्ररथ——तदा वयमन्तराचारेणभ्यस्त्वदीयं जयोदाहरणं श्रुत्वा० इत्यादि ।

१६ रघुवश (क) किमत्र चित्रं यदि कामसूभूर्वृत्ते स्थित स्याधिपतेः प्रजानाम् । सर्ग ५ ॥

शाकुन्तल (ख) किमत्र चित्र यदि विशाखे शशाङ्कलेखामनुवर्तते ।। अक ३।।

इस प्रकार के अन्य भी अनेक संदर्भ उद्धत किए जा सकते है जिनसे प्रतीत होता है कि काव्यो तथा नाटको का कर्त्ता कोई एक ही व्यक्ति था क्यो कि भावो वाक्यो तथा वाक्याशो का इतना अधिक साम्य अन्यथा संभव नही।

कवि के जीवन के सम्बन्ध मे ऊपर जो कुछ लिखा गया है वह केवल अनुमानो के आधार पर है। अतः उस पर सहृदय पाठको का मतभेद होना बिलकुल स्वाभाविक है प्रामाणिक सामग्री के अभाव मे इस प्रकार के अनुमान के सिवाय कोई अन्य उपाय न था जिसका सहारा हम लेते अतः आशा है कि पाठक इसके लिए क्षमा करेगे।

कालिदास का संयत शृङ्गार

1. साहित्य के दो भेद (क) श्रव्य (ख) दृश्य श्रव्य की अपेक्षा दृश्य की श्रेष्ठता।

भारतीय साहित्य-शास्त्र के आचार्यों ने काव्य के दो[1] प्रधान भेद किए है :—(१) दृश्य, (२) श्रव्य। दृश्य काव्य को रगमंच पर अभिनय द्वारा दिखलाया जा सकता है इसलिए उसे दृश्य कहते है। नाटक, प्रकरण, भाण, प्रहसन आदि इसके अनेक भेद हैं। खण्ड काव्य, महा काव्य, कथा तथा आख्यायिका आदि की गणना श्रव्य काव्यों में की जाती है। इनमे से दृश्य काव्य का महत्त्व बहुत अधिक माना जाता है क्योकि वह जीते जागते व्यक्तियो द्वारा उपस्थित किया जाता है। वह अधिक सजीव और यथार्थ होता है, सहृदय उसे आंख और कान—इन दोनो इन्द्रियो द्वारा ग्रहण करता है इसलिए उसका प्रभाव श्रव्य साहित्य की अपेक्षा कही अधिक तीव्र और स्थायी होता है। इसके विपरीत, श्रव्य साहित्य को केवल पढा या सुना ही जा सकता है, देखा नही। श्रव्य साहित्य हृदयपटल पर जिन चित्रो को अकित करता है वे मानसिक और क्षणिक होते है मूर्त्त और जीते जागते नही। पढ़ते समय सहृदय की कल्पना शक्ति उन्हे बनाती जाती है और अगला चित्र बनने से पूर्व ही पहला मिट जाता है। यह सभव है कि पुस्तक को पढ कर रख देने पर, उनमे से कोई ऐसा चित्र जिसका प्रभाव हम पर, अपेक्षाकृत गहरा पड गया हो, बारबार या देर तक हमारे मन मे मंडराता रहे और हमे आविष्ट किए रहे, तो भी उसका प्रभाव नाटक जैसा स्पष्ट नही हो सकता क्योकि नाटक देखते समय हम आत्म-विस्मृत होकर केवल प्रभाव ग्रहण कर रहे होते है जबकि पढते समय हमे दो कार्य करने पड़ते है—(१) कल्पना चित्र बनाना, (२) और उसका प्रभाव ग्रहण करना।

---

१. दृश्यश्रव्यत्वभेदेन पुनः काव्य द्विधा मतम्।
दृश्य तत्राभिनेयस्यात् ॥ सा० द० प० ६

इसलिए नाटक[1] आदि को श्रव्य काव्य की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ कहा गया है और कालिदास ने उसे देवताओ के नेत्रों को तृप्त करने वाला यज्ञ[2] कहा है।

२. दृश्य काव्य पर कुछ प्रतिवन्ध। रंग-मंच पर क्रूर तथा अशोभन शृंगार चेष्टा आदि के प्रदर्शन का निषेध

नाटक की इस प्रभावोत्पादक शक्ति का विचार करके ही आचार्यों ने उस पर कुछ प्रतिवन्ध लगा दिए[3] और युद्ध हत्या आदि अनेक क्रूर कार्यो तथा स्त्री-पुरुषो की उन प्रेम सम्वन्धी चेष्टाओ को रंग-मच पर निषिद्ध ठहरा दिया जिनका प्रदर्शन समाज में अशोभन समझा जाता है क्योकि अपरिपक्व विचारो के युवक युवतियो पर उनका अवांछनीय और हानि कारक प्रभाव पड़ जाना स्वाभाविक है। जिन बुराइयो की ओर मन की प्रवृत्ति स्वभाव से ही अधिक होती है, उन्हे यदि कला द्वारा आकर्षक बनाकर रगमंच या चित्रपट पर लाया जाए तो कुछ आश्चर्य नही कि उन्हे देखकर बच्चे भी वैसा ही करने लगे क्योकि वे तो बहुत कुछ अनुकरण द्वारा ही सीखते है। इसीलिए संस्कृत भापा के नाटककारो[4] ने उक्त व्यवस्था का पालन सावधानता से किया और अपनी रचनाओ मे ऐसे दृश्यो को स्थान नही दिया। किन्तु श्रव्य काव्यों के सम्वन्ध मे ऐसा नही हुआ।

---

१. काव्येपु नाटकं रम्यं, तत्र रम्या शकुन्तला।
तत्रापि च चतुर्थोऽक स्तत्रश्लोक चतुष्टयम्।

२. देवानामिदमामनन्ति मुनय: कान्त क्रतु चाक्षुषं,
रुद्रेणे दमुमाकृत व्यतिकरे स्वागे विभक्तं द्विधा।
त्रैगुण्योद्भवमत्र लोकचरितं नानाविध दृश्यते,
नाट्य भिन्नरुचेर्जनस्य बहुधाप्येक समाराधनम्। माल० अक १ पद्य ४

३. दूराह्वानवध्वो युद्धं राज्य देशादि विप्लव.।
विवाहो भोजन शापोत्सर्गो मृत्यू रतं तथा
दन्तच्छेद्यं नखच्छेद्यमन्यद् व्रीड़ा करं च यत्।
शयनाधरपानादि, नगराद्यवरोधनम्।
स्नानानुलेपनं चैभिर्वर्जितो नातिविस्तर।

सा० द० परिच्छेद ६ कारिका १६-१८ तक

४. वेणि सहार नाटक मे, भट्ट नारायण ने, दूसरे अक मे दुर्योधन तथा भानुमती के शृंगार का वर्णन करने मे इसकी कुछ उपेक्षा कर दी जिसके कारण समालोचक प्राचीन काल से उसकी भर्त्सना करते चले आ रहे है।

राजशेखर[1] ने लिखा है कि शृंगार रस की ललित अभिव्यंजनाओं से भरपूर कविता के क्षेत्र में कालिदास को कोई नहीं जीत सकता।

३. कालिदास ने अभिज्ञान शाकुन्तल में औचित्य की इस सीमा का उल्लंघन नहीं किया

(क) अनसूया का व्यवहार

कालिदास का शृंगार वर्णन अत्यन्त संयत, सुकुमार तथा सुरुचिपूर्ण है उसमें फूहड़पन व नग्नता का नाम नहीं। अभिज्ञान शाकुन्तल नाटक के प्रारंभ में ही हम "तब एक दिन वसन्त की छटा से सुहावने समय में उस (मेनका) के उन्मादक रूप को देख कर......" इतना कहते-कहते ही अनसूया को लज्जा से रुक जाते देखते हैं। बहुत संभव है कि कोई दूसरा कवि, यहीं पर, सहृदयों को शृंगार रस में एक अच्छी डुबकी लगवाने से न चूकता।

(ख) दुष्यन्त का व्यवहार

कण्व ऋषि के आश्रम में, शकुन्तला को देखते ही, राजा दुष्यन्त उसकी ओर आकृष्ट हो गए किन्तु उन्होंने विवेक को हाथ से न जाने दिया। उस समय की सामाजिक व्यवस्थाओं का ध्यान उन्हें बना रहा और उन्होंने उसके साथ अपने विवाह-सम्बन्ध के औचित्य का विचार करते हुए कहा :—

> निश्चय ही यह वरण योग्य है क्षत्रिय द्वारा,
> खिंचा क्योंकि इस ओर शुद्ध यह हृदय हमारा,
> साधु जनों को घेर कभी लेता यदि संशय,
> होता उन्हें प्रमाण हृदय का अपने निर्णय ॥ १ का २१ ॥

(ग) शकुन्तला का व्यवहार

बात चीत में, अपने विवाह की चर्चा छिड़ने पर, कुमारी सुलभ संकोच के कारण जब शकुंतला कुछ नाराज-सी होकर वहाँ से जाने लगी तो राजा उसे पकड़ते-पकड़ते एकदम रुक गए और मन ही मन कहने लगे :—

> पीछे जाते समय मुझे उस मुनि कन्या के,
> लिया विनय ने रोक बीच में सहसा आके।
> तनक हिली तक नहीं स्थान से मेरी काया,
> तो भी जाकर लौट यहाँ मानो फिर आया ॥ अंक १ पद्य २६ ॥

---

[1] एकोऽपि जीयते हन्त कालिदासो न केनचित्
शृंगारे ललितोद्गारे कालिदासत्रयी किमु ॥

राजा को देख कर शकुन्तला का हृदय भी उसके हाथ से निकल गया था और उसने मन ही मन कहा था "इन्हे देखकर, मेरे मन मे, न जाने क्यो ऐसी उथल-पुथल मच रही है जो इस तपोवन के निवासियो के योग्य नही।" दोनों सखियो ने भी उसके हृदय के इस विकार को ताड लिया था और कहा था कि 'शकुन्तला, यदि पिताजी यहा होते?" इससे आगे सारी बातचीत मे भी किसी के मुख से एक शब्द भी ऐसा नही निकला जिसे अशोभन या अश्लील कहा जा सके।

अभिज्ञान शाकुन्तल के प्रथम अक मे

शकुतला नाटक मे मुख्य रस शृगार[1] है जिसका स्थायीभाव अर्थात् मुख्य तत्त्व वह आकर्षण है जो युवक युवतियो मे एक-दूसरे के प्रति स्वभाव से ही हो जाया करता है। इस आकर्षण को रति[2] कहते है। रति के कारण हृदय मे होने वाले प्रथम विकार का नाम भाव[3] है जिसकी सूचना शकुतला के उक्त वाक्य[4] से मिलती है। और जब वह विकार सात्त्विक भाव आदि द्वारा कुछ उभर कर चेहरे आदि से प्रकट हो जाता है तो उसे हाव[5] कहते है जिसका आभास दुष्यन्त के—

बाते नही कर रही मुझसे भले ही,
दे कान किन्तु सुनती जब बोलता हूँ।
मेरे नही ठहरती यदि सामने तो,
अन्यत्र भी न इसके दृग देखते है॥ अक १ पद्य २९॥

इस वाक्य से मिलता है। दोनों प्रेमियों की इस प्रकार की सूक्ष्म चेष्टाओ से ही चतुर सखियों ने समझ लिया था कि दाल मे कुछ काला है और शकुन्तला पर ऊपर वाली मीठी चुटकी ली थी। यदि ये विकार अत्यधिक स्पष्ट हो जाएँ तो इन्हे हेला[6] कहा जाता है। नाटक के तीसरे अक मे उसकी जिस दशा का वर्णन

---

१. एक एवव भवेदङ्गी शृगारो वीर एव वा।
अगमन्ये रसा. सर्वे कार्यो निर्वहणेऽद्भुत·।

२ रतिर्मनोनुकूलेऽर्थेमनस प्रवणायितम्। साहित्य दर्पण परिच्छेद ३. कारिका १७६.

३. निर्विकारात्मके चित्ते भावः प्रथम विक्रिया। सा० द० परिच्छेद ३ का ९३

४. किनु खल्विमं प्रेक्ष्य तपोवन विरोधिनो विकारस्य गमनीयास्मि संवृत्ता।'

५ भ्रूनेत्रादि विकारैस्तु संभोगेच्छाप्रकाशक·,
भाव एवाल्प संलक्ष्य विकारो हाव उच्यते। ९४।

६ हेलाऽत्यन्त समालक्ष्यविकारः स्यात् स एवतु। ९५।

मिलता है वह हेला है। कवि ने प्रथम अंक में शकुन्तला के केवल भाव और हाव का ही वर्णन किया है हेला का नही।

जब राजा दुष्यन्त शकुन्तला से विवाह कर लेते हैं, उस से पहले तक वह कन्या[1] है। और कन्याएँ स्वभाव से ही लज्जाशील हुआ करती हैं। आयु की दृष्टि से वह मुग्ध[2] नायिका है। मुग्धा के शरीर में यौवन के चिह्न प्रकट हो जाते हैं और वह काम विकारों को भी अनुभव करने लगती है। वह पतिसमागम

---

१. 'कन्या त्वजातोपयमा सलज्जा नवयौवना' अर्थात् वह नवयुवति कन्या कहलाती है जिसका विवाह न हुआ हो और वह लजोली होती है।
सा० दर्पण परिच्छेद कारिका ६७.

२. "प्रथमावतीर्ण यौवन मदन विकारा, रतौवामा कथिता मृदुश्चमानेसमधिक लज्जावती मुग्धा।" प्रर्थात् जिसमे यौवन तथा मदन के विकार प्रकट होने लगते है किन्तु वह पति समागम मे सकोच करती है, मान करना नहीं जानती और विशेष लज्जाशील होती है उसे मुग्धानायिका कहते हैं।
सा० द० परिच्छेद ३. कारिका ५८

मुग्धा के उदाहरण, (क) दृष्टादृष्टिमधोददाति कुरुतेनालाप माभाषिता। शय्यायां परिवृत्य तिष्ठति बलादालिंगिता वेपते। निर्यान्तीषु सखीषु वास भवनान्निर्गन्तुमेवेहते, जाता वामतयैव सप्रति मम प्रीत्यनवोढावधू:॥
(ख) असंमुखालोकन माभि मुख्यं निषेध एवानुमति प्रकार:
प्रत्युत्तरं मुद्रण मेव वाचो नवांगनानां नव एव पन्था:॥ इनके साथ शकुन्तला के उस व्यहार की तुलना कीजिए जिसका वर्णन निम्नलिखित पद्यों मे कालिदास ने किया है :—

(क) वाच नमिश्रयति यद्यपि मद्वचोभि:
कर्ण ददात्यभि मुखं मयि भाषमाणे।
कामं न तिष्ठति मदानन संमुखीना
भूयिष्ठ मन्य विषया नतु दृष्टि रस्या:॥ शाक-अंक १ पद्य २७

तथा

(ख) अभिमुखे मयि संहृतमीक्षितं
हसित मन्यनिमित्त कृतोदयम्।
विनय वारित वृत्तिरतस्तया
न विवृतो मदनो न च संवृत.॥ शाक २ कारिका १२

में सकुचाती है, मान करना नहीं जानती तथा अत्यन्त लजीली होती है। अपने मित्र माढव्य से शकुन्तला के भोलेपन, विनय तथा इस लजीले पन की चर्चा करते हुए दुष्यन्त कहते हैं:—

"मुझे सामने देख झुकाली आँख लजीली,
की कुछ अन्य निमित्त बना मुस्कान रसीली,
उभर रहा था काम विनय से उसे दबाया,
प्रकट न होने दिया, नहीं वह छिप ही पाया॥" २ का १२

इस लज्जा तथा संकोच के कारण ही उसने अपने मन की बात अभिन्न-हृदया सखी अनसूया तथा प्रियंवदा को भी तब तक खोल कर नहीं कही, जब तक उन्होंने ही उसकी व्याकुलता को देख और चिन्तित हो इस सम्बन्ध में सीधा प्रश्न नहीं कर लिया। उनके पूछने पर भी वह, "सखियो तपोवन के रक्षक वे राजर्षि जब से इन आँखों में आ बसे हैं...." कहती कहती बीच में ही चुप हो गई।

अभिज्ञान शाकुन्तल के तीसरे अंक में शकुन्तला

तीसरे अंक में कवि ने शकुन्तला की उस प्रेम दशा का चित्रण किया है जिसे 'पूर्व राग'[1] कहते हैं। इसमें परस्पर दर्शन आदि से उत्पन्न अनुराग इतना उत्कट हो जाता है कि प्रेमी एक दूसरे से मिलने के लिए नितान्त आतुर हो उठते हैं। शकुन्तला की इस आतुरता को देख और ठीक कारण को जान कर सखियाँ उसे राजा के नाम एक प्रेमपत्र लिखने को कहती हैं किन्तु उसी संकोच के कारण वह लिखना नहीं चाहती। अन्त में पत्र लिखा जाता है और वह ठीक बना है या नहीं यह जानने के लिए, शकुन्तला उसे पढ़कर सखियों को सुनाती है:—

काम यह तपा रहा दिन रात—
पड़ी तुम्हारे प्रेम जाल में, निर्दय, मुझ अबला के गात।
नहीं जानती किन्तु तुम्हारे कुछ भी कठिन हृदय की बात॥

इस पर राजा, जो पास ही छिप कर सुन रहे थे, सहसा प्रकट होकर कहते हैं:—

काम यह तपा रहा दिन रात,—
तुम को तो केवल सुकुमारी, जला रहा मेरे तो गात।
नहीं कमुदिनी पर दिन करता है जैसा विधु पर आघात॥

शाकु० अंक ३ के १५, १६ पद्य

---

१. श्रवणा द्दर्शना द्वापि मिथः संरूढरागयो।
दशाविशेषो योऽप्राप्तौ पूर्वराग. स उच्यते।

सखियों के आग्रह पर राजा शकुन्तला के निकट, पत्थर की उसी पटिया पर बैठ जाते हैं और अगली सारी बात चीत राजा तथा सखियों के बीच मे ही चलती है। शकुन्तला तो प्रसग आने पर, एक बार, केवल इतना ही कहती है कि ये तो अपने अन्तः पुर की रानियो के विरह से विकल हो रहे है, तुम वृथा ही क्यों इनके सिर होती[1] हो ?' इसी समय आश्रम का पालतू मृगछौना उधर आ निकलता है उसे उसकी मा से मिलाने का बहाना बना दोनों सखियां वहाँ से चंपत हो जाती है, और केवल राजा तथा शकुन्तला ही वहाँ रह जाते है तो भी रंग मंच पर उनकी कोई वातचीत या व्यवहार ऐसे नही होते जिन्हे अशोभन या अनुचित कहा जा सके। उस एकान्त मे राजा ज्यो ही शकुन्तला का चुम्बन करना चाहते हैं त्योही माता गौतमी की आवाज सुनाई पड जाती है और मामला वही रुक जाता है। यह है शाकुन्तल नाटक के तीसरे अंक का सामान्य दिग्दर्शन। इसमें कालिदास ने अत्यन्त संयत श्रृंगार का चित्रण किया है इससे कोई भी असहमत नही हो सकता।

अभिज्ञान शाकुन्तल के एक संस्करण में अनुचित मिश्रण

किन्तु अभिज्ञान शाकुन्तल के एक अन्य[2] संस्करण में उसी शकुन्तला का जो व्यवहार दिखलाया गया है वह मुग्धा नायिका के अनुरूप न हो कर सहसा मध्या या प्रगल्भा का सा हो गया है। वह कन्या सुलभ शील सकोच को एक दम तिलांजलि देकर शोख बन जाती है और पहले कही गई कुछ अटपटी बातो के लिए सखियो को राजा से क्षमा याचना के लिए कहती है तथा उनके साफ इन्कार कर देने पर स्वयं ही कहती है, "हमारे इस अपराध को महाराज मन मे न लाएँ, क्योकि किसी के पीठ-पीछे भला कौन क्या नही कह डालता।" इस पर राजा भी मुसकरा कर शरारत से कहता है "तुम्हारे इस अपराध को हम तभी क्षमा कर सकते है जब तुम हमें अपना साजन बनाकर, फूलों की इस सेज पर अपने साथ आराम करने की अनुमति

---

१. शकुन्तला–(प्रियंवदा मालोक्य) हला, किमन्त पुर विरह पर्युत्सुकस्य राजर्षे रुपरोधेन ? अभिज्ञान शाकुतल्व अक ३, पद्य १६ से आगे।

२. कलकत्ता वाला पाठ

दो[1] ।" नाटक का पाठक जानता है कि कुज मे प्रकट होते ही राजा पहले ही उस पटिया पर बैठ गया था जिसकी चर्चा यहाँ की गई है अत. राजा का यह मजाक कुछ तो अनावश्यक है और कुछ भद्दा । और जब इस पर प्रियवदा यह ठिठोली करती है "ये इतने से ही सतुष्ट हो जाएँगे ?" तब शकुन्तला आँखे तरेर कर उसे डाटती है "अरी ओ ढीठ मेरा यह हाल है और तुझे मज़ाक सूझ रहा है ?"[2]

इसी समय, अचानक वहाँ आ पहुँचे मृग छौने को उस की मा से मिलाने का बहाना बना दोनो सखिया निकल जाती है और उनके पीछे जा रही शकुन्तला को राजा बल पूर्वक रोक लेता है । उक्त सस्करण मे इससे आगे का भी सारा दृश्य बेमेल तथा, अशोभन तो है ही, साथ ही उसमे शकुन्तला का जो व्यवहार दिखलाया गया है वह मुग्धा नायिका का नही हो सकता अतः उसमे प्रकृति-विपर्यय नामक रस दोष भी सहृदयो को खटकता है। शकुन्तला एक बार बाहर जाकर फिर अपने आप ही उस कुंज में राजा के पास लौट आती है और उससे मृणाल का वह ककण मागती है जो उसके हाथ से खिसक कर गिर गया था । राजा उसे अपने साथ बिठा लेता है और उसका हाथ अपने हाथ मे लेकर, रसीली बाते बनाता हुआ, बहुत देर तक कडा पहनाने का ही बहाना करता रहता है और अन्त मे कहता है, सुन्दरी देखो तो, हमने यह कैसा पहनाया है ?' इस पर शकुन्तला नखरे से कहती है कि "कान मे लगाए फूल की धूल

---

१. शकुन्तला—हला, मर्षयत लोकपालम्, यदस्माभिर्विस्रब्धप्रलापिनीभि. उपचारातिक्रमेण भणितम् ।

सख्यौ—(सस्मितम् ।) येन तन्मन्त्रित स एव मर्षयतु, अन्यस्य क अत्ययः ?

शकुन्तला—अर्हति खलु महाराज इम विषोढुम् । परोक्ष वा न कि को मन्त्रयति ?

राजा—(सस्मितम्) अपराध निम ततः सहिष्ये
यदि रम्भोरु तवाङ्गसङ्गमृष्टे
कुसुमास्तरणे क्लमापहेऽत्र
स्वजनत्वा दनुमन्यसेऽवकाशम् ।।

२ प्रियंवदा—(सोपहासम्) ननु एतावता पुनस्तुष्टो भविष्यति ?

शकुन्तला—(सरोषमिव) विरम विरम दुर्विनीते । एतावदवस्था गतया मया क्रीडसि ?

के पड़ जाने से मेरी आँखे किरकिरा रही है, इसलिए मुझे तो कुछ दीखता नहीं।" राजा फूंक मार कर उस धूल को निकालने का प्रस्ताव करता है और शकुन्तला उसे स्वीकार कर लेती है किंतु कहती है कि "मुझे डर है तुम इस बहाने आगे न बढ जाओ।" राजा विश्वास दिलाता है कि ऐसा न होगा और शकुन्तला का मुँह उभार कर अपने मुँह के पास ले आता है। शकुन्तला पूछती है कि "यह तुम क्या कर रहे हो?" तो राजा उत्तर देता है हमे यही पता नहीं चल रहा कि कौन सा फूल है और कौन सी तुम्हारी आँख।' और तब फूंक मार कर वह उसकी आँख को ठीक कर देता है। स्वस्थ होकर शकुन्तला राजा के प्रति

---

१. शकुन्तला—अतः परं न समर्थास्मि विलम्बितुम्।
भवतु, एतेनैव अपदेशेन अत्मान दर्शयामि (इत्युपसर्पति)
राजा—(दृष्ट्वा सहर्षम्) अये जीवितेश्वरी मे प्राप्ता,
परिदेवनानन्तरं प्रसादेनोपकर्तव्योऽस्मि खलु देवस्य।
पिपासाक्षामकण्ठेन याचितं चाम्बु पक्षिणा।
नवमेघोज्झिता चास्य धारा निपतिना मुखे ।।
शकुन्तला–(राज्ञ. सम्मुखे स्थित्वा) आर्य, अर्धपथे स्मृत्वा एतस्य
हस्त भ्रंशिनो मृणालवलयस्यकृते प्रतिनिनिवृत्तास्मि;
कथित मे हृदयेन, त्वयागृहीतमिति। तन्निक्षिप एतत्
मा माम्आत्मान च मुनिजनेपु प्रकाशयिप्यसि।
राजा—एकेन अभिमन्त्रिना प्रत्यर्पयामि।
शकुन्तला—केन पुनः?
राजा—यदीदमहमेव यथास्थान निवेशयामि।
शकुन्तला—आःका गतिः। भवतु एतत् तावत् (इत्युपसर्पति।)
राजा—इतः शिला तलैकदेशं सश्रयावः। इत्युभौ परिक्रम्योपविष्टौ।)
राजा—(सव्याजं विलम्ब्य मृणालं प्रतिमोच्य) सुन्दरि दृश्यताम्।
शकुन्तला—नतावदेन प्रेक्षे, पवनकम्पित कर्णोत्पल रेणुना कलुपिता मेदृष्टिः
राजा—(सस्मितम्) यद्यनुमन्यसे, तदहमेनां
वदन मारुतेन विशदा करवाणि?
शकुन्तला—तत. अनुकम्पिता भवेयम्।
किन्तु पुनरहं न ते विश्वसिमि। इत्यादि।

कृतज्ञता प्रकट करती है और कहती है, "मैं आप का कुछ भी प्रिय न कर सकी अत: लज्जित हूँ।" राजा उत्तर देता है कि तुम्हारा यही उपकार बहुत है कि हमने तुम्हारे सोंधे मुँह का मधुर गन्ध तो सूँघ लिया। देखो, भौंरा भी कमल के गन्ध मात्र से संतुष्ट हो जाता है। इसपर शकुन्तला पूछती है, "यदि वह संतुष्ट न हो तो क्या करे ? तब राजा उसके मुँह को चूमने का यत्न करता हुआ कहता है, "यह" इत्यादि। जिस कवि ने अन्यत्र (मालविकाग्नि मित्र नाटक में) प्रौढ़ आयु के नये दुल्हे को भी शरमाने वाला कहा है उसकी मुग्धा नायिका से कोई सहृदय ऐसे व्यवहार की आशा नहीं कर सकता। इस व्यक्तिक्रम का कारण संभवत: यह प्रतीत होता है कि कालिदास के नाटक जनता में अधिक सर्व प्रिय थे और वे रंगमंच पर भी प्राय: खेले जाते थे। कभी किसी नाटक मण्डली के अनुरोध पर, ऐसे प्रसंगों को और भी अधिक मनोरंजक एवं साधारण जनता की रुचि के अनुकूल बनाने के लिए, इस प्रकार के अंश उनमे जोड़ दिए गए। बंबई वाले संस्करण में ये अंश नहीं उपलब्ध होते। उसके अनुसार सखियों के साथ जा रही शकुन्तला को राजा ने रोक तो लिया था किन्तु उसके "पौरव, शील का कुछ तो ध्यान रक्खो, भले ही मैं काम से पीड़ित हूँ पर स्वतन्त्र नहीं हूँ।" इस वाक्य ने राजा पर जो अंकुश लगा दिया था उसने उसके व्यवहार को फिर कभी उच्छृंखल नहीं होने दिया।

कालिदास के विप्रलम्भ शृंगार में संयम

कालिदास ने संभोग[1] शृंगार के वर्णन में जिस संयम तथा मर्यादा का परिचय दिया है वह उसके विप्रलम्भ[2] शृंगार वर्णन में भी पाया जाता है। अभिज्ञान शाकुंतल के छठे अंक में अँगूठी मिल जाने पर राजा को शकुंतला की सुध आती है और वे उसके वियोग

---

१. शृंगं हि मन्मथोतद्भेदस्तदागमन हेतुक:
उत्तम प्रकृति प्रायो रस: शृंगार उच्यते।
आलंबनं नायिका स्युर्दक्षिणाद्या श्च नायका:।
चन्द्रचन्दनरोलम्बरुता ऽऽद्युद्दीपनं मतम्।
भ्रूविक्षेप कटाक्षादि रनुभाव: प्रकीर्त्तित:।
त्यक्त्वौग्रय मरणालस्य जुगुप्सा व्यभिचारिण:।
स्थायि भावो रति:, श्यामवर्णोऽयं विष्णु दैवत.॥
सा० द० परिच्छेद ३ कारिका १८३-१८६

२. संयुक्तयोस्तु संभोगो विप्रलम्भो वियुक्तयो:। सा० द० परिच्छेद ३ कारिका

में विकल हो जाते है। उन्हें अधिक पश्चात्ताप अपने उस दुर्व्यवहार पर होता है जो उन्होंने अपनी निर्दोप तथा असहाय गर्भवती पत्नी के प्रति किया था। वे कहते है :—

"ठुकराई गई मुझ से जव वेवस साथियों की वह ओर वढी,
'रुकजा' कह के गुरु से गुरु शिष्य ने दी उसको फटकार कड़ी,
छलके जल के कण लोचनों में, इस निष्ठुर को वह दूर खड़ी—
तकती रही, दृष्टि जलाती मुझे, उसकी है विपैली अणी सी गड़ी ।।
॥अंक ६ पद्य ९॥

कसा यथार्थ किन्तु मार्मिक चित्रण है यह ? इसमें अनुभावों की अतिशयोक्ति द्वारा कल्पना के वे चमत्कार और कलाबाजियाँ नहीं दिखाई गई जिनमें विरहिणी के ऊपर छिड़का गया गुलाव जल विरहाग्नि से जलकर बीच मे भाप बनकर उड़ जाता[1] है, या विरहिणी अपनी आहों की झोंक में ६, ७ हाथ इस प्रकार आगे पीछे, चली जाती है, मानों हिंडोला[2] झूल रही है और सखियाँ स्नेहवश जाडों की ठंडी रातों में भी गीले कपडों की आड करके किसी प्रकार उसके पास पहुँच[3] पाती हैं। हिन्दी के एक अन्य कवि वियोगिनी की आह का वर्णन करते हुए इससे भी आगे वढ गये है। वे लिखते है :—

"शंकर नदीनद नदी सन के नीरन की
भाप वन अंवर में ऊँची चढ़ जायगी,
दोनों ध्रुव छोरन लों पल में पिघल कर,
घूमघूम धरनी धुरी सी वढ़ जायगी,
झारेगे अँगारे ये तरनि तारे तारापति,
जारेगे खमण्डल मे आगमढ़ जायगी,
काहू विधि विधि की वनावट वचेगी नाहि,
जोपैवा वियोगिनी की आह कढ़ जायगी ।।

---

१. औंधाई सीसी सुलखि, विरह वलति विललात।
वीचहि सूखि गुलाव गो, छीटो छुई त गात ।।
२. इत आवत, चलिजातउत, लगी छ सातिक हाथ।
चढी हिंडोरे सी रहै, लगी उसासन साथ ।।
३. आडे दे आले वसन, जाड़े हूँकी रात ।
साहसकै कै नैह वस, सखी सवै ढिग जात ।।

भवभूति के विरह वर्णन मे अत्युक्ति

संस्कृत के सहृदय कवि भवभूति भी विरह वर्णन मे इस अत्युक्ति से न बच सके। उत्तर रामचरित के तीसरे अक मे श्रीराम की वियोग दशा का वर्णन करते हुए वे लिखते है :—शोक के आघात से हृदय जर्जर हुआ जा रहा है किन्तु दो टुकडे नही हो जाता। व्याकुल देह रह-रह कर मोह-मग्न हो जाता है एक बार ही चेतना नही खो बैठता। विरह की आग मुझे भीतर ही भीतर जला रही है, किन्तु राख नही बना देती। मर्मच्छेदी विधाता चोट पर चोट कर रहा है पर जान नही ले लेता। हे देवि, हाय! हाय! हृदय फटा जा रहा है, शरीर का अग-अग टूक-टूक हुआ जाता है। ससार सूना हो गया। मै भीतर ही भीतर आग की ज्वालाओ से जल रहा हूँ, अँधकार मे डूबा जा रहा हूँ, पर कही सहारा नही मिलता। मूर्च्छा मुझे चारो तरफ से घेरती आ रही है। मै अभागा अब क्या करूँ ?"

इसके साथ कालिदास के सयत विरह वर्णन की तुलना करके देखिए —

"कुछ भी सुहावना न लगता है, सचिवो के
साथ मिल पहले सा करते न काम काज,
बदल-बदल कर करवटे काटते है,
सारी रात जागते ही सेज पर महाराज,
चाहते है उचित जवाब देना रानियों को,
करते हुए वे जब उनका बडा लिहाज,
भूल से शकुन्तला का नाम है निकल जाता,
और उठता न सिर देर तक मारे लाज ॥
शाकु० अक ६ पद्य ५

---

१. दलति हृदय शोकोद्वेगाद् द्विधा तुनभिद्यते,
वहति विकल कायो मोहं नमुंचति चेतनाम्
क ज्वलयति तनूमन्तर्दाहः करोति न भस्मसात्,
प्रहरति विधिर्मर्मच्छेदी न कृन्तति जीवितम् ॥
उत्तर राम च० अंक ३ पद्ध. ३१

ख हाहादेवि, स्फुटति हृदयं, ध्वसने देहबन्धः,
शून्यंमन्ये जगदविरल ज्वालन्मन्तर्ज्वलामि ।
सीदन्तन्धेतमसि विधुरो मज्जतीवान्तरात्मा,
विष्वङ्मोहः स्थगयति कथं मन्दभाग्य. करोमि ॥ पद्य ३८

अभिज्ञान शाकुन्तल के इस पद्य में तथा इससे अगले में भी प्रेम रोगियों की चिन्ता, कृशता, अरुचि, निद्रा नाश आदि दशाओं[1] का वर्णन करते हुए भी कवि ने राजा को अपने कर्त्तव्य कर्मों से विमुख नहीं दिखलाया। शंकर कवि की वियोगिनी की तरह राजा की आहों से विधाता की सृष्टि के ही मलियामेट हो जाने या मीर तकी की तरह उनसे आसमान में सूराख पड़ जाने के वर्णन की तो बात ही क्या? मीर तकी की उक्ति देखिए :—

"तारे तो ये नहीं, मेरी आहों से रात की,
सूराख पड़ गए हैं तमाम आसमान में।"

नैषधीय चरित में दमयन्ती के विरह वर्णन में तथा श्री मैथिलीशरण गुप्त जी के उर्मिला—विरह वर्णन में भी इसी परम्परा का दर्शन होता है।

काव्य में अतिशयोक्ति की आवश्यकता

यथार्थ प्रभाव उत्पन्न करने के लिए, चित्रपट पर किसी वस्तु को अपने वास्तविक आकार से कुछ बड़े रूप में रखना पड़ता है क्योंकि यदि किसी फूल, तितली, मक्खी या मानव को वहाँ उनके वास्तविक आकार में दिखलाया जाय तो उनमें से कितनी वस्तुओं को तो दर्शक संभवतः देख ही न सकें, और जिन्हें देखें भी उन्हे वास्तविक न समझकर केवल कुछ धब्बे, या छोटे-छोटे अस्पष्ट चित्र मात्र समझे। इससे प्रकट है कि चित्रपट पर किसी वस्तु या व्यक्ति को, दर्शकों के लिए वास्तविकता प्रदान करने के निमित्त कुछ बड़ा करना पड़ता है। उसे कितना बड़ा किया जाए इसका निर्णय कलाकार की सूझबूझ ही कर सकती है, उसके लिए कोई एक बौद्धिक फार्मूला नहीं

---

१. संभोगो विप्रलम्भश्च द्विधा शृंगार उच्यते।
संयुक्तयोस्तुसंभोगो विप्रलम्भो वियुक्तयोः।
पूर्वानुराग मानाख्य प्रवासकरुणात्मना
विप्रलम्भश्चतुर्धास्त्रि, प्रवासतस्य च त्रिधा।
कार्यतः संभ्रमाच्छापा दस्मिन् काव्येतु शापतः।
प्राग संगतयोर्यूनोः सतिपूर्वानुरंजने
चक्षुः प्रीत्यादयोऽवस्था दश स्यु स्युस्तसो यथा—
दृङ्मनःसंग, संकल्पाः जागरः, कृशताऽरुचिः,
ह्रीत्यागोन्माद मूर्च्छान्ता इत्यनंग दशा दश॥

उत्तर मेघ में ३० वें पद्यकी टीका में मल्लिनाथ

बनाया जा सकता । साहित्य मे यही कार्य उपमा, रूपक, अतिशयोक्ति, उदात्त आदि अलकार किया करते है । लंकाकाण्ड मे तुलसीदास ने लिखा है :—

अङ्गद दीख दशानन वैसा । सहित प्राण कज्जल गिरि जैसा ।
भुजा विटप शिर शृंग समाना । रोमावली लता विधि नाना ।
मुख नासिका नयन अरु काना । गिरि कन्दरा खोह अनुमाना ।

इन चौपाइयो मे रावण की समता किसी काले पर्वत से की गई है इसे पढ कर पाठक के हृदय पर यही प्रभाव पडता है कि रावण साधारण मानवो की अपेक्षा बहुत विशाल था । इसी प्रकार यदि किसी बहुत मोटे मनुष्य को हाथी ही कह दिया जाय, तो सुनने वाले को एक क्षण के लिए भी यह धोखा नही लगता कि वह सचमुच हाथी है । ऐसे स्थलो पर 'मोटा मनुष्य' रूपी विषय को 'हाथी' रूपी विषयी निगल सा जाता है इसे ही अतिशयोक्ति अलकार कहते है। जब इस प्रकार की अतिशयोक्ति का सहारा कविता मे लिया जाता है तो उसके प्रयोग से श्रोता का चित्त आनन्द से चमत्कृत हो जाता है । यदि यह अतिशयोक्ति उचित अनुपात से बढ जाए तो वह चमत्कार को तो उत्पन्न कर सकती है, रसानुभूति को नही, जैसा कि ऊपर उद्धृत बिहारी या शकर कवि की उक्तियो मे देखा जाता है । जब वह अतिशयोक्ति या अत्युक्ति इससे भी अधिक बढ जाती है तो रसानुभूति तो बहुत दूर, चमत्कार को भी उत्पन्न नही कर सकती, जैसा कि 'मक्षिका पादघातेन चकम्पे भुवनत्रयम् ।' अर्थात् मक्खी के पैर की चोट से त्रिलोकी काँप उठी । अतः रस का परिपाक करते समय इसका विशेष ध्यान रखना चाहिए कि रस के विभाव अनुभाव संचारी का परिवर्धन मर्यादा के भीतर ही किया जाए, जैसा कि कालिदास ने किया है ।

उर्दू के एक कवि ने अपह्नुति अलङ्कार द्वारा विरही प्रेमी के शरीर की जलन से नदी मे छाले पड़ जाने का वर्णन किया है और कहा है कि वे छाले ही बुलबुले मालूम होते है । देखिए :—

आॅवले पड़ गए दरया मे, नही है ये हुवाव ।
आशना जलके मगर आपका डूबा कोई ।।

इस प्रकार की सूक्तियों मे कल्पना की कलाबाज़ी तथा उक्ति की विचित्रता का चमत्कार ही विशेष होता है जिससे मस्तिष्क मे एक प्रकार की गुदगुदी सी हो जाती है और सुनने वालो के मुंह से अनायास ही निकल पड़ता है कि 'क्या खूब कहा !'

किंतु ये सूक्तियाँ हृदय में उथल-पुथल मचाकर शृंगार, करुण या वीर रस की गहरी अनुभूति को उत्पन्न नहीं कर सकतीं। नदी में छाले पड़ जाने का वर्णन पढ़ कर शायर की कलम चूमने को मन भले ही करे पर डूब मरने वाले प्रेमी के प्रति सहानुभूति तो रत्ती भर भी उत्पन्न नहीं होती, क्योंकि इनमें अलंकार आदि प्रबल होकर रस को दबा लेते हैं। इसीलिए आचार्य आनन्द वर्धन ने शृंगार रस में अलंकारों का प्रयोग करते समय कवि को विशेषतया सावधान रहने का उपदेश दिया है और अनुप्रास तथा यमक का तो प्रायः निषेध ही कर दिया है।

विक्रमोर्वशीय में संयत शृंगार

कालिदास का दूसरा नाटक विक्रमोर्वशीय है, इसके नायक चन्द्रवंशी राजा पुरुरवा तथा नायिका स्वर्ग की अप्सरा उर्वशी है। कालिदास के ग्रन्थों को पढ़ने से पता चलता है कि उस समय भारतीय आर्य किसी दूसरी जाति के निकट संपर्क में आ रहे थे जिससे उनके रहन सहन तथा व्यवहार में भी कुछ अन्तर पड़ रहा था। इस नाटक के पहले अंक में राजा पुरुरवा गन्धर्वराज चित्ररथ का अभिनन्दन करने के लिए उनसे हाथ[1] मिलाते हैं, नमस्कार नहीं करते। उन दिनों राजाओं की अङ्गरक्षक कोई यवन[2] नारियाँ हुआ करती थीं। ये यवन कौन थे—यहाँ इस प्रश्न का अन्तिम निर्णय अभीष्ट नहीं। केवल यही तात्पर्य है कि उनका सम्बन्ध किसी विदेशी जाति से अवश्य था। उर्वशी का चित्रण करते समय भी कवि की दृष्टि में कोई विदेशी सुन्दरी रही होगी क्योंकि वह उद्दाम प्रवृत्तियों वाली नारी है और उसमें भारतीय ललनाओं की सी लज्जा तथा संकोच का अभाव है इसका प्रमाण नाटक के प्रथम अङ्क में ही मिल जाता है जब वह रथ का झटका लगने के बहाने, राजा के शरीर से चिपट[3] जाती है। फिर दूसरे अङ्क में वह अभिसारिका बनकर पुरुरवा से मिलने के लिए चित्रलेखा के साथ जाती है, और उस द्वारा यह पूछे जाने पर 'तुम

---

१. राजा—अये गन्धर्वराजः ? (रथादवतीर्य।) स्वागतं प्रिय सुहृदे।
(परस्परं हस्तौ स्पृशतः।)

२. "एष बाणासन हस्ताभिर्यवनीभिर्वन पुष्पमाला धारिणीभिः
परिवृतः इत एवागच्छति प्रियवयस्यः।" शकुन्तला—
अंक २ के प्रारम्भ में। (विदूषक का वाक्य)

३. उर्वशी रथावतार क्षोभं नाटयन्ती सभयं राजानमवलम्बते॥
विक्र० अंक १. पृ० ११२

इस तरह, बिना लक्ष्य ही कहाँ जा रही हो'? कहती है, "उस दिन हेमकूट पर्वत के शिखर पर लता की शाखा मे उलझ गई माला को छुड़ाने मे मुझे कुछ देर लग गई थी और तुमने मुझ पर चुटकी ली थी, फिर भी पूछती हो कि बिना लक्ष्य कहाँ जा रही हूँ।" तब सखी द्वारा सावधान किये जाने पर कहती है, "जब स्वय कामदेव मुझे राह दिखा रहे है तब सोच ने समझने की बात ही क्या ? इसलिए आज तो शरम को भी एक तरफ़ रख मैने यही ठान लिया है," और इस पर सखी निरुत्तर[1] हो जाती है। तीसरे अक मे, इन्द्र सभा मे खेले जा रहे एक नाटक मे वह लक्ष्मी का अभिनय करने के लिए रगमच पर आती है। किन्तु तब भी अपने प्रेमी के ध्यान मे इतनी डूबी हुई है कि नाटक के अनुसार वह 'पुरुपोत्तम' न कह कर 'पुरुरवा' कह बैठती है जिस पर उसे नाट्याचार्य भरत के शाप के कारण स्वर्ग से गिरना पडता है। वहाँ से निकल कर वह राजा पुरुरवा के निवास स्थान पर आती है और मनोविनोद के लिए पीछे से राजा की आँखे अपने हाथो से ढक[2] लेती है। चौथे अंक मे वह राजा के साथ विहार के लिए गधमादन पर्वत के उद्यानो मे जाती है और वहाँ भी अपनी उद्दाम प्रवृत्ति के कारण स्वामी कार्त्तिकेय के शाप से लता[3] बन जाती है। पाँचवे अंक मे हम देखते है कि वह पति समागम सुख के लिए, सतान के

---

१. चित्रलेखा—क्वेदानीमनिर्दिष्ट कारणं गम्यते ?

उर्वशी—सखि, तदा हेमकूट शिखरे लताविटपेन
क्षणविघ्निता काशगमनां मामुपहस्य
किमिदानी पृच्छसि क्व गम्यते इति ।

चित्रलेखा—किनुखलु तस्य राजर्षे पुरुरवस. सकाश प्रस्थितासि ?

उर्वशी—अथ किम् । अय मे अपहस्तित लज्जो व्यवसाय: ।।

चित्रलेखा—तथापि स्वयमेव साधु संम्प्रधार्यताम् तावत् ।

उर्वशी—सखि मदन. खलुयमा नियोजयति। किन्न सम्प्रधार्यते ?

चित्रलेखा—अत पर नास्ति मे वचनम् ।।

विक्रमो० अंक २ पृ० १२२-१२३

२. अक ३ का विष्कम्भक पृ० १३५।

देव्यादत्तो महाराज अतोऽस्य प्रणयवतीव शरीर सपर्क गतास्मि

३. अक ३ पृ० १४५ मा खलुमा पुरोभागिनी समर्थयस्व पृ० १४६।

प्रति अपने कर्त्तव्य से बिलकुल विमुख हो जाती है।[१] ऐसी स्त्री को नायिका बनाकर भी कवि ने इस नाटक में रंगमंच पर किसी प्रकार का मर्यादा भंग ही नहीं होने दिया किन्तु उससे वैरुप्य दिखला कर बड़ी रानी काशीराजपुत्री के संयम त्याग तथा आत्म समर्पण को अधिक समुज्वल बना दिया।

मालविकाग्निमित्र में संयत शृंगार

कवि का तीसरा नाटक मालविकाग्निमित्र है। नाटकों में यह उसकी प्रथम कृति है क्योंकि इसी में उसने अपना परिचय अभिनव कवि के रूप में देकर भास, आदि प्रसिद्ध नाटककारों की रचनाओं के सामने, समाज में अपने नाटकों के सम्मान के विषय में कुछ सदेह प्रकट किया है। इस नाटक का विषय विदिशा के राजा अग्निमित्र तथा विदर्भ की राजकुमारी मालविका की प्रेम गाथा है। यद्यपि राजा वीर शासक है तथापि यहाँ उसका चित्रण उस धीर ललित नायक के रूप में हुआ है जिसका सारा समय नाच गान तथा प्रेम लीलाओं में व्यतीत हो जाया करता है।

विदर्भ के राज परिवार में उन दिनो कुछ कलह चल रहा था। बड़े भाई यज्ञसेन के साले मौर्य सचिव को अग्निमित्र ने बन्दी बना लिया था किन्तु छोटा भाई माधवसेन अपनी बहिन मालविका का विवाह उसके साथ करना चाहता था और इसी प्रयोजन से उसने अपने मन्त्री सुमति के साथ उसे विदिशा भेजा था, किन्तु मार्ग मे ही डाकुओं के एक दल ने उन पर आक्रमण कर दिया जिसमें सुमति मारा गया और मालविका उनके हाथ पड़ गई। डाकुओं का सामना जब अग्निमित्र के साले वीरसेन से भी हुवा तब वे भाग गए तब मालविका को अत्यन्त सुन्दरी देख वीरसेन ने उसे दासी बनाकर अपनी बहिन महारानी धारिणी के पास भेज दिया जहाँ वह प्रच्छन्न रूप से अपनी विपत्ति के दिन काटने लगी।

राजा ने एक दिन किसी चित्र मे उसे रानी के पास खड़ी देख लिया और उस पर लट्टू हो गया। राजा की इच्छा उसे साक्षात् देखने की हुई तो राजा के मित्र विदूषक ने एक योजना तैयार की कि दरबार के उन प्रधान दो नाट्याचार्यो की परीक्षा होनी चाहिए जो राज्य से भारी वेतन पाते है। निश्चय हुआ कि दोनों आचार्य अपनी एक-एक शिष्य का नाट्य राजा के सम्मुख प्रस्तुत करें। महारानी ने बहुत टालमटोल की कि मालविका राजा के सामने न आए किन्तु

---

५ ततो मया महाराज वियोग भीतया जातमात्र एव ··

आर्यायाः सत्यवत्या हस्तेऽप्रकाशं निक्षिप्तः। विक्रमा० अंक ५ पृ० १७८

उसकी एक न चली और अन्त मे मालविका को आचार्य गणदास के साथ प्रेक्षागृह में आना ही पडा । अभी वह पर्दे के पीछे ही थी कि राजा उसे देखने के लिए उतावला हो उठा । इस पर विदूषक ने वहाँ महारानी की उपस्थिति का ध्यान कराते हुए कहा कि तुम्हारे नेत्रो के लिए मधुरूप तुम्हारी प्यारी तो आ रही है पर मधुमक्खी भी मंडरा रही है । राजा सावधान हो गया और पर्दा उठने पर. मालविका को देख कर राजा ने विदूषक से कहा कि तसवीर मे देख कर मैं समझा था कि यह सचमुच इतनी सुन्दर न होगी, पर अब पता चल रहा है कि इसका रूप चित्रित करने मे तो चित्रकार ही असफल रहा है। फिर उसके सौन्दर्य की सराहना करता हुआ राजा मन ही मन कहने लगा कि यह तो सिर से पैर तक एक दम सुन्दर है। बडी-बडी आँखे, शरद के चाँद-सा चेहरा, कन्धों के पास झुकी हुई बाहे, कडे स्तनो से जकड़ी हुई सुन्दर छाती, सुघड कोखे, मुट्ठी भर की कमर, भारी नितम्ब, और उभरी हुई उंगलियों वाले दोनो पैर—मानो नाट्याचार्य की इच्छा के अनुरूप ही विधाता ने इसके एक एक अंग की रचना की है।

आचार्य ने मालविका को संकेत किया और नृत्य मे अपने गीत के एक-एक भाव की अभिव्यंजना का अभिनय करती हुई गाने लगी—

"छोडो छोडो हृदय रे, पिय से मिलन की आशा ।
मिल सकता नहीं मेरा प्यारा, आँख बाई क्या करती इशारा ?
आज कब से इन्हे है निहारा, सूझता पर मिलन का न चारा,
मै हूँ बेबस, तुम्हारी तो भी, लिए अभिलाषा ।।"

एक तो मालविका अपूर्व सुन्दरी, फिर ललित कला मे उसकी स्वाभाविक गति और सूझबूझ, उस पर भी गणदास जैसे कुशल आचार्य द्वारा प्रशिक्षण—सब ने मिलकर सोने मे सुहागा सा कर दिया। देख कर राजा विदूषक से कहने लगा कि मित्र, इस सहज सुन्दरी को ललित कला की शिक्षा क्या मिल गई, यह तो विधाता ने कामदेव के हाथ मे विष-बुझा तीर ही दे दिया। राजा को सन्देह न रहा कि महारानी की उपस्थिति में, अन्य कोई उपाय न देख, उसकी प्यारी ने, कला के बहाने, अपना कलेजा ही काढ़ कर उसके आगे रख दिया है और कह दिया है कि हे नाथ मै पराधीन हूँ तो भी तुम्हारी हूँ और तुम्हारी ही चाह लिए जी रही हूँ, मै प्राणपण से तुम पर निछावर हूँ। इसी समय महारानी की आज्ञा से मालविका आचार्य के साथ वहाँ से चली जाती है और अंक समाप्त हो जाता है।

तीसरे अंक मे, छोटी रानी इरावती की प्रार्थना पर उसके साथ झूला

झूलने के लिए राजा अपने मित्र विदूपक के साथ उद्यान में पहुँचता है किन्तु वह तब तक वहाँ नही आई है। इसी समय महारानी की आज्ञा से मालविका अपनी सखी बकुलावलिका के साथ उस अशोक वृक्ष के दोहद के लिए वहाँ आ पहुचती है जो वसन्त ऋतु आ जाने पर भी खिला नही था। अवसर पाकर राजा उससे प्रेम याचना करता है तभी इरावती अचानक आ धमकती है और नाराज होकर उलहना देती है कि पुरुषो का विश्वास नही किया जा सकता। भोली भाली युवतियो को वे ऐसे ठगते फिरते है जैसे मधुर गीत गाकर शिकारी हरिणियो को। इस पर राजा कहता है "हमे तो मालविका से कुछ भी वास्ता नही, तुम्हे आने मे देर हो रही थी यह देख कर हमने घडी भर उससे ही दि वहलाव कर लिया। तब इरावती ने कहा कि आपकी बात तो ठीक ही है पर मुझे यह पता न था कि आपने दिल वहलाव के लिए ऐसे-ऐसे सामान जुटा रक्खे है, नही तो मै अभागिन यहाँ आती ही क्यों ? इस प्रकार रग में भग हो जाता है और सब अपनी-अपनी राह लेते है।

चौथे अंक के पढ़ने से पता चलता है कि यद्यपि मालविका के विपय मे महारानी को शका तो पहले भी थी, पर ऊपर की घटना से वह पुष्ट होगई, और परिणाम यह हुआ कि मालविका तथा उनकी सखी वकुलावलिका को तहखाने मे कैद कर उनपर पहरा वैठा दिया गया और महारानी ने आदेश दिया कि जब तक वे स्वयं आज्ञा न दे और कोई उनकी अगूठी न दिखाए तब तक इन्हे कैद से छोडा न जाए। इस पर विदूपक ने अपनी उगली मे काँटा चुभने के निशान बना लिए और कह दिया कि महारानी को उपहार देने के लिए फूल चुनते हुए उसे काले नाग ने डस लिया। यह सुनकर महारानी घबरा गई कि उसी के कारण एक ब्राह्मण की जान जारही है। वैद्य द्वारा चिकित्सा के लिए मागे जाने पर महारानी ने तुरन्त अपनी वह अगूठी दे दी जिस पर नाग का चिन्ह बना हुआ था और उसे दिखा कर विदूपक ने बडी चतुराई से मालविका और उसकी सखी को कद से छुडा कर समुद्रगृह मे भेज दिया और स्वय भी राजा को लेकर वहाँ आगया। सखी ने विदूपक को द्वार पर वैठ कर पहरा देने को कहा और स्वयं भी वहाँ से हट गई जिससे कि प्रेमीयुगल एकान्त मे निःसकोच मिल सके। एकान्त पाकर राजा मालविका को गले लगाना चाहता है पर वह उसे ऐसा नहीं करने देती और इसी समय इरावती अपनी दासी के साथ वहाँ आ पहुंचती है। द्वार पर वैठे विदूपक को ऊंघते देखा दासी डराने के लिए एक टेढी लकडी उस पर फेंक देती है जिससे डर कर वह साँप-साँप का शोर मचा देता है और तभी भीतर से राजा और दूसरी ओर से वकुलावलिका भी

वहाँ आजाते है। राजा को मालविका से एकान्त मे मिलते देख इरावती फिर विगड उठती है, राजा वहुत सफाई देना चाहता है पर वह कुछ भी नही सुनती तभी एक दासी सहसा आकर सूचना देती है कि राजकुमारी वसुलक्ष्मी पीले वन्दर से डर कर वेहोश हो गई है और सब उसे देखने को वहाँ चले जाते है।

पाँचवे अक मे यह भेद खुल जाता है कि मालविका विदर्भ के राजकुमार माधवसेन की वहिन है और तब महारानी को, उसके प्रति किए गए अपने दुर्व्यवहार पर पश्चात्ताप होता है। वह इस वात से पहले ही प्रसन्न थी कि मालविका के किए दोहद से ही उसका प्रिय अशोक फूल उठा था। अब उसकी कुलीनता को जान कर रहा-सहा रोष भी जाता रहा। इसी समय यह शुभ समाचार मिला कि महारानी के पुत्र वसुमित्र ने अपने पितामह पुष्यमित्र के अश्वमेध-यज्ञ के घोडे को पकड़ने का यत्न करने वाले यवनो को परास्त कर दिया है। इस खुशी मे महारानी स्वय ही राजा से निवेदन करती है कि वह राजकुमारी मालविका को रानी रूप मे स्वीकार करे, और उनका विवाह हो जाता है।

नाटक का विषय आदि से अन्त तक प्रेम प्रधान है, घटनाऐ भी एक के वाद एक इस प्रकार ग्रथित हुई है कि प्रेमियो को एकान्त मे मिलने का वार-वार अवसर प्राप्त होता है किन्तु संवादो या व्यवहारो मे कवि ने कही मर्यादा का उल्लघन नही होने दिया। और ऐसा करने के लिए उसे मानो तलवार की धार पर चलना पडा है क्यो कि एक ओर वाल भर भी वढ जाने पर यदि नीरसता का भय था तो दूसरी ओर उच्छृंखलता का।

ऋतु संहार में श्रृंगार

काव्यो मे ऋतुसहार कवि की प्रथम रचना है, इसमे उसने छहो ऋतुओ तथा परिस्थिति के अनुसार उनमे वदलने वाले नागरिक जीवन की कुछ झाकिया अकित की है। ऋतु वर्णन मे कवि ने आँख, नाक, कान आदि वाह्य इन्द्रियो से गृहीत होने वाले प्रकृति के गोचर रूप और मानव जीवन पर उसके स्थूल प्रभावो का हो वर्णन सीधे सादे तथ्य कथन के रूप मे किया है। उसमे आदि से अत तक सूक्ष्म कल्पना तथा उसकी ऊँची उडान और कवि-कला का प्राय अभाव सा ही है। यही कारण है कि कुछ लोग उसे कालिदास की रचना नही स्वीकार करना चाहते। उनका यह विचार ठीक नही किन्तु इस प्रारम्भिक कृति के आधार पर कवि के विषय मे कोई अन्तिम धारणा नही वनानी चाहिए इसके कारण उसकी अगली सफलताओ का गौरव

भी कुछ कम नही हो जाता। ऋतु संसार के ग्रीष्म वर्णन के एक दो पद्य देखिए :—सूर्य की धूप वहुत तीखी हो गई है । रात के समय चाँद प्यारा लगता है, शीतल जलों मे वहुत देर तक नहाया जा सकता है, साँझे सुहावनी हो गई है और प्रेमियों मे कामदेव का वेग मन्द पड गया है।[1] मानव जीवन पर इस ऋतु के प्रभाव की भी एक झलक देखे :—स्त्रियो ने वहुत हलकी रेशमी साड़ी पहन कर उस पर करधनी वाँध ली है, चन्दन से पुते स्तनो पर हार धारण कर लिए है, और नहाने के वाद जूड़ो को भी भीनी महक से वसा लिया है। अतः जव प्रेमी उनसे मिलते है तो इन शीतल उपचारों के कारण उनकी भी तपन मिट जाती है।[2] गर्मी के कारण खेत और वन भयंकर हो गए है। वन की आग ने वहुत आगे तक वढकर खेतो को झुलसा दिया है, अधड़ के प्रवल वेग से वृक्षों के सूखे पत्ते उड़े जा रहे है और सूर्य की तेज धूप ने ताल तलैयों के पानी दूर दूर तक सुखा दिए है।[3]

शैली की 'ओड टु दि वैस्ट विंड' कविता में वायु का मानवीकरण

शृंगार वर्णन में जैसा संयम कालिदास ने नाटको मे दिखाया है वैसा ऋतु सहार मे नही है क्योकि उसमे स्त्री पुरुष के शारीरिक संयोग के विपय मे एक दो स्थलों[4] पर अधिक स्पष्ट निदेश हो गया है तो भी उस समय कवि की अपरिपक्व आयु, तथा प्रथम रचना आदि की दृष्टि से उसे क्षमा किया जा सकता है। कवि की इस प्रथम रचना में

---

१. प्रचण्डसूर्यः स्पृहणीय चन्द्रमा. सदावगाह क्षमवारि सचयः
दिनान्त रम्योऽभ्युपशान्तमन्मथो निदाधकालोऽयमुपागतः प्रिये ॥
ऋतु सहार १–१

२ नितम्व विम्वैः सदुकल मेखलैः स्तनैः सहाराभरणैः सचन्दनैः।
शिरोरुहैः स्नान कपाय वासितै. स्त्रियो निदाघं शमयन्ति कामिनाम् ॥१-४

३. पटुतर दवदाहोच्छुष्क सस्य प्ररोहाः परुप पवनवेगोत्क्षिप्तसंशुष्कपर्णा. ।
दिनकरपरितापक्षीणतोया. समन्ताद्विदधति भयमुच्चै र्वीक्ष्यमाणावनान्ताः ॥
॥ १-२२ ॥

४. क पुष्पासवामोद सुगन्धि वक्त्रैर्निःश्वासवातैः सुरभी कृतांगः
परस्पराङ्गव्यतिपंगशायी शेते जन. काम रसानुविद्धः ॥ ४-१२
ख. दन्तच्छदैः सव्रण दन्तचिह्नै. घनैश्च पाण्यग्रकृताभिलेखैः।
संसूचनते निर्दयमंगाना रतोपभोगो नव यौवनाम् ॥ ४-१३

आये ग्रीष्म या वर्षा ऋतु के पवन वर्णन मे अंग्रेजी कवि शैली जैसे सिद्ध हस्त लेखक की 'ओड टु दि वैस्ट विण्ड' जैसी कविता का सौन्दर्य ढूढना अनुचित है जिसमे रूढिवाद के विद्रोही कवि ने प्रकृति के कलापूर्ण वर्णन के साथ मानवीय अनुभूति का अद्भुत मिश्रण करके मणिकाञ्चन सयोग उपस्थित कर दिया है। पाठको के मनोरजन के लिए शैली की कविता के प्रथम तथा अन्तिम पद्यो का हिन्दी अनुवाद यहाँ प्रस्तुत किया जाता है :—

पश्चिम के उच्छृखल मारुत, हे पतझड के जीवन प्राण,
रूपविहीन भले ही तुम हो, तो भी तुम्हे आ गया जान—
उड जाते है तरुओ के दल काले पीले लाल प्रभूत—
सूखे, जैसे जादूगर के आगे ठहर न सकते भूत।
तुम ही उड़े जा रहे बीजो को बिठला अपने रथ पर—
पहुँचा देते श्याम शारदी उनकी शय्या के भीतर,
जहाँ पडे रहते है कबरों मे वे शव जैसे तब तक—
बहिन तुम्हारी पवन वसन्ती नही बजाती है जब तक—
आकर इस स्वप्निल वसुधा पर अपनी तुरही, और न भर—
देती रेवड सी बहु रगी कलियो से इसको सत्वर।

× × ×

हे उद्दड देवता, बाधा रहित तुम्हारा है संचार—
सकल विश्व मे, तुम विध्वसक भी रक्षक हो, सुनो पुकार—
'इस वन को ही तरह बनालो मुझ को भी निज वीणा आज,
मत देखो झडते इस जैसे मेरे भी पत्तो के साज,
तेरी ऊर्जस्वल समता से उठने वाला कोलाहल—
तान निकालेगा हम दोनो मे से पतझड की अविरल—
गीठी भी करुणा मे डूबी, तू बनजा आत्मा उच्चण्ड,
मेरी आत्मा, मे ही बनजा, लिए प्रेरणा स्रोत अखण्ड,
सूखे पत्तो जैसे मेरे लेकर ये निष्प्राण विचार—
फैलादे जिससे हो जल्दी जग मे नव जीवन सचार।
गा यह कविता रूप मन्त्र तू मेरे शब्दो को ससार—
मे फैलादे जैसे कोई ज्वलित अग्नि मे से अगार।

तू वनजा मेरे होंठो पर तुरही, सुप्त विश्व के देश--
जिससे सुनले यह आशामय नवभविष्य वाणी-सदेश—
"यदि आती है शरद, अधिक क्या रह सकताहै दूर वसन्त ?"
दुख के पीछे सुख आता है, यही नियति का नियम अनन्त ॥

इन पद्यों मे कवि ने अपनी तुलना पतझड़ की उस प्रचण्ड पवन से की है जिसके आघात से लता वृक्षों के पुराने पत्तो के झड़ जाने पर नई कलियों के फूटने की तैयारी होने लगती है। कवि मानव समाज मे बद्धमूल प्राचीन रूढियो को उखाड़ फेकना चाहता है किन्तु अनुभव करता है कि उसकी वाणी में वह बल नही जो जीर्ण जगत् में क्रान्ति ला सके। इसलिए वह उस पवन से प्रार्थना करता है कि वही (प्रचण्ड पवन ही) उसकी अन्तरात्मा वन जाए और कवि द्वारा ऐसी तुमुल ध्वनि उत्पन्न करदे जिससे समाज की सुप्त, आत्मा जाग उठे और उसे उज्वल भविष्य का नव सन्देश दे सके।

कालिदास में प्रकृति का चेतनीकरण तथा मानव से एकात्मता

सत्य तो यह है कि कालिदास का मन उग्र तथा उद्दाम वस्तुओ के वर्णन में वैसा नही रमता जसा सुकुमार तथा मधुर वस्तुओ के वर्णन मे। किन्तु ऊपर की पक्तियों को पढ़ कर पाठक यह न समझ ले कि कालिदास प्रकृति के साथ मानव जीवन के तादात्म्य को अनुभव न करता था। उसकी रचनाओं को पढने से प्रतीत होता है कि अनुभव-वृद्धि के साथ उसके हृदय मे प्रकृति के साथ मानवजीवन के तादात्म्य की भावना निरंतर वढ़ती चली गई और केवल शकुन्तला ही वन लताओं को अपनी वहिन न समझने लगी किन्तु वे भी उसके वियोग मे आसू वहाती दीखती है। कण्वाश्रम के लता वृक्षों तथा पशु पक्षियों और मानव पात्रो मे एक ही आत्मा उच्छ्वसित होती प्रतीत होती है। मेघदूत का मेघ भी मानवीकरण का सुन्दर उदाहरण है जिसमे कवि ने मानवात्मा के समावेश में अपूर्व कौशल से काम लिया है और जिसे एक सयोगी प्रेमी के रूप मे चित्रित करते हुए कहा है कि हे मित्र, मैंने तुम्हे जो काम सहेजा है वह सभवत. तुम्हारी पद-प्रतिष्ठा के अनुरूप न हो, तो भी मित्रता के नाते या मुझ विरही पर तरस खाके ही, तुम उसे अवश्य कर देना, और फिर इस पावसी शोभा को धारण किए, मन चाहे प्रदेशो की सैर करते फिरना, और मेरी यह भी शुभ कामना है कि मेरी तरह तुम्हें भी अपनी प्रियतमा

बिजली[1] से कभी बिछुडना न पडे।

मेघदूत एक प्रेम प्रधान खण्ड काव्य है जिसमे कवि ने प्रकृति को पृष्ठ भूमि बनाकर विप्रलम्भ शृगार का अत्यन्त मनोरम चित्र खीचा है। यह दृश्यकाव्य नही, अत भारतीय परपरा के अनुसार रगमच या चित्रपट के लिए आवश्यक निषेध यहा अनिवार्य नही, तथापि कवि ने पर्याप्त सयम से काम लिया है। तो भी यह नही कहा जा सकता कि इसमे उसकी लेखनी उतनी ही सयत रही है जितनी अभिज्ञान शाकुन्तल मे। आज के समाज मे वेश्याओं का जो स्थान है, वह कालिदास के समय भी था। वे देव मन्दिरो मे नाचगान का व्यवसाय तो करती थी किन्तु साथ ही वे विलासियो की वासना-तृप्ति का साधन भी अवश्य थी। विलासि-जन वेश्याओ के यहाँ जाकर क्या[2] करते है यह किसी से छिपा नही अत. कवि यदि उसका निर्देश व्यजना मात्र से करके सतुष्ट हो जाता और पूर्व मेघ के १७ वे पद्य के उत्तरार्ध मे पण्य स्त्रियो के साथ नागरिको के सभोग का वर्णन अभिधा से न करता तो भी रसानुभूति मे कुछ कमी न आती। उसी पूर्वमेघ के ४५ वे पद्य के अन्तिम चरण मे आए अर्थान्तरन्यास की विवृतोक्ति[3] को भी यदि वह बचा जाता तो कुछ क्षति न होती जैसा कि उत्तर मेघ के ५३ वे पद्य मे मेघ द्वारा अपनी प्रिय पत्नी को ढारस बँधाता हुआ यक्ष कहता है, "शीघ्र ही विष्णु भगवान् अपनी शेष-शय्या का त्याग करके

मघदूत मे शृंगार

---

१ एतत्कृत्वाप्रियमनुचितप्रार्थनावर्तिनो मे
सौहार्दाद्वि विधुर इति वा मय्यनुक्रोशबुध्या।
इष्टान्देशान् जलद विचर प्रावृषा सभृतश्री
र्माभूदेव क्षणमपि च ते विद्युता विप्रयोगः। उत्तर मेघ. ५२

२ नीचै रारव्य गिरिमाधिवसेस्तत्र विश्राम हेतो
स्त्वत्सपर्कात्पुलकितमिव प्रौढपुष्पै कदम्बै।
य पण्यस्त्रीरतिपरिमलोद्गारि भि र्नागराणा
मुद्दामानि प्रथयति शिलावेश्मभि र्यौवनानि॥ पूर्वमेघ पद्य २७॥

३. तस्या. किचित्करधृतमिव प्राप्तवानीरशाख,
हृत्वा नील सलिलवसनं मुक्तरोधो नितम्वम्।
प्रस्थानते कथमपि सखे लम्वमानस्य भावि,
ज्ञातास्वादो विवृतजघना कोविहातु समर्थ.॥ पूर्व मेघ पद्य ४५॥

उठने वाले है, तभी मेरा शाप भी समाप्त हो जाएगा। इन चार महीनों को तुम आँख मूँद कर निकाल दो। फिर तो, विरह के इन दिनों में पूरी न होने के कारण बढ़ी हुई अपने के मन की उन उन साधों[1] को हम शरद् ऋतु की चाँदनी रातों में पूरी कर ही लेंगे।" एक पति की इन साधों में क्या बात नही आ जाती जिसका निर्देश अलग से करना आवश्यक हो। इस पद्य मे कवि ने उन सवका वर्णन व्यजना द्वारा किस खूबी से कर दिया है?

मेघदूत की चर्चा समाप्त करने से पूर्व यह जान लेना आवश्यक प्रतीत होता है कि इस खण्ड काव्य का उपक्रम कवि ने कुबेर के उस शाप से किया है जिसका भाजन यक्ष को केवल इसलिए बनना पड़ा था कि वह पत्नी के प्रेम मे पड़ कर अपने कर्त्तव्य कार्यो से भी विमुख हो गया था, और संभवतः इसीलिए उसके उस शाप का रूप था—एक वर्ष पर्यन्त पत्नी से अलग रहना अर्थात् सयम। इस शाप की समाप्ति उस शेष शायी विष्णु भगवान् के जागरण पर होती है जिसके निकट सर्पराज शेष और गरुड़ अपना शाश्वतिक वैर भुला कर मर्यादा में रहते है। समस्त मेघदूत मे स्थायी भाव यद्यपि रति है किन्तु उसमे नायक नायिका के वियोग वर्णन मे चिन्ता[2], स्मृति[3], उत्कठा[4], दैन्य[5], विषाद[6], शङ्का[7]

---

१. शापान्तोऽस्मे भुजगशयनादुत्थिते शार्ङ्गपाणौ
शेषान्मासान् गमय चतुरो लोचने मीलयित्वा।
पश्चादावा विरहगुणित ततमात्माभिलाष
निर्वेक्ष्याव. परिगतशरच्चन्द्रिकासु क्षपासु ॥ उत्तर मेघ पद्य ४६

२. ध्यान चिन्ता हिताऽनाप्तेः शून्यताश्वासतापकृत्।
सा० द० तृतीय परिच्छेद कारिका १७१
यथा—तस्य स्थित्वा कथमपि पुरः कौतुकाधान हेतो–
रन्तर्बाष्पश्चिर मनुचरो राजराजस्य दध्यौ, पूर्व मेघ ३

३. सदृशज्ञानचिन्ताद्यै भ्रूसमुन्नयनादिकृत्।
स्मृतिः पूर्वानुभूतार्थ विषयज्ञान मुच्यते। सा० द० कारिका १६३
यथा—तस्यास्तीरे रचित शिखरः पेशलैरिन्द्रनीलैः
क्रीडाशैल. कनककदली वेष्टन प्रेक्षणीय.
मद्गेहिन्या. प्रियइति सखे चेतसा कातरेण
प्रेक्ष्योपान्त स्फुरिततडित त्वा तमेव स्मरामि ॥ उत्तर मेघ १४ ॥

४. रागे त्वलब्ध विषये वेदना महती तु या।
संशोषणीतु गात्राणा तामुत्कण्ठां विदुर्बुधाः ॥

यथा—तां जानीया. परिमितकथां जीवितं मे द्वितीय,
दूरीभूते मयि सहचरे चक्रवाकीमिवैकाम्
गाढोत्कण्ठा गुरुषु दिवसेष्वेषु गच्छत्सु बाला
जाता मन्ये शिशिरमथितां पद्मिनी वान्यरूपाम् । उत्तर मेघ २० ॥

५. दौर्गत्याद्यैरनौजस्यं दैन्य मलिनतादिकृत् ॥ सा० द० ३ का १४५
यथा—उत्संगे वा मलिनवसने सौम्य निक्षिप्य वीणां
मद्गोत्रांक विरचितपदं गेयमुद्गातुकामाम् ।
तन्त्रीमार्द्रा नयनसलिलै. सारयित्वा कथचित्
भूयोभूय: स्वयमपि कृतां मूर्च्छना विस्मरन्ती ॥

६. उपायाभावजन्मा तु विषाद. सत्वसंक्षय: ।
नि.श्वासोच्छ्वासहृत्तापसहायान्वेषणादिकृत् सा० द० ३ का १६७
यथा क—क: सन्नद्धे विरह विधुरां त्वय्युपेक्षेत जाया,
न स्यादन्योप्यहमिवजनो य. पराधीन वृत्ति: । पू० मे० ८।
ख—तेनार्थित्वं त्वयिविधि वशा द् रबन्धुर्गतोऽहं
याच्ञा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा ॥ पू० मे० ६
ग—अंगेनांगं प्रतनु तनुना गाढतप्तेन तप्तं
सास्रेणाश्रुद्रुतमविरतोत्कण्ठमुत्कण्ठितेन ।
उष्णोच्छ्वासं समधिकतरोच्छ्वासिना दूरवर्त्ती
सकल्पै स्त्वा विशति विधिना वैरिणारुद्धमार्ग: ॥ उत्तर मेघ ९९

७. परक्रौर्यात्मदोषाद्यै: शंकाऽनर्थस्य तर्कणम्
वैवर्ण्यकम्पवैस्वर्यपार्श्वालोकास्यशोषकृत् ॥ सा० द० का १६१
क—प्रत्यासन्ने नभसि दयिताजीवितालम्बनार्थी
जीमूतेन स्वकुशलमयीं हारयिष्यन् प्रवृत्तिम् ।
स प्रत्यग्रै. कुटजकुसुमै: कल्पितार्घाय तस्मै
प्रीत प्रीतिप्रमुखवचन स्वागतं व्याजहार । पूर्व मेघ० ४ ।
ख—तामायुष्मन् मम च वचनादात्मनश्चोपकर्तुं
ब्रूया एवं तव सहचरो रामगिर्या श्रमस्थ: ।
अव्यापन्न. कुशलमबले पृच्छति त्वा वियुक्त:
पूर्वाभाष्य सुलभविपदां प्राणिनामेतदेव ॥ उत्तर मे० ९८ ।

तथा उन्माद[1], स्वप्न[2] आदि संचारियों का ही, अधिक वर्णन हुआ है। फलतः उपक्रम और उपसंहार में प्रधानता[3] को प्राप्त विप्रलम्भ शृंगार के अन्तर्गत संभोग शृंगार सम्बन्धी ये कतिपय पद या वाक्य पाठक के हृदय पर कितना प्रभाव डालते हैं इसका निर्णय सहृदय स्वयं ही कर सकते हैं।

रघुवंश में शृंगार

काव्यों में रघुवंश कवि की अन्तिम कृति है। इसकी रचना उसने अपने जीवन के अन्तिम भाग में की प्रतीत होती है। तब तक वह व्यक्तियों तथा राज्यों के जीवन के अनेक उतार चढ़ावों को अपनी आँखों से, और वह भी अत्यन्त निकट से देख चुका था। कुछ आश्चर्य नहीं कि उन दिनों उसकी रुचि

---

१. क—चित्तसंमोह उन्मादः कामशोकभयादिभिः
अस्थानहासरुदितगीतप्रलपनादिकृत्। सा० द० का १६०

ख—उन्मादस्त्वापरिच्छेदश्चेतनाऽचेतनेष्वपि॥ सा० द० ३ का १९१

यथा. क—इत्यौत्सुक्यादपरिगणयन् गुह्यकस्तं ययाचे
कामार्त्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु। पूर्व० मे० ५।

ख—भित्त्वा सद्यः किसलयपुटान् देवदारुद्रुमाणा
ये तत्क्षीरस्रुतिसुरभयो दक्षिणेन प्रवृत्ताः।
आलिङ्ग्यन्ते गुणवति मया ते तुषाराद्रिवाता.
पूर्वं स्पृष्टं यदि किलभवेदङ्गमेभिस्तवेति॥ उ० मे० १०।

२. स्वप्नोनिद्रामुपेतस्य विषयानुभवस्तुयः। सा० द० ३ १५२

यथा—मामाकाश प्रणिहितभुजनिर्दयाश्लेषहेतो
र्लब्धायास्ते कथमपि मयास्वप्नसंदर्शनेषु।
पश्यन्तीनां न खलु बहुशो न स्थलीदेवतानां
मुक्ता स्थूलास्तरु किसलयेष्वश्रुलेशा.पतन्ति॥ उ० मे० १०३

३. क—विरुद्धैरविरुद्धैर्वा भावैर्विच्छिद्यते न यः
न तिरोधीयते स्थायी, तैरसौ पुष्यते परम्॥

ख—अविरुद्धाविरुद्धा वा यं तिरोधातुमक्षमाः
आस्वादांकुरकन्दोऽसौभावः स्थायीति संमतः॥ सा० द० ३ का १७४

कुछ कुछ योग आदि की ओर भी रही हो जिसका आभास आठवें[1] सर्ग में रघु के वानप्रस्थ वनने तथा उसकी योग साधना के वर्णन मे मिलता है। यद्यपि योग के सिद्धान्तो तथा योगियो से उसका परिचय इस से पूर्व भी रहा होगा जैसा कि कुमार संभव के प्रथम[2] सर्ग तथा तृतीय[3] सर्ग के अध्ययन से प्रकट होता है, किन्तु जीवन मृत्यु आदि के सम्बन्ध मे विचारो की प्रौढता तथा भावनाओ की जो परिपक्वता रघुवंश के आठवे सर्ग मे ऋषि वशिष्ठ के उपदेश मे पाई जाती है वह अन्यत्र नही।

रघुवंश के उन्नीसवे सर्ग मे राजा अग्निवर्ण की विलास लीलाओ का जो विस्तृत विवरण कवि ने दिया है, वह कुछ समीक्षको की दृष्टि में कही कही

---

१. (क) अजिताधिगमाय मन्त्रिभि र्युयुजे नीतिविशारदैरज
अनपायिपदो पलब्धये रघुराप्तैः समियाय योगिभि ॥ रघु सर्ग ८ पद्य १७

ख—नृपति.प्रकृतीखेक्षितु व्यवहारासन माददे युवा।
परिचेतुमुपाशु धारणा कुशपूतंप्रवयास्तुविष्टरम्।
रघु० सर्ग ८ पद्य १८

ग—अनयत्प्रभुशवितसंपदा वशमेको नृपतीनन्तरान्।
अपर. प्रणिधानयोग्यवा मरुत.पच. शरीरगोचरान् ॥ रघु सर्ग ८ व १९

घ—न नव. प्रभुराफलोदयात् स्थिरकर्माविराम कर्मणः।
न च योगविधेर्नवेतरः स्थिरधीरापरमात्मदर्शनात् ॥ रघु सर्ग ८ प० २२

२. क—तत्राग्नि माधाय समित्समिद्धस्वमेवमूर्त्यन्तर मष्टमूर्तिः।
स्वय विधाता तपसःफलानां केनापि कामेन तप श्चचार ॥
कुमार० सर्ग १ पद्य ५७

३. क—पर्यकबन्धस्थिर पूर्वकाय मृज्वायतं सन्नमितोभयासम्।
उत्तानपाणिद्वय सन्निवेशात्प्रफुल्लराजीव मिवाकमध्ये ॥
कुमार० सर्ग ३ पद्य ४५

ख—अवृष्टि संरम्भमिवाम्वुवाह मपामिवाधार मनुत्तरंगम्।
अन्तश्चेराणां मरुतां निरोधान्निवात निष्कम्पमिवप्रदीपम् ॥
कुमार० सर्ग ३ पद्य ४८

ग—मनो नवद्वारनिषिद्धवृत्ति हृदि व्यवस्थाप्य समाधिवश्यम्।
यमक्षरं क्षेत्रविदो विदुस्तमात्मान मात्मन्यव लोकयन्तम् ॥
कुमार० सर्ग ३ प० ५०

मर्यादा या औचित्य को लाँघ गया है। यह तो स्वीकार करना ही चाहिए कि उसमे श्रृंगार रस ऐसा लबालब भरा हुआ है कि पद पद पर उसके छलक जाने का डर लगा रहता है। पर यह भी भूलना न चाहिए कि सुरुचि तथा कुरुचि और औचित्य के मानदण्ड प्रत्येक देश तथा जाति मे एक से नही होते। और एक ही देश या जाति मे भी वे समय समय पर बदलते रहते है। आज भी लोलिता तथा लेडी शैटर लेज़ लवर्स जैसी पुस्तके अश्लील है या नही, यह प्रश्न सभ्य संसार के साहित्य-समीक्षको के लिए समस्या बना हुआ है। कई देशो मे उनकी बिक्री पर प्रतिबन्ध लगा हुआ है जबकि दूसरे विचारक उनमे कुछ भी बुराई नही देखते और कहते है कि ऐसे साहित्य का अध्ययन मनोवैज्ञानिक या किसी समस्या के समाधान की दृष्टि से करना चाहिए। शरीर के जिन अंगो का खुला प्रदर्शन समाज मे शोभन नही माना जाता, एक कलाकार के कला भवन और शवच्छेदन की टेबल पर उन्हे क्रमशः सुन्दर और आवश्यक समझा जाता है। यह भी जान पड़ता है कि बीसवी शताब्दी के बहुत से साहित्यकारो पर फरायड़ महोदय की छाप की तरह किसी युग मे संस्कृत साहित्य के प्राचीन कवियों पर वात्स्यायन के काम शास्त्र का गहरा प्रभाव पड़ गया था। साथ ही, सदा से, काव्य का एक प्रयोजन व्यवहार-ज्ञान भी माना जाता रहा है, संभवतः इसीलिए कालिदास तथा उसके परवर्त्ती भारवि, माघ, श्री हर्ष आदि कवि अपनी रचनाओ मे इस विषय को अधिकाधिक महत्व देते चले गए।

रघुवंश का उन्नीसवां सर्ग

रघुवंश के अन्त मे इस सर्ग को रखने का उद्‌देश्य कवि की दृष्टि मे, सभवत. यह भी रहा हो कि वह जिस राजा या राजवंश के आश्रय मे रहता था उसके बल तथा प्रताप शीघ्रता से ह्रासोन्मुख हो रहे थे और उसका मुख्य कारण राजाओं की भोग परायणता थी। कवि यह बतलाना चाहता था कि किस प्रकार रघु जैसे राजा मिट्टी के पात्रो मे भोजन करते हुए अपनी दिग्विजयों और प्रचण्ड शौर्य से साम्राज्यो की स्थापना करते है और किस प्रकार अग्नि वर्ण जैसे विषयी शासक अपने स्त्रैण जीवन से उनकी चिता तैयार कर देते है। अग्नि वर्ण का वर्णन करता हुआ वह लिखता है कि वह अग्नि के समान तेजस्वी[1]

---

१. क—अग्निवर्ण मभिषिच्यराघव. स्वे पदे तनयमग्नितेजसम्।
शिश्रिये श्रुतवतामपश्चिमः पश्चिमे वयसि नैमिषं वशी॥
रघु १९—१

था अतः प्राप्त राज्य की रक्षा करने में उसे कुछ भी प्रयास न हुआ। इसलिए वह निश्चिन्त हो गया और राजकाज की देखभाल मन्त्रियो को सौप भोग विलास मे डूब गया। स्त्रियो के बिना उसे क्षण भर भी चैन न पड़ती थी। वह सदा अन्त.पुर मे ही बना रहता था और यदि कभी मन्त्रियो ने आग्रह किया तो वह उनकी बात रखने को, अपना एक पैर राजभवन की खिड़की से बाहर लटका देता और प्रजा उसी के दर्शनों से अपने को कृतार्थ समझ लौट जाती। कभी वह विलासिनी स्त्रियो के साथ खिले हुए कमलों वाली उन वाटिकाओ मे विहार करता हुआ ही सारा दिन निकाल देता था जिनके बीच में गुप्त विलास भवन बने हुए थे, तो कभी उन मदिरा गृहो मे पहुँच जाता था जहाँ शराब के दौर पर दौर निरन्तर चलते[1] रहते थे। उसकी गोद मधुर स्वर वाली वीणा या किसी प्रेमिका से सदा अलकृत[2] रहती थी। कभी वह नृत्यशाला मे चला जाता तो स्वय मृदग ले बैठता और उसे ऐसी चतुराई से बजाता कि बडी बडी कुशल नर्तकियाँ भी उसके साथ नाचने में ताल से चूक जाती[3]। कभी वह अपनी प्रणयिनी से रात को मिलने की बात पक्की करके भी केवल तमाशा देखने के लिए कही पास ही छिप कर बैठा रहता और जब वह उसकी प्रतीक्षा करती, हार कर कातर हो जाती और उसे उलाहने देने लग जाती तो उन्हे सुनने मे

ख—सोऽधिकारमभिक' कुलोचित काश्चन स्वयमवर्तयत्समा।
सन्निवेश्य सचिवेष्वत. परं स्त्री विधेयनवयौवनोऽभवत्॥ पद्य ४

ग—इन्द्रियार्थपरिशून्यमक्षम सोढुमेकमपि स क्षणान्तरम्।
अन्तरेवविहरन्दिवानिश न व्यपेक्षत समुत्सुकाः प्रजा॥ पद्य ६

घ—गौरवाद्यदपि जातु मन्त्रिणा दर्शनं प्रकृतिकाक्षितं ददौ।
तद्गवाक्षविवरावलम्बिना केवलेन चरणेन कल्पितम्॥ पद्य ७

ङ—यौवनोन्नतविलासिनी स्तनक्षोभलोलकमलाश्चदीर्घिका.।
गूढमोहनगृहास्तदम्बुभिः स व्यगाहत विगाढमन्मथ.॥ पद्य ९॥

१. घ्राणकान्त मधुगन्धकर्षिणी. पानभूमिरचना. प्रियासख.
अभ्यपद्यत स वासितासख. पुष्पिताः कमलिनी रिव द्विप.। पद्य ११।

२. अकमङ्कपरिवर्तनोचिते तस्य निन्यतुरशून्यतामुभे।
वल्लकी च हृदयगमस्वना वल्गुवागपि च वामलोचना॥ पद्य १३।

३. स स्वयप्रहत पुष्कर कृती लोलमाल्यवलयो हरन्मन।
नर्तकी रभिनयातिलघिनी. पार्श्ववर्तिषु गुरुष्वलज्जयन्॥ पद्य १४।

बैठे । तब इस राज कुल की दशा उस आकाश की सी होगई जिसमे कृष्ण पक्ष के चन्द्रमा की केवल एक ही कला बच रही हो, या ग्रीष्म ऋतु के उस सूखे तालाब सी जिसमे कीचड ही शेष रह गया हो ।[1] अन्त मे एक दिन जब उसका जीवन-प्रदीप बुझ गया तब मन्त्रियो ने उसके शव को राजभवन के किसी उद्यान मे ही चुप चाप फूँक दिया ।[2]

उन्मत्त आमोद प्रमोद का यह कारुणिक अवसान कवि ने एक छोटे से सर्ग मे इस प्रकार चित्रित किया है कि पाठक के हृदय मे उठा क्षणिक उफान तुरन्त शान्त हो जाता है और उस पर विषाद की गहरी छाया आ पडती है। यहाँ दो चरम सीमाएँ, कवि ने एक साथ ही ऐसे दिखलादी है कि यह इस हाथ दो उस हाथ लो वाला सौदा सा प्रतीत होता है। कवि कहना चाहता है कि ससार में मर्यादा का उल्लघन भी होता है और वह भी एक सत्य है, उससे आँखे मूँदी नही जा सकती। किन्तु उस ओर चलने वाले को उसके परिणाम का भी ध्यान अवश्य रखना चाहिए।

इस उन्नीसवे सर्ग को छोड, शेष रघुवंश मे श्रृंगार के एक दो ही प्रसग आए है और उन्हे छोड जाने को मन नहीं मानता। छठे सर्ग मे इन्दुमती वरमाला लिए स्वयवर[3] सभा मे प्रविष्ट होती है और अनेक राजाओ को देखती हुई अन्त मे अयोध्या के राजकुमार अज[4] के सम्मुख जा पहुँचती है। उसके सर्वांग सुन्दर रूप को देखकर वह उस पर मुग्ध हो जाती है और उसका पैर आगे नही बढ़ता। सखी सुनन्दा उसके हृदय के भाव को ताड़ लेती है और अज का परिचय बड़े शानदार ढंग से देती है। परिचय को सुनकर इन्दुमती लज्जा के

---

१ व्योम पश्चिमकलास्थितेन्दु वा पकशेषमिव धर्मपल्वलम् ।
राज्ञि तत्कुल मभूत्क्षयातुरे वामनार्चिरिवदीपभाजनम् ।। पद्य ५१

२. तं गृहोपवन एव सगता. पश्चिमक्रतुविदा पुरोधसा ।
रोगशान्ति मपदिश्य मन्त्रिण· सभृते शिखिनि गूढमादधु. ।। पद्य ५४

३. संचारिणीदीपशिखेव रात्रौ यव्यती व्याय पतिवरासा ।
नरेन्द्रमार्गाट्टइव प्रपेदे विवर्णभाव स स भूमिपाल. ।।
रघु० सर्ग० ६० पद्य ६७-

४. तं प्राप्य सर्वावयवानवद्य व्यावर्त्ततान्योपगमात्कुमारी ।
नहि प्रफुल्लसहकारमेत्य वृक्षान्तरं काक्षति षट्पदालि. ।।
रघु० सर्ग ६ पद्य ६९

बन्धन को तनिक शिथिल कर अपनी प्रेम भरी दृष्टि से उसे ऐसे निहारने लगती है मानो अपने हाथो की वर माला उसे पहना[1] रही हो। यद्यपि शालीनतावश, वह अज के प्रति अपने अनुराग को वह मुँह पर नही ला सकती तो भी पुलकावली के वहाने वह मानो उसके रोम रोम को भेद कर[2] प्रकट हो जाता है। यह देख सखी सुनन्दा परिहास पूर्वक कहती है, 'आओ अब आगे चले,' इस पर इन्दुमती असूया भरी तीखी दृष्टि से उसे देखती है और उसके अभिप्राय को समझ कर सखी वह वरमाला अज के कण्ठ मे डाल देती है जो वहाँ इन्दुमती के मूर्तिमान् अनुराग के समान प्रतीत होती है। और अज भी उस माला को अपने कण्ठ में पड़ा इन्दुमती का कोमल बाहुपाश ही समझता है।

कुमारसंभव में शृंगार

कुमारसंभव में वर्णित संयत शृंगार के सम्बन्ध मे पहले लिखा जा चुका है अत: यहाँ उसके विषय मे अधिक लिखना पिष्टपेषण मात्र होगा, तो भी सातवें सर्ग के अन्तर्गत विवाह वर्णन में कवि ने जिस माधुर्य तथा महनीयता का मिश्रण किया है वह अद्भुत है। जो पार्वती तथा शिव इस सर्ग मे वधू वर और आदर्श प्रेमी के रूप में चित्रित किए गए है वे कवि की भावना के अनुसार जगत् के माता पिता तथा उसके लिए परम पूज्य हैं। ऐसे प्रसग मे अपनी इन दोनों भावनाओ के साथ पूरा न्याय कर सकना हँसी खेल नही। इस कारण तुलसी अपने रामचरित मानस के बाल काण्ड मे शिव विवाह के प्रसंग में :—

बहुरि मुनीगन उमा बुलाई। करि शृंगार सखी लै आई।
जगदम्बिका जानि भव बामा। सुरन मनहि मन कीन्ह प्रणामा।
सुन्दरता मर्याद भवानी। जाइ न कोटिहु वदन बखानी।
छन्द— कोटिहु वदन नहि बनै बरनत, जगजननि शोभा महा।
सकुचहि कहत श्रुति शेष शारद, मन्दमति तुलसी कहा।

---

१. तत. सुनन्दा वचनावसाने लज्जा तनूकृत्य नरेन्द्रकन्या।
दृष्ट्या प्रसादामलया कुमारं प्रत्यग्रहीत्सवरण स्रजेव॥
रघु० सर्ग ६० पद्य ८०

२. सा यूनि तस्मिन्नभिलापबन्धं शशाक शालीनतया न वक्तुम्।
रोमांचलक्ष्येण स गात्रयष्टिभित्वा निराक्रामदरालकेश्या॥
रघु० सर्ग ६ पद्य ८१

छविखानि मातु भवानी गमनी मध्य मण्डप शिव जहाँ,
अवलोकि सकहि न सकुचि, पति-पद कमल मन-मधुकर तहाँ।

कह कर ही चुप हो गए, जबकि सूर ने सभोग शृगार प्रधान वर्णनो मे अपने आराध्य देव राधा कृष्ण को बिलकुल ही सामान्य नायक नायिकाओ के स्तर पर लाकर खडा कर दिया। किन्तु कालिदास ने कुमारसभव मे इन दोनो का अत्यन्त सुन्दर समन्वय किया है।

दुलहा बने शिव हिमालय के राजभवन मे पहुँचे तो हिमालय ने मधुपर्क[1] से उनका स्वागत किया। जब अन्त.पुर के अधिकारी उन्हे विवाह-मण्डप मे ले गए तो वहाँ दुलहन के सुन्दर मुख रूपी शरत्चन्द्र की कान्ति से उनके नेत्र-कुमुद विकसित हो गए और हृदय इस प्रकार प्रसन्न हो गया जैसे शरद के आगमन से जगत् के जल निर्मल[2] हो जाते है। दोनों प्रेमी परस्पर दर्शन के लिए कब से आतुर थे, अब अवसर मिला भी तो इतने गुरुजनो के बीच मे। बडी कठिन समस्या थी। वहा शालीनता को तिलाजलि दे खुलमखुल्ला देखना निर्लज्जता था और देखे बिना भी चैन न था। न केवल औरो से, पर आपस मे भी आँख चुराना आवश्यक था। कभी, ऐसा क्षण मिलते ही एक ने दूसरे को कनखियो से ताका, तो देखा कि दूसरा भी वही कर रहा है। एक चोर ने दूसरे चोर को चोरी करते पकड लिया, और दोनो लजा गए। दोनो के ललकते लोचन सहसा सकपका[3] गए। पाणिग्रहण की विधि होने लगी तो एक दूसरे

---

१. तत्रेश्वरो विष्टर भाग्यथावत्सरत्नमर्घ्य मधुमच्च गव्यम्।
नवे दुकूले च नगोपनीतं प्रत्यग्रहीत्सर्वममन्त्रवर्जम्॥
दुकूलवासा स वधूसमीपं निन्ये विनीतैरवरोधदक्षैः
वेला समीप स्फुटफेनराजिर्नवैरुदन्वानिव चन्द्रपादै :॥
कुमार० सर्ग ७ पद्य ७२-७३।

२. तया प्रवृद्धाननचन्द्रकान्त्या प्रफुल्ल चक्षु. कुमुद: कुमार्या।
प्रसन्नचेत सलिल.शिवोऽभूत्संसृज्यमान शरदेव लोक॥
कुमार० सर्ग ७ पद्य ७४।

३. तयोरपाङ्ग प्रति सारितानि क्रियासमापत्तिषु सहृतानि।
ह्रीयन्त्रणा मानशिरे मनोज्ञान्यन्योन्य लोलानि विलोचनानि॥
कुमार ० सर्ग ७ पद्य ७५।

यहा पर यह भूलना न चाहिए कि ये वही शिव है जो पाँचवे सर्ग मे ब्रह्मचारी

के कर स्पर्श से दोनों के शरीर में बिजली-सी दौड़ गई। प्रेम के देवता ने भीतर-ही-भीतर दोनों के हृदयों को एक सूत्र में बाँध दिया। परिक्रमा और लाजाहोम की विधि हो चुकने पर पुरोहित ने वधू को उपदेश दिया कि हे बेटी यह पवित्र यज्ञाग्नि तुम्हारे विवाह का साक्षी है। तुमने एक दूसरे का साथ अन्त तक निभाना है और सारे धर्मकार्य मिलकर करने हैं। इस उपदेश को उन्होंने कान खोलकर सुना और प्रिय दर्शन पति ने जब ध्रुव दर्शन के लिए कहा तो, संकोच वश दबी जा रही उन्होंने लज्जारुद्ध कण्ठ से किसी तरह 'देख लिया' यह कहा। संस्कार हो चुकने पर वर वधू ने पद्मासन पर विराजमान पितामह ब्रह्माजी को प्रणाम किया और सब उपस्थित बन्धुजनों ने अक्षत तथा रोली से नवदम्पती के मस्तक पर तिलक किया। विवाह के इस समस्त वातावरण में आदि से अन्त तक पवित्रता तथा गंभीरता मिश्रित उल्लास व्याप्त है। पाणिग्रहण विधि में नैषधीय चरित के सोलहवें सर्ग के पन्द्रहवें पद्य के भद्दे शृंगार का लेश भी नहीं।

अब केवल एक प्रश्न शेष रह जाता है—वह है कुमारसंभव का आठवां सर्ग। इस सर्ग में शिव पार्वती के संभोग शृंगार का वर्णन विस्तार पूर्वक दिया गया है यदि यह सचमुच ही कालिदास की रचना है तो कुछ आश्चर्य अवश्य होता है कि जिसकी लेखनी अन्यत्र इतनी संयत तथा सतर्क रही है वह यहाँ इतनी चंचल कैसे हो गई। यद्यपि कुछ विद्वान इसे कालिदास की कृति नही मानते क्योंकि कुमारसंभव की अनेक हस्तलिखित[1] प्रेमियों में यह सर्ग नही पाया

का वेश धारणकर पार्वती के आश्रम मे उसके प्रेम की परीक्षा लेने गये थे और वहाँ उन्होंने उसके मुख की तरफ देखते हुए, आँख से आँख मिलाकर सीधी बात चीत की थी क्योंकि तब वे दुल्हा न थे और उनका उस समय शरमाना उनके नटराज पन के अनुरूप न होता। उनका तब का वर्णन देखिए :

विधि प्रयुक्तां प्रतिगृह्य सत्क्रिया परिश्रमं नाम विनीय च क्षणम्।
उमा स पश्यन् ऋजुनैव चक्षुषा प्रचक्रमे वक्तुमनुज्झितक्रम.॥ कु० स० ५

१. बहुत सी हस्तलिखित प्रतियों में यही पर (सातवें सर्ग पर) समाप्ति हो जाती है। अन्य पोथियों में दस सर्ग और हैं। इन सर्गों मे आठवाँ सर्ग काम शास्त्र के सिद्धान्तों के अनुसार विवाहित दम्पती के आमोद प्रमोद का वर्णन करता है; ऐसी स्पष्टवादिता निःसन्दिग्ध रूप से पाश्चात्य रुचि के लिए वैरस्योत्पादक है; परन्तु इसके कालिदास द्वारा रचित

जाता तो भी यहा इस विवाद मे न पड़कर यही स्वीकार करना उचित प्रतीत होता है कि संभवत. कवि ने उस समय की रुचि तथा परम्परा का अनुसरण करते हुए इस सर्ग की रचना की होगी। पहले लिखा जा चुका है कि उस समय के कवियों पर काम शास्त्र का विशष प्रभाव था।

होने मे जो सन्देह उपस्थित किए गए है वे पूर्णत निराधार है (सस्कृत साहित्य का इतिहास कीथकृत हिन्दी अनुवाद पृ० १०९।)

सौन्दर्य का स्वरूप
तथा
कालिदास द्वारा उसका चित्रण

मानव का स्वभाव से ही सौन्दर्य प्रेमी होना और उसके कारण ललित कलाओं का जन्म

सौन्दर्य मानव को स्वभाव से ही प्रिय है। खुदाई से प्राप्त पुरानी सामग्री को देखने से भी इस तथ्य की पुष्टि होती है कि अत्यन्त प्राचीन काल का मानव भी सुन्दर असुन्दर में भेद कर सुन्दर की ओर आकृष्ट होता और असुन्दर से बचना चाहता था। जीवन की प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति होते ही इस ओर उसका ध्यान और भी अधिक तीव्रता से गया कि उसके व्यवहार की वस्तुएँ उपयोगी होने के साथ-साथ सुन्दर भी हो। इसलिए उसने अपने हथियारों और निवास की गुफाओं को चित्रो से तथा अपने शरीर को पक्षियो के परों, फूल-पत्तियों, या तरह-तरह के रगो से सजाना शुरु किया। इस कार्य के लिए उसने हड्डी, काँच, पत्थर या मिट्टी के मनकों आदि का भी निर्माण किया। सजाने के लिए उसने, पहले पहल, रंग दार तथा चमकीली चीजो को पसन्द किया, किन्तु धीरे धीरे उसका झुकाव कला और भाव व्यंजना की ओर बढता गया। रुचि के परिष्कार के साथ साथ उसकी सौन्दर्य भावना भी सूक्ष्म होने लगी और उसकी कला कृतियों मिट्टी की मूर्तियों या चित्र आदि मे रंगो की अपेक्षा सजीवता तथा भाव व्यजना का महत्व बढ़ चला। और धीरे धीरे क्रमिक विकास करती हुई ये ललित कलाए भवन निर्माण, मूर्ति रचना, चित्रण, संगीत तथा काव्य कला—अपनी वर्तमान उन्नत अवस्था तक पहुच गई। सौन्दर्य ललित कलाओ के लिए अनिवार्य तत्व है। जो सुन्दर नही उसे कला कृति नही कहा जा सकता।

सभी कलाएँ वाह्य इन्द्रियों—आंख या कान को प्रभावित करती हुई ही हृदय

सूक्ष्मता के आधार पर कलाओं का तारतम्य और उनमें काव्य कला का स्थान

पर अपना असर डालती है। इन कलाओं की प्रगति स्थूल से सूक्ष्म की ओर देखी जाती है। भवन निर्माण कला में कला का आधार ईंट पत्थर, लकड़ी आदि तीन विस्तारों वाला अर्थात् लम्बा, चौड़ा और मोटा होता है। भवन प्राय. विशाल भी होते है। मूर्त्ति में विशालता तो कुछ कम हो जाती है किन्तु तीनो विस्तार—लंबाई, चौड़ाई मोटाई बने रहते हैं। चित्र मे विशालता का तो कोई महत्त्व होता ही नहीं, विस्तार भी केवल दो—लंबाई और चौड़ाई ही रह जाते हैं, मोटाई जाती रहती है और उसका प्रदर्शन छाया द्वारा अथवा वस्तु के आकार को छोटा बड़ा करके किया जाता है। संगीत में तीनों ही विस्तारों का लोप हो जाता है और रूप का स्थान भी शब्द ले लेता है। कण्ठ या किसी बाजे से निकले शब्द या ध्वनि का उतार चढाव ही उसका बाह्य आधार होता है। किन्तु इस संगीत से भी सूक्ष्म वह काव्य-कला है जिसमें बाह्य आधार का प्राय: सर्वथा ही अभाव हो जाता है। साक्षात् व्यक्ति या वस्तु नहीं किन्तु वक्ता द्वारा बोले गए या लेखक द्वारा लिखे गए केवल वे शब्द ही जो उन अर्थों—व्यक्ति, वस्तु या घटना—के वाचक होते हैं, कवि द्वारा किसी रस के विभाव अनुभाव या संचारी भाव बनाकर इस खूबी से रख दिए जाते हैं कि उनसे हृदय तरंगित हो उठता है और यही सर्वश्रेष्ठ कला है।

संगीत कला का प्रभाव

कला जितनी सूक्ष्म होती जाती है, उसकी प्रभावक शक्ति उतनी ही बढती जाती है। हृदय मे हिलोर उठा देने का जितना सामर्थ्य संगीत तथा कविता में है उतना मूर्त्ति या चित्र मे नहीं। यद्यपि कला के प्रभाव से किसी भवन मे मानव की भावना—शोक भक्ति, प्रेम आदि को ऐसा प्रतिबिम्बित किया जा सकता है कि बिना कहे भी, देखने वालों का हृदय उसे अनुभव कर ले, तो भी उसमें वह सजीवता नही आ सकती जो मूर्ति या चित्र में देखी जाती है। संगीत की असीम शक्ति का वर्णन ड्राइडन ने इस प्रकार किया है:—दिव्य संगीत के प्रभाव से इस विश्व का निर्माण हुआ था। जब प्रकृति अस्त-व्यस्त परमाणुओं के ढेर के नीचे पड़ी थी और उसमे अपना सिर उठाने की शक्ति नहीं थी तब ऊपर से एक मधुर तान वाला संगीत सुनाई पड़ा कि 'हे मृतो से भी गए बीतो उठो।' तभी शीतल उष्ण, आर्द्र तथा शुष्क—सभी अपनी अपनी स्थिति के अनुसार उठ खड़े हुए और उन्होंने संगीत

के आदेश का पालन किया। दिव्य संगीत से इस विश्व की रचना हुई, और इसकी प्रत्येक कोटि में वह ओतप्रोत है, किन्तु उसकी पूर्णता मानव में हुई। हृदय का ऐसा कौन सा संवेग है जिसे संगीत उठा या शान्त नहीं कर सकता। जब जूबल ने अपने तार वाले वाद्य से स्वर निकाला तो उसके साथी आश्चर्य चकित हो गए और उस दिव्य संगीत का संमान करने के लिए उन्होंने सिर झुका दिया। उनका विश्वास था कि उस वाद्य के खोल में जो शक्ति छिपी हुई है और ऐसा मधुर संगीत उत्पन्न कर रही है वह देवता से कम नहीं हो सकती।[1] भारतीय संगीत परम्परा में दीपक राग से दीपक जल उठना तथा मलार से वर्षा होना प्रसिद्ध है।

काव्य का प्रभाव

कविता की शक्ति के विषय में विशेष लिखना अनावश्यक है। प्रसिद्ध है कि बिहारी[2] के एक दोहे ने किस प्रकार राजा जयसिंह को नई रानी के मोहपाश से मुक्त कर दिया था और किस प्रकार कवि के एक शेर ने नादिरशाह की

---

१. From Harmony, from heav'nly Harmony
This universal Frame began :
When Nature underneath a heap
Of jarring Atoms lay.
And could not heave her head.
The tuneful Voice was heard from high.
Arise, Ye more than dead.
Then cold and hot and moist and dry
In order to their stations leap.
And Music's pow'r obey.
From harmony, from heavenly Harmony
This universal Frame began :
From Harmony to Harmony
Through all the Compass of the Notes it ran,
The Diapason closing full in Man.
What Passion can not Music raise and quell ?
When Jubal struck the chorded Shell,
His listening Brethren stood around,
And wondering on their faces fell
To worship that Celestial Sound :
Less than a God they thought there could not dwell
Within the hollow of that Shell,
That spoke so sweetly and so well.
What Passion cannot Music raise and quell ?

२. नहि पराग नहि मधुर मधु नहि विकास इह काल।
अली कली ही सौं बंध्यो आगे कौन हवाल॥

तलवार को कत्ले आम से विरतकर म्यान में डलवा दिया था। कौन नही जानता कि काव्य मे वह विलक्षण प्रभाव है जो सहृदय को मूर्त्ति या चित्र की तरह निश्चेष्ट और अवाक् बना देता है।

सौन्दर्य विषयिगत है

यद्यपि चिर विस्मृत अतीत से अनेक कलाकार अपनी कृतियो मे सौन्दर्य का निरूपण करते चले आ रहे है किन्तु सौन्दर्य है क्या इसका लक्षण करने की चिन्ता उन्हे मानो कभी हुई ही नही। कुछ की दृष्टि मे तो उसका लक्षण इस प्रकार असम्भव है जिस प्रकार मृग द्वारा झाडियो मे कस्तूरी की खोज क्यो कि वे उसे विषय गत नही, प्रत्युत विषयि गत मानते है और कहते है कि "समै-समै सुन्दर सबै, रूप कुरूप न कोय। मन की रुचि जेती इतै, तित तेती रुचि होय॥ अर्थात् समय-समय पर सभी पदार्थ सुन्दर या असुन्दर हो जाते है, स्वभाव से कुछ भी सुरूप या कुरूप नही। देखने वाले की रुचि ही उसका कारण है। सस्कृत के एक कवि भी इसी का समर्थन करते हुए कहते है कि दही मीठा है, शहद मीठा है, अगूर मीठा है और मिशरी तो मीठी है ही। जिसका मन जिससे जा लगता है उसके लिए वही मीठा हो जाता है।[१] सूरदास का विष[२] कीडा अगूर को छोड़ कर विष को ही पसन्द करता है। एक वेदान्ती[३] विद्वान किसी वस्तु के प्रिय लगने का कारण सौन्दर्य को नही किन्तु द्रष्टा के मोहमय स्नेह को मानते है। नैषधीय चरित में श्रीहर्ष[४] लिखते है कि अत्यन्त सुन्दर युवति का रूप भी बालक को वैसा आकृष्ट नही करता जैसा युवक को। और युवक के मन

---

१. दधि मधुर मधु मधुरं द्राक्षा मधुरा सिताऽपि मधुरैव।
तस्य तदेव हि मधुरं यस्य मनो यत्र संलग्नम्।

२. ऊधो मनमाने की बात।
दाख छुहारा छाडि, अमृत-फल विषकीडा विष खात॥
जो चकोर को दै कपूर कोउ तजि, अंगार-अघात?
सूरदास जाको मन जासो सोई ताहि सुहात॥

३ अधिकतर प्रिय मेतन्ममेति बुद्धि र्न वस्तु सौन्दर्यात्।
नूनमनपेक्षितगुणो मोहधनः स्नेह एवेह॥ भर्तृहरिनिर्वेद-अ० श्लो० ९॥

४ यथायूनस्तद्वत्परम रमणीया रमणी
कुमाराणामन्तःकरणहरण नैव कुरुते। सर्ग २२ पद्य २५२॥

को भी जब प्रेम की प्यास[1] न हो या किसी अन्य कारण से उसका चित्त खिन्न[2] हो तो वह नारी-सौन्दर्य से प्रभावित नही होता। दूसरे व्यक्ति से प्रेम करने लगी स्त्री का रूप उस प्रेमी को सुन्दर नही लगता जिसका हृदय उसकी बेवफाई के कारण घृणा से भर जाता है। महाकवि भारवि[3] भी गुणों का निवास वस्तु में नहीं किन्तु प्रेमी के हृदय में मानते है।

सौन्दर्य विषयगत है।

किन्तु ऐसे सहृदयो का भी अभाव नही जो सौन्दर्य को विषयगत स्वीकार करते है। महाकवि माघ[4] की वह प्रसिद्ध उक्ति इसी मत का समर्थन करती है जिसमें उन्होंने कहा है कि वास्तविक सौन्दर्य तो वही है जो प्रति-क्षण नया ही नया लगता है। महाकवि पद्माकर ने भी 'पल-पल मे पलटन लगे जाके अंग अनूप। ऐसी इक ब्रज बाल को कहि नहि सकत सरूप।" कह कर सौन्दर्य को प्रतिक्षण नया लगने वाला तथा विषय गत स्वीकार किया है। उर्दू कवि अकबर ने भी इसकी पुष्टि यह युक्ति देकर की है कि तुम्हारा सौन्दर्य प्रतिक्षण बदलता रहता है। यदि इसमें किसी को सन्देह हो तो वह तुम्हारी तसवीर को साथ रखकर तुम्हे देखे। वे कहते हैं :—

लहजा लहजा है तरक्की पर तेरा हुस्नो जमाल।
जिसको शक हो तुझे देखे तेरी तसवीर के साथ॥

सौन्दर्य उभयगत है

तीसरे विचारक सौन्दर्य को उभयगत अर्थात् कुछ वस्तु का गुण तथा कुछ देखने वाले का गुण स्वीकार करते है और कहते है कि 'रूप रिझावन हार यह, वे नयना रिझवार।' अर्थात् तुम्हारा सौन्दर्य तो रिझाने वाला है ही, पर उस प्रेमी की

---

१. शुद्धान्तसंभोगनितान्ततुष्टे न नैषधे कार्य मिदंनिगाद्यम्।
अपा हि तृप्ताय न वारिधारा स्वादु सुगन्धिः स्वदते तुषारा॥
२. त्वया निधेया न गिरो मदर्थाः क्रुधा कदुष्णे हृदि नैषधस्य।
पित्तेन दूने रसने सितापि तिक्तायते हस कुलावतंस॥
नैषधीय० सर्ग ३, पद्य ९३, ९४।
३ वसन्ति हि प्रेम्णि गुणा न वस्तुषु॥
४ क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूप रमणीयतायाः। माघ सर्ग ४ पद्य १७।

आँखे भी कम नही, वे रूप पर रीझना जानती है।' रूप को समझने के लिए भी दृष्टि चाहिए और वह दृष्टि सरस हृदय तथा सुसस्कृत मन से ही प्राप्त हो सकती है तभी तो शकुन्तला' नाटक मे सानुमती ने विदूषक के लिए कहा था कि यह मूर्ख शकुन्तला के सौन्दर्य को भला क्या समझ सकता है क्योकि यहाँ तो इसकी आँखे ही बेकार है। अत्यन्त उच्चकोटि का सौन्दर्य उन आँखो को चौंधिया देता है जिनके पीछे पारखी मन नही, वे उसकी बारीकियो को अनुभव नही कर सकती। सस्कृत के एक कवि ने तभी तो लिखा है कि 'वह सुन्दरी कैसी है यह तो पता ही नही चलता ? हमे तो वहा केवल एक तरल आभा जगमगाती दीखती है, उसका आधार नही।[2]

सौन्दर्य भावना और रुचि भेद

भिन्न भिन्न देशो और जातियो की सौन्दर्य -भावना मे अन्तर पाया जाता है। कही गौर वर्ण, नुकीली नाक और पतले होठ सुन्दर समझे जाते है तो कही काला रग, चपटी नाक और मोटे होठ। चीन मे स्त्रियो के छोटे पैर ही सौन्दर्य के परिचायक माने जाते थे। इस बुद्धि भेद का कारण वह रुचि है जिसका विकास विभिन्न जातियो मे अपनी परिस्थितियो के अनुसार धीरे धीरे हुआ करता है। बहुत सभव है कि एक आदर्श आर्य सुन्दरी भी चीन या अफ्रीका के किसी निवासी को अपनी जाति की साधारण स्त्री से भी हीन प्रतीत हो, क्योकि बाबा सूरदास के अनुसार यह तो मनमाने की बात ही ठहरी।

सौन्दर्य तथा अंगो का सुडौलपन या रेखा

प्राचीन ग्रीस निवासी अत्यन्त सौन्दर्य-प्रिय थे। उनकी बनाई मूर्तियाँ इसकी साक्षी है। अगो की बनावट, नापतौल, गठन, तथा सुडौलपन पर वे बहुत बल देते थे और उनकी दृष्टि मे ये ही सौन्दर्य के मुख्य माप दण्ड थे। आज भी सभ्य ससार मे सौन्दर्य प्रतियोगिताओ का बहुत चलन है और उनमे शरीर के विभिन्न अगो—छाती, कमर आदि की उपर्युक्त बनावट व नापतोल आदि को ही प्रधानता दी जाती है। सस्कृत

---

१. सानुमती-अनभिज्ञ: खल्वीदृशस्य रूपस्य मोघदृष्टिरयं जनः।

अंक ६ पद्य १४ के आगे।

२. कीदृशी सा भवत्येप विवेक. केन जायते।
प्रभामात्रहि तरल दृश्यतेऽन तदाश्रयः।

साहित्य मे इसका नाम रेखा[१] है। संगीत रत्नाकर में रेखा का लक्षण करते हुए लिखा है कि सिर, नेत्र, हाथ आदि के उचित अनुपात मे मिलने से शरीर में एक ऐसा सुडौलपन आ जाता है जो, आँखों को बड़ा लुभावना प्रतीत होता है, उसे ही रेखा कहते है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल कृत सौन्दर्य का लक्षण

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी सौन्दर्य का आधार बहुत अंश तक रूप रंग को ही माना है और लिखा है कि "कुछ रूप रंग की वस्तुएँ ऐसी होती है जो हमारे मन मे आते ही थोड़ी देर के लिए हमारी सत्ता पर ऐसा अधिकार कर लेती है कि उसका (हमें अपनी सत्ता का) ज्ञान ही हवा हो जाता है और हम उन वस्तुओं की भावना के रूप में परिणत हो जाते है। हमारी अनन्त सत्ता की यही तदाकार परिणति सौन्दर्य की अनुभूति है।··· ·जिस वस्तु के प्रत्यक्ष ज्ञान या भावना से (यह) तदाकार परिणति जितनी ही अधिक होगी, उतनी ही, वह हमारे लिए सुन्दर कही जाएगी।'

आचार्य आनन्द वर्धन का मत

आचार्य आनन्दवर्धन ध्वनि पर विचार करते हुए, प्रसग से कहते है कि महाकवियों की वाणी में ध्वनि ऐसी शोभित होती है जिस प्रकार वह लावण्य[२] जो युवति के अग, उनकी गठन या रूप रग, आदि से सर्वथा भिन्न होता हुआ भी उनमे ऐसे झलका करता है जैसे मोती मे आभा।

इस सौन्दर्य के सम्बन्ध में विचार करते हुए एडमण्ड स्पैन्सर महाशय

---

१. (क) शिरोनेत्रकरादीनामगानां मेलने सति।
अंगश्रीः कथ्यते रेखा चक्षुः पीयूपवर्पिणी ।। अभिज्ञान शकु०
अक ६ श्लोः १४ की टीका मे राघवभट्ट। निर्णयसागर
(सस्करण पृ० २१६)

(ख) उपमानोपमानं या भूपणस्यापिभूपणम्।
अंग श्रीः कथ्यते रेखा चक्षुः पीयूपवर्पिणी।
नैपधीय० सर्ग ५-७४ की टीकामे नारायण पण्डित।

२ प्रतीयमान पुनरन्यदेव वस्त्वस्तिवाणीपु महाकवीनाम्।
यत्तत्प्रसिद्धावयवातिरिक्तं विभाति लावण्य मिवाङ्गनासु ।।
ध्वन्यालोक—१ का ४

स्पेन्सर और सौदर्य

लिखते है कि वे लोग भी कितने अनजान है जो कहते है कि सौन्दर्य तो एक जगह गौर वर्ण और गुलाबी आभा के उस सुन्दर मिश्रण के सिवाय कुछ नही जो ग्रीष्म की कमनीय कान्ति के समान देखते देखते बिला जाता है। (वे अनजान लोग) यह भी कहते है कि सौन्दर्य तो विशेष नाप तोल वाले सुडौल अगों का सतुलित विन्यास मात्र है। पर क्या श्वेत और गुलाबी रगों मे ऐसी आश्चर्यजनक शक्ति हो सकती है कि वे आँखों की राह भीतर घुस कर हृदय पर जादू करदे और उसमे ऐसी हलचल मचादे कि उनकी बेचैनी को मृत्यु के सिवाय कोई शान्त ही न कर

Hyman to beauty

1. How vainly then do idle wits invent,
That Beauty is nought else, but mixture made
Of colours fair and goodly temperament,
Of pure complexions, that shall quickly fade
And pass away, like a summer's shade,
Or that it is but comely composition
Of parts well measured, with meet disposition.
Hath white and red in it such wondrous power,
That it can pierce through th' eyes unto the heart,
And therein stir such rage and restless stour,
As nought but death can stint his dolour's smart?
Or can proportion of the outward part
Move such affection in the inward mind,
That it can rod both sense and reason blind?
Why do not then the blossoms of the field,
Which are arrayed with much more orient hue,
And to the sense most dainty odours yield,
Work like impression in the looker's view?
Or why do not fair pictures like power show.
In which oftimes we nature see in art
Excelled, in perfect limning every part?
But ah! believe me, there is more than so
That works such wonders in the minds of men
I that have often proved, too well it know;
And who so list the like assays to Ken,
Shall find by trial, and confess it then,
That Beauty is not, as fond man misdeem,
An outward show of things, that only seem.

सके। क्या वाह्य अंगों का संतुलन प्रेमी के अन्तःकरण मे ऐसा प्रेम उत्पन्न कर सकता है जिससे प्रेमी की चेतना और विवेक भी अंधे हो जाएँ। यदि यह सत्य है तो उद्यानों में खिलने वाले वे फूल जिनके रंग और भी अधिक उज्वल है और जिनकी महक अत्यन्त मोहक है, वैसा प्रभाव क्यो नही उत्पन्न कर सकते ? और वे सुन्दर चित्र जिनमे हम कला को प्रकृति से कही बढी चढ़ी देखते हैं, हम पर वैसा चमत्कार क्यो नही करते ? इसलिए, मेरे इस कथन पर विश्वास करो कि सौन्दर्य इनसे कुछ भिन्न ही वस्तु है जो मानव मन पर विलक्षण प्रभाव डाल देता है। मैंने इसे खूब परख लिया है और जान लिया है। यदि कोई अन्य भी यत्न करेगा तो वह इसी परिणाम पर पहुंचेगा कि सौन्दर्य इन वस्तुओं का वाह्य प्रकाशन मात्र नही, जैसा कि वे अनजान समझते है।

स्पेन्सर के अनुसार पवित्र आत्मा वह साँचा है जिसमें ढल कर शरीर सुन्दर हो जाता है

अपनी इस कविता के उपसंहार मे स्पैन्सर महोदय लिखते है कि सत्य तो यह है कि जो आत्मा जितनी अधिक पवित्र तथा दिव्य प्रकाश से युक्त होती है उसे अपने निवास के लिए यहाँ उतना ही सुन्दर शरीर मिलता है और वह उसे भी प्रसन्न मुद्रा तथा मधुर रूप से सजा लेती है क्योकि आत्मा ही वह सांचा है जो शरीर को अपने अनुसार ढाल लेता[1] है।

कालिदास का भी यही अभिमत है कि सौन्दर्य और पवित्रता सदा साथ

---

1. Thereof it comes that those fair souls, which have
The most resemblance of that heavenly light,
Frame to themselves most beautiful and brave
Their fleshly bower, most fit for their delight,
And the gross matter by a sovereign might
Tempers so trim that it may well be seen
A palace fit for such a virgin queen.
So every spirit as it is most pure,
And hath in it the most heavenly light,
So if the fairer body doth procure
To habit it, and it more fairly dight
With cheerful grace and amiable sight.
For of the soul the body form doth take :
For soul is form and doth the body make.

कालिदास भी शारीरिक सौन्दर्य तथा धर्म का सम्बन्ध स्वीकार करता है

रहते है। कुमारसंभव के पांचवे सर्ग में उसने ब्रह्मचारी वेशधारी शिव के मुख से पार्वती को कहलवाया है कि यह कथन सर्वथा सत्य है कि सौन्दर्य और पाप का मेल नही हो सकता। देखो तुम्हारा रूप तो प्यारा था ही, और अब यह शील भी तपस्वियो के लिए आदर्श हो गया है।[1]

नैषधीय चरित मे सौन्दर्य तथा गुणों का सम्बन्ध

नैषधीय चरित मे श्री हर्ष भी इसकी पुष्टि हंस को कही राजा नल की इस उक्ति से करते है कि 'सुन्दर रूप मे सुन्दर गुणो का निवास होता है।' सामुद्रिक शास्त्र के इस निष्कर्ष के उदाहरण तुम ही हो।[2]

किन्तु चंचल चित वाली बेवफा सुन्दरियो से खिन्न टॉमसरिचर्डसन[3]

---

१. (क) यदुच्युते पार्वति पापवृत्तये न रूपमित्यव्यभिचारि तद्वच.।
तथाहि ते शीलमुदारदर्शने, तपस्विनामप्युपदेशता गतम् ॥
कुमार० सर्ग ५ पद्य ३६

(ख) न तादृशा आकृतिविशेषा गुणविरोधिनो भवन्ति ॥
अर्थात् ऐसे सुन्दर स्वरूप वाले व्यक्ति बुरा काम नही कर सकते।
शकुन्तला अंक ४

२. (क) त्वदुदाहरणाऽऽकृतौगुणा इति सामुद्रकसारमुद्रणा। नैषधीय० सर्ग २, पद्य ५१

(ख) यत्राकृतिस्तात्रगुणा वसन्ति ॥

3. Take heed of gazing over much on damsels fair unknown,
For oftentimes the snake doth lie with roses overgrown:
And under fairest flowers do noisesome adhers lark,
Of whom take heed, I thee agreed, lest that thy cares they work.

What though that she doth smile on thee?
Perchance she doth not love;
And though she smack thee once or twice
she thinks thee so to prove:
And when that thou dost think She loveth none but thee,
She hath in store perhaps some more
which so deceived be.
Trust not therefore the outward show
beware in any case:
For good conditions do not lie where is a pleasant face.
But if it be thy chance a lover true to have,
Be sure of this, thou shalt not miss each thing that
thou wilt crave
(A Pageant of English Poetry Page 4-5)

टामस रिचर्डसन द्वारा इसका विरोध

महाशय कहते हैं कि हसीन नाजनियो की ओर अधिक ताक झांक न करनी चाहिए क्योंकि गुलाब की घनी झाड़ियों में प्रायः सांप छिपा रहता है। तुम्हे देख कर वह मुसकरा दी तो क्या हुआ ? संभव है कि उसे तुमसे कुछ भी प्रेम न हो। तुम्हे बहकाने के लिए, वह भले ही तुम्हें एक दो बार चूम भी ले, पर जब तुम यह समझ रहे होगे कि वह तुम्हें छोड़, किसी और से प्यार नहीं करती, तभी, न जाने उसके कितने प्रेमी तुम्हारी तरह ही धोखा खा कर हाथ मल रहे होंगे। इसलिए तुम बाहरी रूप रंग पर विश्वास न करना और खबरदार रहना कि सुन्दर चेहरे के पीछे हृदय भी सुन्दर नहीं होता।

सौन्दर्य भावना के आधार में जातीय संस्कार तथा वैयक्तिक रुचियाँ

ऊपर की गई चर्चा से ज्ञात होता है कि ऐसे विचारकों का भी अभाव नहीं जो सौन्दर्य को विषयगत और सर्वथा निरपेक्ष (absolute) नही मानते। उनके अनुसार सौन्दर्य एक ऐसा धर्म है जो द्रष्टा के जातीय संस्कारों तथा वैयक्तिक रुचियों के भेद के कारण किसी वस्तु में प्रतिभासित होकर उसे सुन्दर और प्रिय बना देता है। किन्तु ऐसा आरोप कोई द्रष्टा, किसी वस्तु पर, अपनी इच्छानुसार नही करता, वह उन संस्कारों तथा रुचि भेद के कारण, अनजाने मे और स्वतः ही हो जाया करता है। इसीलिए भवभूति[1] ने उसे अकारण तक कह दिया है। दर्पण, मणि या इसी प्रकार की किसी निर्मल वस्तु पर ही प्रतिबिम्ब पडता है, लकड़ी या पत्थर पर नही। लाल फूल जिस प्रकार सबके लिए लाल है उस प्रकार सबके लिए सुन्दर नही। कोई चित्र भी जो एक को सुन्दर लगता है वह दूसरे को नही। एक जातिके स्त्री पुरुषों का रूप रंग दूसरी जाति के लोगों को वैसा सुन्दर नही लगता, यह ऊपर लिखा जा चुका है। यदि सौन्दर्य केवल विषयगत होता और उसके सम्बन्ध में जातीय सस्कारो तथा वैयक्तिक रुचि का कुछ महत्व न होता तो उपर्युक्त भेद न होनाचाहिए था। किन्तु साथ ही यह भी ध्यान रखना चाहिए कि उसे केवल विषयिगत अर्थात् देखने वाले के हृदय की ही सृष्टि नही माना जा सकता। यदि ऐसा होता तो उस हृदय को सभी रूपरंग सुन्दर लगते। अतः मानना पड़ता है कि सौन्दर्य अंशतः विषयगत तथा अंशतः विषयिगत है।

---

१. अहेतुः पक्षपातो यस्तस्य नास्ति प्रतिक्रिया ॥

उत्तररामचरित अं० ५, पद्य १७।

अब इस पर भी कुछ विचार कर लेना चाहिए कि सौन्दर्य क्या है और वह क्यो आनन्द देता है ? देखा जाता है कि बाह्य जगत् के साथ संपर्क होने पर हमारे जातीय संस्कार तथा वैयक्तिक रुचिया, अनजाने ही, अपनी मधुकरी[1] वृत्ति से तिलतिल चुनकर अनेक वस्तुओ की तिलोत्तमा[2] अथवा आदर्श प्रतिमाए हमारे मानस में बनालेती है, और जो बाहरी वस्तु हमारी बनाई उस (वस्तु) की मानस प्रतिमा से जितना अधिक सादृश्य रखती है वह हमें उतनी ही सुन्दर तथा प्रिय लगती है क्योकि उसके रूप रग आदि हमारे अन्तःकरण के घटक सत्त्व[3] के

सौन्दर्य का लक्षण

---

१ जिस प्रकार भौरा फूल फूल पर जाकर उनमें से रस चूस लेता है उसी प्रकार मानवमन अनेक व्यक्तियों को देखकर तथा प्रत्येक के सुन्दर अशो को मिलाकर एक काल्पनिक, आदर्श प्रतिमा का निर्माण कर लिया करता है। कवियो चित्रकारो तथा मूर्तिकारो मे इस विधायक कल्पना का विकास विशेष रूप से देखा जाता है।

२. पुराणों मे लिखा है कि ब्रह्माजी के मन मे यह विचार उठा कि उनकी बनाई कोई भी वस्तु सर्वांग सुन्दर नही, किसी का कोई अंश सुन्दर है तो किसी का कोई। अतः उन्होने जहाँ जहाँ जो सबसे सुन्दर था उसे तिलतिल जुटाकर एक सर्वांग सुन्दरी नारी का निर्माण किया। वही तिलोत्तमा थी।

३. साख्य शास्त्र के अनुसार सारा संसार, सत्त्व रज तथा तम—इन तीन गुणो के योग से बना हुआ माना जाता है। सत्व ज्ञानात्मक तथा सुखमय है। रज दुःखात्मक तथा प्रवर्त्तक या क्रियाशील और तम मोहात्मक तथा स्थिति शील होता है। अन्तः करण भी इन्ही तीन तत्वो का बना है। उसमे सत्वगुण की प्रबलता होने पर बुद्धि खूब काम करती है और सुख की अनुभूति होती है। रजोगुण की प्रबलता से मनुष्य दुख का अनुभव करता है और क्रियाशील होकर तरह तरह की दौड़ धूप मे लगा रहता है। किन्तु जब तमोगुण बुद्धि को दबा लेता है तब वह कुछ काम नही करती। मनुष्य को नीद आती है या वह पड़ा रहना चाहता है। यह तमोगुण ही सत्व तथा रज का नियन्त्रण भी करता है और उन्हे सीमा मे रखता है।

प्रीत्यप्रीति विषादात्मका: प्रकाश प्रवृत्ति नियमार्था.।
अन्योन्याभिभवाश्रय जननमिथुन वृत्तयश्चगुणाः ।। साख्य कारिका १२।

नन्दांश को उसके ज्ञानांश की अपेक्षा अधिक उत्तेजित कर देते हैं। वस्तुतः मारे हृदय का वह आनन्दांश ही सौन्दर्य है जो किसी वस्तु के साक्षात् दर्शन या सके ध्यान से उद्बुद्ध होकर हमें तन्मय कर देता है और उस वस्तु पर पड़कर से सुन्दर तथा प्रिय बना देता है।

क्या कोई रूप सबकी रुचि के अनुकूल हो सकता है?

सौन्दर्य के निर्णय में रुचि भेद के महत्त्व को समझ लेने पर कलाकार के सामने यह समस्या उपस्थित हो जाती है कि क्या सौन्दर्य का ऐसा चित्रण संभव है जो सब जातियों की रुचि के अनुकूल हो और उनके हृदय को समान रूप से आकृष्ट कर सके।

मूर्तिकार को अपनी कलाकृति में रूप का ऐसा ठोस तथा यथार्थ चित्रण

सत्व के ज्ञानांश के कारण फूल का ज्ञान होता है, किन्तु, यदि उसे देखकर सुख भी होता है तो वह उसके (सत्व के) आनन्दांश के कारण। किसी अप्रिय घटना का ज्ञान तो सत्व के ज्ञानांश के कारण है किन्तु उससे होने वाली दुःखानुभूति का कारण चित्त का रजोगुण है। संभव है कि उसी घटना से हमारे किसी शत्रु को सुख हो और तब उस सुख का कारण उस (शत्रु) के चित्त का सत्वगुण होगा। तमोगुण की प्रबलता से बुद्धि बेकार हो जाती है। कुछ समझ में नहीं आता। दुर्घटना यदि अत्यन्त घोर हो तो उसे देख या सुनकर मनुष्य मूर्छित हो जाता है। 'रति ने जब अपनी आँखों के सामने ही कामदेव को जल कर भस्म होते देखा तो आघात की प्रबलता से उत्पन्न मोहने उसकी चेतना को स्तब्ध कर दिया और वह मूर्छित हो गई" कुमार सभव सर्ग ३ पद्य ७३।

इस प्रकार, हमारी समस्त सुखानुभूति का कारण यह सत्व ही है। इस सत्व के आनन्दांश के प्रकाश में ही कोई वस्तु सुन्दर लगती है और उससे हमें सुख मिलता है। उस वस्तु के न मिलने से यदि किसी को दुख होता है तब उसके चित्त के सत्व से वह सुन्दर तो लगती है किन्तु साथ ही रजोगुण प्रबल होकर दुख की अनुभूति को उत्पन्न कर देता है।

सत्वं लघु प्रकाशकमिष्ट मुपष्टम्भकं चलं च रजः।
गुरु वरणकमेव तमः प्रदीपवच्चार्थतो वृत्तिः॥ सांख्य कारिका ॥ १३ ॥

कला के क्षेत्र में मूर्तिकार की कठिनाई

करना होता है जो आगे पीछे, दाएँ बाएँ, सब तरफ से पूर्णतया देखा जा सकता है और जिसमे आँख, नाक, कान, हाथ पैर आदि निश्चित आकार और नाप जोख के होते है, उसमे दर्शक की कल्पना शक्ति को इस बात का कम से कम अवकाश मिलता है कि वह उस रूप को अपनी भावना के रंग मे रग कर देख सके। इस लिए यह अत्यन्त कठिन है कि कोई आदर्श मूर्ति भी सब के लिए समान आकर्षण रखती हो।

मूर्तिकार की अपेक्षा चित्रकार को कुछ सुविधा

किन्तु चित्रकार स्थानक[1] अर्थात् pose, झीने मुखावरण, तीव्रप्रकाश, झुटपुटे या अन्धकार आदि उपायो की सहायता से ऐसे चित्र का निर्माण कर सकता है जिसमे रूप रग तथा अग प्रत्यग का सूक्ष्म विवरण न देकर, दर्शक की कल्पना को, अपनी रुचि के अनुसार उनकी पूर्ति के लिए, अधिक से अधिक छूट देदे। इस लिए मूर्ति की अपेक्षा चित्र की सर्वप्रियता अधिक व्यापक क्षेत्र मे हो सकती है।

कवि का शब्द चित्र और भी व्यापक रुचियो के अनुकूल

कवि को पत्थर और छैनी या रग तथा तूलिका आदि की आवश्यकता नही होती। वह इनके बदले केवल शब्दो का प्रयोग करता है और वे शब्द ही सहृदय के चित्रपट पर ऐसे सौन्दर्य की रूपरेखाए खीच देते है जिनमे वह अपनी रुचि तथा भावना का रग भर कर उसे पूर्ण कर लेता है। कवि के शब्द-चित्र मे क्रिया तथा गति का प्रदर्शन भी किया जा सकता है जो मूर्ति तथा रेखा चित्र मे सभव नही। इसलिए कवि का शब्द-चित्र साक्षात् न होता हुआ भी अधिक सजीव तथा अधिक रुचियो के अनुकूल हो सकता है।

अनेक कवि विस्तृत विवरण के पक्षपाती होते है और नख से शिखा तक

---

१ स्थानकभेद —संमुखं, पराङमुखं, संपूर्णावियवरूपम्, पार्श्वागतम्।
ततो भागद्वयेनैकतः पतताऽन्यत्रच चटता क्रमेण ऋजु ऋज्वागत द्व्यर्धाऽक्षार्ध-ऋजुसंज्ञानि चेतिस्थितस्थानकानि पच। गमनं, आलीढं, त्वरित, त्रिभंग-मित्याख्यानि च चत्वारि गच्छत्स्थानकानीति। एवं च नवाना स्थानकाना भेदश्चित्रेपु। नलचपूकी चण्डपालकृतटीका, प्रथम उच्छ्वास।
पृ० १४, १५ (काशी सस्कृत सिरीज नं० ९८। सन् १९३२)

सौन्दर्य चित्रण में उपमा आदि अलंकारों की आवश्यकता

प्रत्येक अंग का विवरण विस्तार से देते है। कुछ पाठक भी ऐसे वर्णन को ही पसन्द करते है क्योंकि पात्र के मनोवैज्ञानिक अध्ययन तथा चरित्र को समझने के लिए वे इसे आवश्यक समझते है, तथा यथार्थवादी चित्रण मे इस शैली का अनुसरण ठीक ही है। किन्तु अधिकतर कवि प्रकृति की चित्रशाला मे से, सुन्दर अगो के प्रसिद्ध उपमान चन्द्र, कमल, मोती आदि की सहायता से ही अपने सौन्दर्य-चित्रो का निर्माण करते चले आ रहे है. वे उन अगो की आकृति आदि का विस्तृत विवरण नही देते। महाकवि कालिदास भी इसी कोटि के अन्तर्गत है। उत्तर मेघ के १९वे पद्य[1] मे, उसका किया यक्ष पत्नी का वर्णन देखिए :--यक्ष मेघ से कहता है, 'वहाँ (अलकापुरी वाले मेरे घर मे) तुम्हारी दृष्टि एक ऐसी दुवली पतली श्यामा[2] युवति पर पड़ेगी जो भरी जवानी मे होगी और जिसे देख तुम अवश्य ही कह दोगे कि विधाता की नारी सृष्टि में उसके जोड की दूसरी नही हो सकती। उसके दाँत हीरे की तरह और होंठ पकी कदूरी जैसे होगे। वह डरी हुई हरिणी की तरह चंचल नेत्रो से निहारती होगी और स्तनों के वोझ से जव वह कुछ आगे को झुक कर धीरे धीरे चलती होगी तो उसकी पतली कमर लचक जाती होगी' इस वर्णन मे कवि ने नायिका के मुख, आख, आदि अवयवों के आकार प्रकार या रूप रग का निर्देश नही किया। सामान्य रूप से केवल इतना ही कहा कि उसका शरीर पतला है और उसकी जवानी उभार पर है। उसके दाँत चमकीले और होंठ लाल है। उसकी कमर पतली और वक्ष पुष्ट है तथा कोई अन्य स्त्री सौदर्य मे उसकी वरावरी नही कर सकती। सभवत, संसार का कोई भी देश या समाज ऐसा न होगा जिसे इस प्रकार का नारीरूप रुचिकर न हो। ऊपर लिखा जा चुका है कि रग तथा नाक और

---

१. तन्वीश्यामा शिखरिदशना पक्वविम्बाधरोष्ठी
मध्येक्षामा चकित हरिणी प्रेक्षणा निम्ननाभिः ।
श्रोणीभारादलसगमना स्तोकनम्रास्तनाभ्या
या तत्र स्याद्युवतिविषये सृष्टि राद्येव धातुः ।। मेघदूत, उत्तरमेघ, पद्य १९

२. 'श्यामा यौवन मध्यस्था'
यह वाक्य 'उत्पलमाला' ग्रंथ का है इसका तात्पर्य यह है कि सोलह साल से ऊपर की तथा चढ़ती जवानी वाली युवती को श्यामा कहा जाता है क्योंकि नव रोम निकल आने से शरीर के विशेष अंग श्याम हो जाते है।

होठ आदि की आकृति के विषय मे रुचि भेद हो सकता है पर अनार[1] या हीरे से चमकीले दाँत, हरिणी के से भोले नेत्र, पतली कमर, पुष्ट स्तन और उस पर चढ़ती जवानी किसे अच्छी न लगेगी ?

एक अंग्रेजी कविता में सौन्दर्य चित्रण के लिए उपमानों का प्रयोग

अंग्रेजी[2] के एक कवि द्वारा किया गया नारी सौन्दर्य का वह चित्रण देखिए जिससे पता चलता है कि सौन्दर्य के घटक कुछ ऐसे तत्त्व अवश्य है जिनके सम्बन्ध में संसार के पूर्व पश्चिम तथा उत्तर दक्षिण एक मत है। टामस कैरयू महाशय अपनी "Inquiry" नामक कविता मे लिखते है "मै जब मेहदी की झाड़ियों में घूम रहा था तब मेरी तथा प्रेम की निम्नलिखित बात चीत हुई। मैंने बहुत उदास होकर पूछा, "यह तो बताओ कि मै अपनी प्रेमिका को कहाँ पा सकूँगा ? इस पर प्रेम ने कहा "अरे मूर्ख, तू नही जानता कि वह तो प्रत्येक सुन्दर वस्तु मे छिपी बैठी है ? सामने खिल रहे उन ट्यूलिप के फूलो में जाकर देख कि उसके होठ और गाल वहाँ विद्यमान है। और दूर पर विकसित पैंसी के उन चमकीले कुसुमो मे उसकी अद्भुत आँखे है। खिले हुए आलुबुखारो और गुलाब की कलियो में तुझे उसके अरुण रक्त की आभा फूटती दीखेगी और वह दूर फूल

---

१. पके हुए अनार के बीज जैसे माणिक्य या हीरे को शिखर कहते है। अभिधान चिन्तामणि में लिखा है।
पक्वदाडिमबीजाभं माणिक्यं शिखर विदु. ॥
मेघ दूत उत्तरमेघ मे १९ वे पद्य की टीका मे चरित्रवर्धन ॥

2. Amongst the myrtles as I walk'd :
Love and my sighs, thus intertalk'd :
"Tell me" said I, in deep distress,
"Where may I find my shepherdess ?"
"Thou fool" said Love "Know'st thou not this,
In everything that's good, she is ?
In yonder tulip go and seek,
There thou may'st find her lip her cheek;
In yon enamelld pansy by,
There thou shalt have her curious eye;
In bloom of peach, in rosy bud,
There wave the streamers of her blood;
In brightest lilies that there stand,
The emblems of her whiter hand;

रही कुमुदिनी उसकी गोरी बाहों की प्रतीक है। सामने उभरी हुई उस पहाड़ी में तुझे वह (प्रेम) माधुरी मिलेगी जो उसके हृदय में बसी हुई है।

"अरे बिलकुल ठीक !" कहकर ज्योंही मैंने उस बिखरे हुए सौन्दर्य को एकत्र करने के लिए उन फूलों को तोड़ना चाहा, त्योंही वह तो देखते देखते उड़ गया। मुझे स्तब्ध देखकर प्रेम फिर बोला कि "ऐ मूर्ख, तेरा भी यही हाल होगा। तेरा आनन्द इन फूलों की तरह ही, पल भर में नष्ट हो जाएगा और इस सुन्दर सामग्री को एक जगह गूँथने के तेरे प्रयास की तरह ही, अपनी प्रेयसी को पाने की तेरी आशा भी क्षण भर में छिन्नभिन्न हो जाएगी।"

मेघदूत में नायिका के सौन्दर्य का चित्रण

मेघदूत के यक्ष ने भी अपनी प्रियतमा के प्रत्यंग सौन्दर्य को इसी प्रकार जगह जगह बिखरे देख कर बड़े विषाद से कहा था कि बातबात पर रूठ जाने वाली ऐ प्यारी, तुम्हारे शरीर की शोभा श्यामलता मे, कटाक्षों की छटा डरी हुई हरिणी की चितवनो मे, मुखमण्डल की माधुरी चन्द्रमा मे और केशपाश की सुषमा मयूर के लम्बे बर्ह मे मिल जाती है। नदी की हलकी लहरियो मे तुम्हारे बाँके भ्रूविलासो का आभास भी देख पाता हू पर तुम्हारे समूचे सौन्दर्य की उपमा कही अन्यत्र[1] नहीं मिलती।

कालिदास ने कुमार संभव में, संभवतः इस कमी को पूरा करने के लिए

In yonder rising hill there smell
Such sweets as in her bosom dwell.
" 'Tis true" said I. And thereupon
I went to pluck them one by one,
To make of parts an union;
But on a sudden all was gone
With that I stop. Said Love, "These be,
Fond man, resemblances of thee;
And as these flowers, thy joy shall die,
E'en in the twinkling of an eye;
And all thy hopes of her shall wither,
Like these short sweets thus knit together.

१. श्यामास्वङ्गं, चकित हरिणी प्रेक्षणे दृष्टिपातं,
वक्त्रच्छायां शशिनि, शिखिनां बर्हभारेषु केशान्।
उत्पश्यामि प्रतनुषु नदीवीचिषु भ्रूविलासान्
हन्तैकस्मिन् क्वचिदपि न ते चण्डि, सादृश्य मस्ति॥ उत्तर मेघ, पद्य १०१

कुमारसंभव में सौन्दर्य चित्रण

ही लिखा है कि ब्रह्मा[1] जी के हृदय मे यह कुतूहल उत्पन्न हुआ कि इन सब प्रसिद्ध उपमानो—चन्द्रमा, नील कमल और बिम्बाफल आदि-को यदि एक जगह सवार कर आदर्श रूप की रचना की जाए तो वह कैसा हो और मानो इसी निमित्त से उन्होंने पार्वती जी का निर्माण किया।

पार्वती का नखशिख वर्णन

मुखादि उपमेयों में सौन्दर्य आदि धर्मों की अधिकता प्रकट करने के लिए कवि ऐसे उपमानो की (चन्द्रमा कमल आदि) योजना करता है जिनमे वे धर्म और भी अधिक होते है तथा जो उनके कारण विशेष प्रसिद्ध होते है। 'फूल सा सुन्दर मुखडा' सुनकर जो मूर्त्त सौन्दर्य हमारी आँखो के आगे झलक जाता है वह केवल 'सुन्दर मुखडा' सुनकर नहीं। 'राजा हरिश्चन्द्र सा सत्यवादी' यह सुनकर हमारे हृदय-पटल पर एक ऐसे व्यक्ति का चित्र अंकित हो जाता है जो सत्य की रक्षा के लिए बड़ी से बड़ी विपत्ति झेलने को उद्यत है। यह काम केवल 'सत्यवादी' शब्द से नही हो सकता, क्योंकि सत्यवादिता एक अमूर्त विचार है। इसीलिए ससार के सब कवियो ने अपनी रचनाओ मे उपमा आदि अलंकारों का सहारा लिया है। कालिदास भी अपनी सुन्दर उपमाओं के लिए प्रसिद्ध है और कहा जाता है कि उपमा मे कोई कवि उसकी बराबरी नही कर सकता[2]। जान पड़ता है कि वह जब किसी वस्तु का वर्णन करना चाहता है तभी एक से एक बढ कर अनेक सुन्दर उपमान उसके आगे हाथ बाँध कर खडे हो जाते है और कवि उनमें से अपनी रुचि के अनुसार चुनाव कर लेता है। रघु के तरुण हो जाने पर उसके सहयोग से राजा दिलीप की शक्ति बढ़ गई, इसका वर्णन करता हुआ कवि लिखता है कि जिस प्रकार पवन की सहायता पाकर अग्नि प्रचण्ड हो जाता है, बादलों के हट जाने से सूर्य मे उग्रता आ जाती है और मद के फूट पड़ने पर, जैसे गन्ध गज उत्कट हो जाता

---

१. सर्वोपमाद्रव्यसमुच्चयेन यथाप्रदेशं विनिवेशितेन
सा निर्मिता विश्वसृजा प्रयत्नादेकस्थ सौदर्यदिदृक्षयेव ॥

कुमारसभव सर्ग १ पद्य ४९

२. उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्
दण्डिनः पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः ॥

है, उसी प्रकार रघु के कारण राजा दिलीप भी शत्रुओं के लिए दुर्धर्ष हो गये।[1] कुमारसंभव के प्रथम सर्ग मे पार्वती का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है कि पढने लिखने की आयु में पहुँचते ही, पूर्व जन्म के सस्कारों के कारण उसमें सब विद्याएँ इस प्रकार अवतीर्ण होने लगी जैसे शरदागम से गंगा में हंसमालाएं, या रात होते ही हिमालय की दिव्य ओपधियों मे उसकी स्वाभाविक ज्योति[2]। और जब बचपन समाप्त कर, उसने धीरे-धीरे, आयु के उस भाग मे पदार्पण किया जो देह-रूपी लता का स्वाभाविक शृंगार है, जो मदिरा न होता पर मन को मतवाला बना देता है, और फूल न होता हुआ भी कामदेव का तीखा तीर है, तब उस नवयौवन से उसका सुडौल शरीर ऐसा खिल उठा जैसे तूलिका से रंग भर देने पर तसबीर या सूर्य की किरणो के स्पर्श से कमल का फूल।[3,4] उसके चरण इतने सुकुमार थे कि पृथिवी पर धरते ही उनके नखो से अरुण आभा फूट पडती थी और जब वह चलती थी तो उसके लाल चरणों की कान्ति के पड़ने से ऐसा प्रतीत होता था मानों जगह जगह स्थल-कमल खिल उठते हों।[5] हाथी की सूँड और कदलीस्तम्भ आकार मे भले ही उसकी जाँघो के समान थे किन्तु उनमे से एक तो खुरदरी तथा कर्कश और दूसरा एक दम बहुत ठंडा। इसलिए वे उनकी बराबरी नहीं कर सकते[6] थे। उसकी कमर बहुत पतली थी और नवयौवन उभार पर था। उसके पेट पर पडी तीन रेखाएं ऐसी प्रतीत होती थी मानो कामदेव के चढ़ने के लिए नवयौवन ने वहा नसैनी

---

१. विभावसु सारथिनेव वायुना घनव्यपायेन गभस्तिमानिव।
बभूव तेनातितरा सुदु सहः कटप्र ेदेन करीव पार्थिवः॥

रघु, सर्ग १ पद्य ३७

२. तां हसमालाः शरदीव गंगा, महौपधिं नक्तमिवात्मभास.।
स्थिरोपदेशामुपदेशकाले प्रपेदिरे प्राक्तनजन्म-विद्याः॥

३. असंभृत मण्डनमङ्गयष्टेरनासवाख्य करणं मदस्य
कामस्य पुष्पव्यतिरिक्तमस्त्र बाल्यात्परं साथ वयः प्रपेदे॥

४. उन्मीलितं तूलिकयेव चित्र सूर्यांशुभिर्भिन्नमिवारविन्दम्।
बभूव तस्याश्चतुरस्रशोभि वपुर्विभक्तं नवयौवनेन॥

५. अभ्युन्नतांगुष्ठनखप्रभाभिर्निक्षेपणाद्रागमिवोद्गिरन्तौ।
आजह्रतुस्तच्चरणौ पृथिव्यां स्थलारविन्दश्रियमव्यवस्थाम्॥

६. नागेन्द्रहस्तास्त्वचि कर्कशत्वादेकान्तशैत्यात्कदली विशेषाः
लब्ध्वापि लोके परिणाहि रूपं जातास्तदूर्वोरुपमानबाह्याः॥

कुमार सभव सर्ग १ पद्य ३०-३३, ३६

लगा[1] दी हो। उसकी बाहे शिरीष के कुसुम से भी अधिक सुकुमार थी, जान पडता था कि इसी लिए कामदेव ने पराजित होकर भी उन्हे ही कण्ठपाश बनाकर शिवजी को बन्दी कर लिया[2]। पहले, रात पड़ने पर, निवास के लिए सुषमा जब चन्द्रमा मे जाती थी तो वहां पर वह कमल की कोमलता और सौरभ आदि से वंचित हो जाती थी, और दिन के समय कमल मे आने पर उसे चन्द्रमा के सुखों से हाथ धोने पड़ जाते थे। किन्तु पार्वती के मुख मे स्थान पाकर उसे दोनों सुख एक साथ मिल गए।[3] उसके लाल होठो पर छिटकी हुई मीठी मुसकान की धवलिमा ऐसी प्यारी लगती थी जैसे लाल कोंपलो में सफेद फूल खिला हो या चमक दार मूगो के बीच मे मोती जड़ा[4] हो। उसका कण्ठ अत्यन्त सुन्दर था। उसमे से स्तनो पर लटकता हुआ गोल गोल मोतियो का हार ही उसकी शोभा को नही बढा रहा था, किन्तु उस कण्ठ मे पड़ने से हार की भी शोभा बढ़ जाती[5] थी। साधारण सुन्दर शरीर की शोभा आभूषण से बढ़ जाती है किन्तु असाधारण सुन्दर शरीर की शोभा उससे यदि घटती नही तो बढती भी नही। बिहारी ने ठीक ही लिखा है कि हे सुन्दरी, तुम आभूषण पहनती हो, उनसे क्या लाभ है? वे तो तुम्हारे स्वाभाविक रूप पर दर्पण के दाग से दीखते[6] है। कालिदास ने विक्रमोर्वशीय नाटक मे दूसरे अंक के तीसरे पद्य में

---

१ मध्येन सा वेदिविलग्नमध्या वलित्रयं चारु बभार बाला।
आरोहणार्थं नवयौवनेन कामस्य सोपानमिवप्रयुक्तम्॥

२ शिरीषपुष्पाधिकसौकुमार्यौ बाहू तदीयाविति मे वितर्कः
पराजितेनापि कृतौ हरस्य यौ कण्ठपाशौ मकरध्वजेन॥

३ चन्द्रं गता पद्मगुणान्नभुक्ते पद्माश्रिता चान्द्रमसीमभिख्याम्
उमामुखं तु प्रतिपद्य लोला द्विसंश्रया प्रीतिमवाप लक्ष्मीः॥

४ पुष्पं प्रवालोपहितं यदिस्यान्मुक्ताफलं वा स्फुट विद्रुमस्थम्
ततोऽनुकुर्याद्विशदस्य तस्यास्ताम्रौष्ठपर्यस्तरुचेः स्मितस्य॥

५ कण्ठस्य तस्याः स्तनबन्धुरस्य मुक्ताकलापस्य च निस्तलस्य।
अन्योन्यशोभाजननाद्बभूव साधारणो भूषणभूष्यभावः॥
कुमार, सर्ग १ पद्य ३९, ४१, ४३, ४४, ४२।

६ पहिर न भूषण कनक के कहि आवत इहि हेत।
दर्पण के से मोरचा देह दिखाई देत॥
और इसी आशय को उर्दू के एक कवि ने यो कहा है:—
नही मुहताज जेवर का जिसे खूबी खुदा ने दी।
कि आखिर बदनुमा लगता है देखो चॉद को गहना॥

उर्वशी के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए लिखा है कि "उसकी देह तो आभूषणों की भी आभूषण, सजावट की सामग्री को उलटा सजा देने वाली और उपमानों की भी प्रत्युपमान[1] है।" पहले लिखा जा चुका है कि उपमान चन्द्र आदि को उपमेय मुखादि से अधिक समझा जाता है तभी तो उपमेय के गुण को बढ़ाने के लिए उस उपमान की योजना की जाती है आम या अमरूद बहुत मीठे हों तो उन्हे मिशरी सा कहा जाता है न कि मिशरी की मिठास बतलाने के लिए उसे उन जैसा। महाकवि भवभूति[2] ने भी उत्तर रामचरित मे राजा जनक द्वारा कौशल्या के विषय मे कहलाया है कि ये दशरथ के गृह में लक्ष्मी के समान थी, अथवा 'समान' क्यो कहा जाए, साक्षात् लक्ष्मी ही थी।

उपमानों आदि की सहायता से सौन्दर्य चित्रण की सार्वभौमता

अभी कुमारसंभव के प्रथम सर्ग से पार्वती के नखशिख वर्णन के कुछ अंग उद्धृत कर यह दिखलाया गया है कि कवि ने उपमानों की योजना कर किस प्रकार सौन्दर्य का चित्रण किया है। किन्तु सौन्दर्य वर्णन की यह शैली भारत मे ही नही सर्वत्र प्रचलित है। टी० लौज[3] महाशय की रोजेलिंड शीर्षक वाली कविता मे भी इस उपमान

---

१. आभरणस्याभरणं प्रसाधनविधेः प्रसाधनविशेषः।
उपमानस्यापि सखे, प्रत्युपमानं वपुस्तस्याः॥ विक्रमोर्वशीय अंक २ का ३

२. आसीदियं दशरथस्य गृहे यथा श्रीः, श्रीरेव वा किमुपमानपदेन सैषा।
कष्टं बता न्यदिव दैववशेन जाता, दुःखात्मकं किमपिभूतमहोविकारः॥
अंक ४ का ६

Rosalynde

३. Like to the clear in highest sphere
Where all imperial glory shines,
Of self same colour is her hair
Whether unfolded, or in twines :
Heigh ho, fair Rosalynde !
Her eyes are sapphires set in snow,
Resembling heaven by every wink;
The Gods do fear when as they glow,
And I do tremble when I think
Heigh ho, would she were mine !
Her cheeks are like the blushing cloud
That beautifies Aurora's face,
As like the silver crimson shroud
That Phoebus' smiling looks doth grace;
Heigh ho, fair Rosalynde !

की योजना को देखिए--[१]उसका केश पाश निर्मल नील गगन के उस उच्चतम प्रदेश के समान है जहाँ तारे जगमगाते है। उसके नेत्र हिम मे जटित नीलम है और कपोल उस अरुणाभ धवल मेघ-खण्ड जैसे जो उषा के मुख को अलकृत कर रहा हो, या उस लाल रूपहले हलके धूप छाँही आवरण जैसे जो मुसकराते बाल सूर्य के मुख की शोभा को बढा दिया करता है। उसके होंठ गुलाब की उन दो कलियो से है जिनके चारो ओर कुमुद खिल रहे है। उसकी गरदन वह शानदार मीनार है जिसमे प्रेम बन्दी है और वहाँ बैठा हुआ वह उसकी दिव्य तथा पवित्र कटाक्षो की छटा को निहारा करता है उसके स्तन अन्तरिक्ष में भ्रमण करने वाले ग्रह नक्षत्रो के समान है और उनकी घुडिया आनन्द के

---

१. Her lips are like two budded roses
Whom ranks of lilies neighbour nigh,
Within which bounds she balm encloses
Apt to entice a deity :
Heigh ho, would she were mine !
Her neck is like a stately tower,
Where Love himself imprisoned lies,
To watch for glances every hour
From her divine and sacred eye :
Heigh ho, for Rosalynde !
Her paps are centres of delight,
Her breasts are orbs of heavenly frame,
Where Nature moulds the dew of light
To feed perfection with the same :
Heigh ho, would she were mine !
With orient pearl, with ruby red,
With marble white, with sapphire blue
Her body every way is fed
Yet soft in touch and sweet in view :
Heigh ho, fair Rosalynde !
Nature herself her shape admires ·
The Gods are wounded in her sight;
And Love forsakes his heavely fires
And at her eyes his brand doth light :
Heigh ho, would she were mine :
Then muse not, Nymphs, though, I be moan
The absence of fair Rosalynde,
Since for a fair there's fairer none,
Nor for her virtues so divine :
Heigh ho, fair Rosalynde,
Heigh ho, my heart ! would God that she were mine !

गोल्डन ट्रैजरी—पृ० १०, ११।

केन्द्र। उसकी देह का निर्माण चमकीले मोती, लाल पद्मराग, श्वेत स्फटिक और नीले नीलमों से हुआ है तो भी वह कोमल और मधुर सौन्दर्य वाली है, इत्यादि। विभिन्न देशो तथा जातियो की ऐसी कविताओं को पढ़ कर और यह अनुभव करके कि मानव हृदय की अनुभूतियों तथा उनके प्रकाशन में कितनी समानता है, एक उल्लास तथा सार्वभौम आत्मीयता की लहर सी दौड़ जाती है।

कालिदास की व्यंजना-प्रधान शैली

ऊपर, कालिदास द्वारा किए, पार्वती जी के नखशिख के विस्तृत वर्णन का कुछ नमूना देखा जा चुका है किन्तु कवि की प्रिय शैली वह है जिसमे वह वर्णनीय रूप की थोड़ी सी रूपरेखा देकर अपने नपे तुले किन्तु अत्यन्त व्यजक शब्दों द्वारा पाठक की विधायक कल्पना शक्ति को ऐसा उत्तेजित कर देता है कि शेष चित्र को वह आप ही पूर्ण कर उसे सहृदय की भावना के रंग से रंग देती है, और इसमें कवि सिद्धहस्त है। रघुवश के प्रथम सर्ग के प्रारम्भ में ही दिलीप[1] का वर्णन है कि उसकी छाती उभरी हुई तथा विशाल थी, सुदृढ़ कन्धे वृषभ की तरह के, डील डौल शाल वृक्ष के समान तथा भुजाएँ लम्बी थी। ऐसा प्रतीत होता था। मानो अपने कार्यों को करने में समर्थ शरीर मे साक्षात् क्षत्रिय धर्म ही आ बैठा हो। इस वर्णन मे एक लम्बे तड़ंगे, शक्तिशाली, वीर पुरुष के शरीर की सक्षिप्त रूप-रेखा मात्र है; आँख नाक सूरत शकल और रग आदि का निर्देश नही। ऐसा वर्णन पाठक की कल्पना शक्ति को जगाकर वह सामग्री दे देता है जिसका उपयोग कर, वह कुछ तो अपने पहले देखे ऐसे एक या अनेक बलवान व्यक्तियो के शरीर की बनावट के आधार पर, जिनका चित्र उसकी आँख के आगे एक दम आ जाता है, और कुछ आदर्श कल्पना के आधार पर दिलीप का ऐसा चित्र बना डालती है जो पाठक की रुचि के अनुकूल होता है। रघुवश के उक्त वर्णन को पढ़ कर भारतीय, रूसी, चीनी अफ्रीका-वासी या युरोपियन पाठक दिलीप का जो चित्र बनाएँगे वह तीन चौथाई के लगभग उनकी भावना की सृष्टि होने के कारण उसके अनुकूल और उन्हे रुचिकर होगा।

रघुवंश के छठे सर्ग में पूर्वजन्म की अप्सरा राजकुमारी इन्दुमती के

---

१. व्यूढोरस्को वृष स्कन्ध. शालप्रांशुर्महाभुजः।
आत्मकर्मक्षमदेहं क्षात्रो धर्म इवाश्रित.॥

कालिदास के सौन्दर्य-चित्र सार्वभौम और सदा नए रहने वाले हैं वे किसी देश या जाति तक सीमित नही और समय उन्हे पुराना नही कर सकता

स्वयंवर का वर्णन है। जिससे विवाह की कामना कर, इतने राजकुमार दूर दूर से एकत्र हुए, वह अवश्य ही अभूतपूर्व सुन्दरी रही होगी। किन्तु कवि ने उसके सम्बन्ध मे केवल इतना ही कहा कि वह विधाता की असाधारण रचना थी। सैकड़ो नेत्रो ने उसे एक टक देखा और देखते ही उनके केवल शरीर ही अपने स्थानों पर पड़े रह गए, हृदय[1] तो उस सुन्दरी के रूप की भूल भुलैया मे खो गए। यहाँ भी कवि ने विश्व के प्रत्येक सहृदय को पूरी छूट दे दी कि वह अपनी कल्पना की आदर्श सुन्दरी के साँचे मे इन्दुमती को ढाल ले। अत' कालिदास की इन्दुमती केवल भारतीय सुन्दरी नही अपितु विश्व सुन्दरी है। कालिदास के बनाए ये सौन्दर्य कभी पुराने नही पड सकते और इन पर माघ कविकृत सौन्दर्य की वह परिभापा खूब चरितार्थ होती है जिसमे कहा गया है कि सौन्दर्य वही है जो प्रतिक्षण नया ही नया झलकता है।

शकुन्तला असाधारण सुन्दरी थी। उसका जन्म भूतपूर्व राजा विश्वामित्र

कालिदास की शकुन्तला

द्वारा अप्सरा मेनका के गर्भ से हुआ था। तभी तो उसे देखकर रूप विस्मित दुष्यन्त ने कहा था,

"मानुषियो मे रूप यह संभव है किस भाँति ?
नही प्रकटती भूमि से प्रभा तरल यह कान्ति।"

शाकु १—२४।

कवि ने इन्दुमती की तरह ही शकुन्तला का वर्णन भी नखशिख वाली शैली से नही किया। इस कार्य के लिए उसे विधायक कल्पना की अपेक्षा सूक्ष्म आदर्श कल्पना का सहारा लेना पड़ा। शकुन्तला के सौन्दर्य-चित्र की पृष्ठभूमि तैयार करने के लिए कवि विदूषक से कहलवाता है, "जैसे मीठी खजूरो से मन उकता जाने पर किसी का मन इमली के लिए ललचाने लगता है, वैसे ही एक से एक बढ़िया रमणी रत्न के रहते भी उसे देख आपके मुँह मे पानी भर आया !" राजा बोले, 'अरे तुमने उसे देखा नही, तभी ऐसा कह रहे हो।' विदूषक ने कहा—'तब तो वह अवश्य ही अपूर्व सुन्दरी होगी जिसे देखकर आप को भी अचम्भा हो रहा है।' इस पर राजा ने उत्तर दिया 'मित्र अधिक क्या कहूँ:

---

१. तस्मिन् विधनातिशये विधातुः कन्यामये नेत्र शतैककक्ष्ये।
निपेतुरन्तः करणै र्नरेन्द्रा देहै स्थिता. केवल मासनेषु॥

रघु० सर्ग ६ पद्य ११

अंकित कर वह रूप चित्र में फूंक दिए क्या उसमें प्राण ?
क्या लावण्य राशि ले, मन से किया विधाता ने निर्माण ?
विधि के वैभव और रूप वह—दोनों पर देता हूँ ध्यान,
तो दिखती स्त्रीरत्न सृष्टि वह मुझे और ही रूप निधान ।।"

शाकु० अंक २ पद्य ९

सौंदर्य चित्रण में अतिशयोक्ति अलंकार का प्रयोग

दुष्यन्त का भाव यह है कि जब वह एक ओर शकुन्तला के उस अनूठे सौन्दर्य को देखता है और दूसरी ओर ब्रह्मा जी की रूप निर्माण क्षमता पर विचार करता है तब ललनाओ मे रत्न समान वह (शकुन्तला) कोई नई ही रचना प्रतीत होती है। जान पड़ता है कि एक आदर्श सुन्दरी के रूप का कल्पना चित्र बना उसमे जान फूँक दी है या फिर विधाता ने ही पाँच भौतिक उपादानो—अस्थि मज्जा मास आदि के स्थान पर सौन्दर्य राशि को लेकर (हाथो से नहीं) अपने केवल मानसिक व्यापार से ही उसकी रचना की है। कालिदास की इस सूझ की व्याख्या करते हुए बाण[1] लिखते हैं कि हाथो से छू जाने पर तो लावण्य की अक्लिष्टता (अछुवायापन) नष्ट हो जाती है।

कालिदास की मान्यता थी कि चित्रकार अपनी कला कृति मे यथार्थ (नायिका आदि के रूप) के दोषो को सुधार कर उसे आदर्श की ओर बढा सकता है। किन्तु यह सुधारना सँवारना वहाँ तक सह्य है जहाँ तक वह उस यथार्थ का चित्र रहे, नई चीज न बन जाए। सुघड स्त्रियाँ काजल बिन्दी तथा बहुत हल्के पाउडर आदि से अपने रूप को सँवारती है जिससे उनका यथार्थ सौन्दर्य खिल उठता है, सर्वथा ढक या बदल नही जाता। कालिदास यह भी स्वीकार करता है कि एक बार बनाए चित्र मे यदि कुछ कसर रह जाए तो उसे ठीक

---

१. मन्ये च मातङ्गजातिस्पर्शदोषभयादस्पृशतेय मनसैवोत्पादिता प्रजापतिना, अन्यथा कथमियमक्लिष्टता लावण्यस्य। नहि करतल स्पर्श-क्लेशिताना मनायवानामीदृशी भवति कान्ति. ।।

अर्थात् मै समझता हूँ कि प्रजापति ने चण्डाल जाति के स्पर्श से बचने के लिए इसे, बिना छुए, मन से ही बनाया है। नही तो लावण्य का ऐसा अछूतापन संभव नही। हाथो के लग जाने से तो सौन्दर्य की कान्ति म्लान हो जाती है। (कादम्बरी पृ० २४ निर्णय सागर प्रेस, चतुर्थ संस्करण सन् १९१२)

किया जा सकता है किन्तु दुष्यन्त अपने बनाए शकुन्तला के चित्र को देख कर कहता है कि इसमे तो उसके यथार्थ सौन्दर्य का लेश भर ही आ सका है[1] जबकि सानुमती उसके सम्बन्ध मे कहती है कि ऐसा प्रतीत होता है कि प्रिय सखी (शकुन्तला) ही मेरे सामने खडी है। इस दृष्टि भेद का रहस्य देखने वालों की भावना मे निहित है। दुष्यन्त पुरुष है और बिछुडा प्रेमी, किन्तु सानुमती स्त्री है और सखी। तुलसी ने लिखा है कि 'मोहि न नारि नारि के रूपा, पन्नगारि यह नीति अनूपा।'

उर्वशी का चित्रण

कालिदास को ब्रह्मा जी से नाराजगी है जिसका कुछ प्रकाशन उसने उक्त पद्य मे किया है किन्तु विक्रमोर्वशीय[2] मे तो कवि ने उन्हे बिल्कुल ही अयोग्य ठहरा दिया है। उर्वशी को देखकर पुरुरवा कहता है, यह बेचारे उस बूढे तापस की रचना नही हो सकती, क्योकि वेद पढ पढ कर पत्थर हो गए महाठूँठ खूसट मुनि के शिथिल हाथ भला ऐसे रूप का निर्माण कर सकते है ? इसके लिए तो, हो न हो, कमनीय कान्ति वाले चन्द्रमा ने प्रजापति का स्थान ग्रहण किया होगा या शृंगार रस के देवता स्वय कामदेव अथवा प्रचुर पुष्प सपत्ति वाले बसन्त ने इसकी रचना की होगी।

भवभूति द्वारा कालिदास का अनुसरण

बहुत संभव है कि महाकवि भवभूति के मन मे भी तब कालिदास का यही पद्य कुछ स्फुरणा दे रहा हो जब मालती के सौन्दर्य के सम्बन्ध मे वे माधव से कहलवा रहे थे कि वह मानो रमणीयता की अधिष्ठात्री देवी है या सौन्दर्य किसी ने सार के समग्र समुदाय को एकत्र कर दिया है! उसके शरीर का निर्माण स्वय कामदेव ने ब्रह्मा बन कर और चन्द्रमा, अमृत, मृणाल तथा चन्द्रिका

---

१. क—यद्यत्साधु न चित्रेस्यात्क्रियते तदत्तयन्था।
तथापि तस्या. सौन्दर्य रेखय कि चिदान्वितम्॥ शाक अंक ६ पद्य
(ख) जाने सखी अग्रतो मे वर्तते इति। शकुन्तला अक ६ मे

२. अस्या: सर्गविधौ प्रजापतिरभूच्चन्द्रो नु कान्तिप्रद:
शृंगारैकरस: स्वय नु मदनो मासो नु पुष्पाकर:।
वेदाभ्यासजड. कथ नु विषयव्यावृत्त कौतूहलो
निर्मातु प्रभवेन्मनोहरमिद रूप पुराणो मुनि॥ विक्रमो० अक १, पद्य १०

आदि सामग्री लेकर[1] किया होगा ।

इस प्रसंग मे महाकवि तुलसीदास की कल्पना की उड़ान भी देखने योग्य है। वे लिखते है कि सीताजी के सौन्दर्य का वर्णन सभव नही क्योकि एक तो वे जगत् की माता और दूसरे समस्त रूप गुणो की खान। मुझे तो उनके लिए सभी उपमाएँ तुच्छ प्रतीत होती है क्योकि कवियो ने साधारण नारियो के अगो की उनसे तुलना कर उन्हे जूठा कर दिया है। अब उनकी आवृत्ति कर कौन कुकवि होने का कलंक अपने माथे ले ? मुझे तो ससार की कोई भी नारी ऐसी सुन्दर नही दीखती जिसे उनसी कह सकूँ। सरस्वती बोलती बहुत है, पार्वती का शरीर आधा ही है, रति विधवा होने से जनम दुखिया है और वह लक्ष्मी जिसके भाई वहिन विप तथा मदिरा आदि है, उनकी समता कैसे कर सकती है ? पर यदि कोई समुद्र केवल सौन्दर्य-सुधा से भरा हो, उसमे शृगार रस रूपी मन्दर पर्वत को परम रूपमय कच्छप भगवान् की कमर पर रखकर और शोभा रूपी रस्सी से लपेट कर, यदि कामदेव अपने कर कमलों से स्वयं मथे तो सौन्दर्य और सुख की निधान जिस लक्ष्मी का जन्म होगा उसे भी कवि-गण बड़े सकोच के साथ, सीताजी से कुछ मिलती जुलती[2] कह सकेगे ।

अतिशयोक्ति की सहायता से तुलसीदास द्वारा सौंदर्य का चित्रण

---

१. (क) सा रामणीयकनिधेरधिदेवता वा सौन्दर्यसारसमुदायनिकेतनं वा ।
तस्या. सखे नियतमिन्दुसुधामृणालज्योत्स्नादिकारणमभून्मदनश्च वेधाः ॥

मालतीमाधव

(ख) सिय शोभा नहि जाइ बखानी, जगदम्बिका रूप गुण-खानी ।
उपमा सकल मोहि लघु लागी, प्राकृत नारि अंग अनुरागी ।
सीय तरुणि केहि उपमा देई, कुकवि कहाय अयश को लेई ।
जो पटतरिय तियन सम सीया, जग अस युवति कहां कमनीया ?
गिरा मुखर, तनु अरध भवानी, रति, अति दुखित अतनु पति जानी ।
विप वारुणी बन्धु प्रिय जेही, कहिय रमा सम किमि वैदेही ?
जो छवि सुधा पयोनिधि होई, परम रूप मय कच्छप सोई,
शोभारजु, मन्दर शृंगारू, मथै पाणि पकज निज मारू,
यहि विधि उपजे लच्छि जब सुन्दरता सुखमूल ।
तदपि सकोच समेत कवि कहहि सीय सम तूल ॥

राम० च० मा० बालकाण्ड

जनकपुरी की वाटिका मे उन्हे सखियो सहित देखकर श्री राम कहते है "इनसे तो उलटी सुन्दरता ही सुन्दर हो उठी है। अपनी सखियो के बीच मे ये ऐसी दमक रही है जैसे किसी चित्रशाला मे दीपावली जल रही हो। सब जानते है कि तसवीर अन्धकार मे तो दीखती ही नही, और दिन के प्रकाश मे भी उस की वह शोभा नहीं होती जो रात्रि के समय दीपक के प्रकाश मे। अत कवि का यह कथन कुछ असगत-सा प्रतीत होता है, पर बात ऐसी नही। सीता जी की सब सखिया सभवत एक से एक बढकर थीं जैसी कि शकुन्तला की प्रियवदा आदि जिन्हे देखकर राजा ने कहा था "आहा! कैसा प्यारा है इनका रूप"[1] उनमे भी शकुन्तला की तरह ही सीता जी सब से सुन्दर रही होंगी। देखा जाता है कि किसी अत्यन्त सुन्दर रूप को देख कर उसकी आनन्दमयी मोहिनी से देखने वाले की आलोचना शक्ति कुण्ठित हो जाती है, जिससे उसके समीप के कुछ उन्नीस रूप भी उसी तरह खिल उठते है जैसे दीपक के प्रकाश मे तसवीरे।

दीपशिखा वाली इस उपमा के लिए तुलसीदास रघुवश मे कालिदास की उस प्रसिद्ध उपमा के ऋणी है जिसमे इन्दुमती को उस

दीपशिखा की उपमा

सचारिणी[2] दीपशिखा के समान कहा गया है जो रात्रि के समय, किसी भवन के सामने पहुँच क्षण भर को उसे आलोकित कर आगे बढ़ जाती है। क्योकि इन्दुमती जिस राजा के सम्मुख पहुँचती थी उसका चेहरा भी क्षण भर के लिए आशा से खिल उठता था पर फिर निराशा की निशा मे निमग्न हो जाता था। कालिदास की इस उपमा को जयदेव[3] कवि ने अपने नाटक प्रसन्न राघव मे ग्रहण किया और वहाँ से तुलसीदास ने रामचरित

---

१. अहो मधुरमासां दर्शनम्। (आहा! इनका रूप कैसा प्यारा है?
शाकु० अक १ पद्य १६ के आगे।

२. सचारिणी दीपशिखेव रात्रौ यं य व्यतीयाय पतिवरा सा
नरेन्द्रमार्गाट्ट इव प्रपेदे विवर्ण भावं स स भूमि पालः ॥ रघु० सर्ग ६ पद्य

३. केथ श्यामोपलविरचितोल्लेखहेमैकरेखा
लग्नैरंगै कनककदली कन्दली गर्भगौरैः।
हारिद्राम्बु द्रवसहचरं कान्तिपूरं वहद्भिः
कामक्रीडाभवनवलभीदीपिकेवाविरस्ति ॥ प्रसन्नराघव अक

मानस में कुछ सहृदयों को यह उपमा इतनी पसन्द आई कि उन्होंने इसके आधार पर ही कालिदास का उपनाम 'दीप शिखा' रख दिया।

कालिदास की सौन्दर्य चेतना बड़ी सूक्ष्म तथा परिष्कृत है। उसकी दृष्टि वाह्य रूप की चका चौंध से झपकती नही किन्तु उसे भेद कर भीतर चली जाती है। उसके लिए रूप माधुरी वह वर है जो व्यक्ति के प्राक्तन पुण्यों का परिणाम है किन्तु यदि उसके पीछे सुन्दर हृदय नही तो वह अपूर्ण ही है। हृदय का सौन्दर्य निष्पाप हाव भाव, मधुर बोल चाल तथा साधु व्यवहार मे झलका करता है। कालिदास ने जिन पात्रो की सृष्टि की है वे वाहर भीतर दोनो तरफ से सुन्दर है। कवि ने उनके उस सौन्दर्य चित्रण के लिए जिस कथा वस्तु, कथा कथन शैली, भाव व्यजना, वाक्य रचना, एवं गुण तथा अलंकारों का प्रयोग किया है वे भी सर्वात्मना सुन्दर है और यही उसकी वड़ी विशेपता है।

कालिदास द्वारा प्रेम का परिष्कार

१. अभिज्ञान शाकुन्तल का विषय मानवीय प्रेम का चित्रण

राजा दुष्यन्त प्रणय के क्षेत्र मे पुराने अनुभवी तथा मँजे हुए खिलाडी थे। नए नए शिकार फँसा कर उनसे थोडा-सा दिल-बहलाव करना और फिर उन्हे इरावती[1] या हंसपदिका[2] की तरह, सदा के लिए तड़पते छोड देना, उनके लिए बिल्कुल साधारण सी बात थी, इसीलिए कवि ने नाटक के प्रारम्भ मे ही उनका परिचय चचल प्रेमी के प्रतीक भ्रमर तथा शिकारी के रूप मे दिया है और प्रथम अक के अन्त में फिर स्मरण करवाया है कि 'हे तपोवन के निवासियो, मृगया[3] विहारी राजा दुष्यन्त आ पहुँचा है अतः आश्रम के प्राणियो की रक्षा के लिए सावधान हो जाओ। किन्तु फिर भी सखियो की मगल कामनाएँ तथा ऋषि की साधनाएँ शकुन्तला को आपत्ति से न बचा सकी। कवि, सभवत. यह चाहता भी न था, क्योकि इस नाटक मे तो उसे मानव-लोक के प्रेमियो के व्यवहार का चित्रण अभीष्ट था। भूल कर करके गिरना और गिर-गिर कर उठना ही तो मानवता है। भूल न करना और न गिरना देवत्व मे ही संभव है और उस देवत्व का चित्रण कवि कुमारसभव मे पार्वती तथा शिव के व्यवहार द्वारा कर चुका था।

वहाँ उसने वर्णन किया है कि 'पार्वती अपूर्व सुन्दरी थी। जान पड़ता है कि विधाता के चित्त मे कुतूहल उत्पन्न हुआ कि ससार

---

१. मालविकाग्निमित्र नाटक मे राजा की उपेक्षिता एक रानी

२. अभिज्ञान शाकुन्तल के पाँचवे अक मे राजा की उपेक्षिता रानी

३. शिकार का शौकीन राजा दुष्यन्त आ पहुँचा है।
अभिज्ञान शाकुन्तल अक १ पद्य २९ के आगे।

२ कुमारसंभव का विषय दिव्य प्रेम का चित्रण शिव बाह्य रूप पर नहीं रीझते

के समग्र सौन्दर्य को यदि एकत्र कर दिया जाए तो वह कैसा हो ? और इसीलिए उसने बड़े यत्न से उस सारी सामग्री को सँजोकर तथा एक जगह संवार कर उसकी रचना[1] की थी।' 'तभी तो रति को भी लजा देने वाले उनके रूप को देखकर कामदेव के मन मे भी एक बार तो यह आशा बध गई थी कि शायद जितेन्द्रिय शिव पर भी उसका जादू[2] चल जाए किन्तु वह सफल न हुई। 'तब पार्वती मन ही मन अपने शारीरिक सौदर्य की निन्दा करती हुई उसे तप की अग्नि मे तपाकर और भी अधिक उज्वल तथा अमोघ बनाने में लग गई, क्योकि वैसा अलौकिक[3] पति तथा उस प्रकार का दिव्य प्रेम तपस्या के बिना मिल सकना भला कहाँ संभव है।'[4]

तप से पार्वती ने प्रेमी के हृदय को जीता

'पिता की अनुमति से वह अपनी सखी के साथ हिमालय के उस शिखर पर आश्रम बना कर रहने लगी, जिसका नाम, पीछे से उसके कारण ही गौरीशिखर[5] प्रसिद्ध हो गया।' 'जो कभी गेद खेलते भी थक जाया करती थी वही अब मुनियो के समान कठोर व्रत के पालन मे तत्पर हो गई

---

१ सर्वोपमाद्रव्यसमुच्चयेन यथाप्रदेशं विनिवेशितेन ।
सा निर्मिता विश्वसृजा प्रयत्नादेकस्थ सौन्दर्यदिदृक्षयेव ॥
कुमार० सर्ग १ श्लोक ४९'

२. ता वीक्ष्य सर्वाऽवयवानवद्या रतेरपि ह्रीपदमादधानाम् ।
जितेन्द्रिये शूलिनि पुष्पचाप. स्वकार्यसिद्धि पुनराशशसे ॥
कुमार० सर्ग ३ श्लोक ५७'

३. तथा समक्षं दहता मनोभव पिनाकिना भग्न मनोरथा सती ।
निनिन्द रूपं हृदयेन पार्वती, प्रियेपु सौभाग्यफला हि चारुता ॥
कुमार० सर्ग ५ श्लोक १

४. इयेप सा कर्तु ंबन्ध्यरूपता समाधिमास्थाय तपोभिरात्मनः ।
अवाप्यतेवा कथमन्यथा द्वयं तथाविधं प्रेमपतिश्च तादृशः ॥
कुमार० सर्ग ५ श्लोक २'

५. अथानुरूपाभिनिवेशतोपिणा कृताभ्यनुज्ञा गुरूणा गरीयसा
प्रजासु पश्चात्प्रथित तदाख्यया जगाम गौरीशिखर शिखण्डिमत् ॥
कुमार. सर्ग. ५ श्लोक ७

क्योंकि उसकी देह उस स्वर्ण कमल के समान थी जो सुकुमार होता हुआ भी दृढ[1] होता है। शिव के वियोगानल मे जल रही जिसे एक दिन चदन के लेप और हिमगृहो की बर्फीली चट्टानो[2] मे भी चैन न पड़ती थी, उसे अब जेठ की दुपहरी मे पचाग्नि तापन[3] सा कठिन तप करते देख आश्चर्य होता था। बरसात की अँधेरी राते, बिजली रूपी अपनी आँखो से उनकी उग्र तपस्या को देख दयार्द्र हो आँसू बहाने लगती[4] थी। माघ की रातो मे, भीषण तुषार पडने से जब सब कमल जल गए, तब भी वह जब गले-गले पानी मे खडी होकर तपस्या करती थी तब शीत से काँपते होठो वाले और स्वभाव से सुगन्धित उसके मुख से शोभित वह जल ऐसा प्रतीत होता था मानो उसमे एक कमल[5] बचा रह गया है। और वह उस अवस्था मे भी, पास ही विछोह से व्याकुल होकर क्रन्दन[6] करते चकवे चकवी के जोडे को देखकर कातर हो जाया करती थी। उसे नित्य स्नान किए, वल्कल वस्त्र पहने, और अग्निहोत्र तथा स्वाध्याय के

---

१. क्लम ययौ कन्दुकलीलयाऽपि या, तया मुनीनां चरितं व्यगाह्यत।
ध्रुवं वपुः काचनपद्मनिर्मित मृदु प्रकृत्या च ससारमेव च॥
कुमार सर्ग. ५ श्लोक. १९

२ तदा प्रभृत्युन्मदना पितुर्गृहे ललाटिकाचन्दनधूसरालका।
न जातु बाला लभते स्म निर्वृति तुषार सघातशिलान्तरेष्वपि॥
कुमार. सर्ग. ५ श्लोक. ५५

३. शुचौ चतुर्णां ज्वलता हविर्भुजां शुचिस्मिता मध्यगता सुमध्यमा।
विजित्य नेत्रप्रतिघातिनी प्रभामनन्यदृष्टिः सवितारमैक्षत॥
कुमार० सर्ग० ५ श्लोक २०।

४. शिलाशया तामनिकेतवासिनी निरन्तरास्वन्तरवातवृष्टिषु।
व्यलोकयन्नुन्मिषितैस्तडिन्मयैर्महातप. साक्ष्य इव स्थिता. क्षपाः।
कुमार० सर्ग० ५ श्लोक० २५

५. मुखेन सा पद्मसुगन्धिना निशि प्रवेपमानाधरपत्रशोभिना।
तुषारवृष्टिक्षत पद्मसम्पदा सरोज सधानमिवाकरोदपाम्॥
कुमार० सर्ग० ५ श्लोक २७

६. निनाय साऽत्यन्त हिमोत्किरानिला. सहस्य रात्रीरुदवासतत्परा।
परस्पराक्रन्दिनि चक्रवाकयो पुरो वियुक्ते मिथुने कृपावति॥
कुमार० सर्ग० ५ श्लोक २६

साथ ऐसी कठोर तपस्या करती देखकर ऋषि-गण[1] भी श्रद्धा से उसके दर्शनों के लिए आने लगे क्योंकि धर्म के क्षेत्र मे वड़प्पन का कारण आयु नही समझी जाती।'

अन्त में जब एक दिन स्वयं शिव भी ब्रह्मचारी का प्रच्छन्न वेप बना, परीक्षा के लिए उसके यहाँ पहुँचे तव अतिथियों का सत्कार करने वाली, वह उठ[2] खडी हुई और वडे सम्मान के साथ उसने आगन्तुक का सत्कार किया न कि दुष्यन्त के प्रेम मे डूवी हुई शकुन्तला की तरह वह वेखवर ही वैठी रही। जो अनन्य प्रेमी भगवान् शकर एक दिन उसके सुकुमार सौन्दर्य का तिरस्कार करके चले गए थे वे ही उसके तपस्या से मुरझाए, रूखे रूप पर रीझ गए, क्योंकि उन्होंने परीक्षा करके देख लिया कि वह इन्द्रादि[3] लोक पालों के दिव्य रूप तथा ऐश्वर्य की भूखी नही। वह मन ही मन उनके साथ पूर्ण-तादात्म्य भाव प्राप्त कर उनके चरणो पर आत्मसमर्पण कर चुकी है। तव उन्होने स्पष्ट शब्दो मे कह दिया कि 'तुमने जिसे अपनी तपस्या से जीत लिया है वही तुम्हारा यह दास तुम्हारे सम्मुख उपस्थित[4] हैं।'

सच्चे प्रेम का शिव पर प्रभाव

इस पर शकुन्तला की तरह पार्वती एक दम फिसल नही पडी। उसने सखी द्वारा कहलवा दिया कि 'यदि आप मुझसे विवाह करना चाहते हैं तो मेरे पिता पर्वतराज हिमालय से प्रार्थना कीजिए[5]।' हृदय उसका अपना था वह उसने

पार्वती ने हृदय दे दिया किन्तु शरीर नहीं

१. कृताभिषेका हुतजातवेदस त्वगुत्तरासगवतीमधीतिनीम् ।
दिदृक्षवस्तामृषयोऽभ्युपागमन्न धर्मवृद्धेषु वयः समीक्ष्यते ।।
कुमार० सर्ग० ५ श्लोक १६

२. तमातिथेयी वहुमानपूर्वया सपर्यया प्रत्युदियाय पार्वती ।
भवन्ति साम्येऽपि निविष्टचेतमा वपुर्विशेषेष्वतिगौरवा: क्रिया: ।। ३१ ।।

३. इय महेन्द्रप्रभृतीनधिश्रियश्चतुर्दिगीशानवमत्य मानिनी
अरूपहार्यं मदनस्य निग्रहात्पिनाकपाणिं पतिमाप्तुमिच्छति ।।
कुमार० सर्ग० ५ श्लोक ५३

४. अद्यप्रभृत्यवनताङ्गि तवास्मि दास. क्रीतस्तपोभिरिति वादिनि चन्द्रमौलौ ।
अह्नाय सा नियमजं क्लममुत्ससर्ज, क्लेश. फलेन हि पुनर्नवता विधत्ते ।।
कुमार० सर्ग० ५ श्लोक ८६

५. अथ विश्वात्मने गौरी सदिदेश मिथ सखीम् ।
दाता मे भूभृता नाथ. प्रमाणी क्रियतामिति ।। कुमार० सर्ग० ६ श्लोक १

शिव के चरणों में अर्पित कर दिया, किन्तु शरीर पर वह पिता का अधिकार समझती थी अतः लौकिक मर्यादा के पालन के लिए उसने अपने अलौकिक पति से भी अनुरोध किया।

शकुन्तला तथा पार्वती में अन्तर

यहां किसी पक्ष को भी उस अवधीरणा[1] की आशंका न थी जो दुष्यन्त तथा शकुन्तला के मिलन मे बाधक बनी थी, क्योंकि शकुन्तला तो पति के कुल मे दास्य तक[2] के लिए तय्यार न थी। राजरानी तथा राज माता[3] पद के लोभ ने उसके पैरो को डगमगा दिया था। वहा पर वह निःस्वार्थ प्रेम न था जिसमे अभिमान तथा द्वित्व के लिए स्थान नही रहता और जिसका वर्णन कबीर ने इस प्रकार किया है :—

पीया चाहे प्रेम रस राखा चाहे मान,
एक म्यान में दो खड़ग-देखा सुना न कान।

प्रेम का प्रारभ उस वासना से होता है जो प्रेमी को प्रेमभाजन के प्रति ऐसा आकृष्ट कर देती है कि प्रेमी उसे केवल अपनी ही संपत्ति बना कर तथा छिपा कर रख लेना चाहता है। वह उसे अपने मे विलीन कर लेने की इच्छा रखता है और कहता है कि

नैनो अन्तर आव तू, नैन झांप तोहि लेव।
ना मैं देखों और को, ना तोहिं देखन देव॥

---

१. अय स ते तिष्ठति सगमोत्सुको विशंकसे भीरु यतोऽवधीरणाम्।
लभेत वा प्रार्थयिता न वा श्रियं, श्रिया दुराप. कथमीप्सितो भवेत्॥
अभि० शा० अंक ३ श्लोक १६

२. यदि यथा वदति क्षितिपस्तथा त्वमसि; किं पुनरुत्कुलया त्वया।
अथ तु वेत्सि शुचिव्रतमात्मन. पतिकुले तव दास्यमपि क्षमम्॥
अभि० शा० अंक ५ श्लोक ३०

३. शकुन्तला उवाच—यदि धर्मपथस्त्वेपः, यदि चात्मा प्रभुर्मम
प्रदाने पौरवश्रेष्ठ, शृणु मे समय प्रभो।
सत्यं मे प्रतिजानीहि यथा वक्ष्याम्यहं रहः।
मयि जायेत यः पुत्र· स भवेत्त्वदनन्तरम्,
युवराजो महाराज, सत्यमेतद् ब्रवीमि ते।
यद्येतदेवं दुष्यन्त, अस्तु मे संगमस्त्वया॥
महाभारत आदि पर्व अध्याय ७३, पद्य १५—१७।

किन्तु ज्यों ज्यों प्रेम परिपक्व होता है त्यों त्यों पासा पलटता जाता है तथा प्रेमी प्रेम भाजन का ध्यान करते-करते अपने आपको उसमे विलीन कर देता है और कहता है--

तूं तूं करता तूं भया, मुझमें रही न हूं ।
वारी तेरे नाम पर, जित देखूं तित तूं ।।

इस अवस्था मे पहुँच कर वासना का लोहा आत्मसमर्पण-रूपी पारस के स्पर्श से प्रेम-रूपी खरा सोना वन जाता है। जब 'अहं' ही न रहा तब अभिमान का तो प्रश्न ही नही उठता । क्योंकि

जब मैं था तब हरि नही, जब हरि तब मै नाहिं।
प्रेम गली अति साँकरी तामे दो न समाहिं ।।

ऐसे प्रेम के मार्ग पर चलना खाँडे की धार पर चलने के समान है क्योकि--

सीस उतारे, भुंइ धरे, तापर राखें पाँव ।
दास कवीरा यो कहे ऐस होय तो आव ।।

प्रेम के देवता का मन्दिर उस टापू में है जिसके चारों ओर आँसुओं का खारा समुद्र लहराया करता है और जिसमें सदा आहों का तूफान उठता रहता है। तभी तो—

हँस हँस कत न पाइया, जिन पाया तिन रोय ।
हाँसी खेले पिय मिले, कौन दुहागिन होय ।।

प्रिय को रोकर प्राप्त किया जाता है हँस खेल कर नहीं

पार्वती ने भी आँसुओ के इस समुद्र को पार करके ही शिवजी को प्राप्त किया था तभी तो उसकी सखी ने ब्रह्मचारी को कहा था कि प्रेम-मग्न हो, महादेव जी के गुण गीत गाते-गाते, जब इनका गला रुँध जाता था, तो साथ गाने वाली किन्नर राजकुमारिया भी इन के दु.ख से दु.खी हो, रोने लगती[1] थी। इन्हे यहा आकर तप करते हुए इतने दिन हो गए हैं कि इनके लगाए जिन वृक्षों ने गुरु से ही साक्षी बन इनके कठोर तप को देखा है वे तो फलने लगे किन्तु प्रिय-मिलन के इनके मनोरथ में अभी तक अकुर भी जमते नहीं दीखते[2]। इन्हे इस अवस्था में देख कर, हमारी आँखे

---

१. उपात्तवर्णे चरिते पिनाकिनः सवाष्पकण्ठस्खलितैः पदैरियत् ।
अनेकश. किन्नरराजकन्यका वनान्तसंगीतसखीररोदयम् ।

२. द्रुमेषु सख्या कृतजन्मसु स्वयं फलंतप. साक्षिषु दृष्टमेष्वपि ।
न तु प्ररोहाभिमुखोऽपि दृश्यते मनोरथोऽस्याः शशिमौलिसंश्रयः ।।

भी रह रह कर, डबडवा आती है पर सूखा पड़ने से झुलस रही जुती भूमि पर प्रथम वृष्टि की तरह, इन पर इनके प्रेम भाजन के कृपाकण कब बरसेगे यह पता नही ? (कुमार सर्ग ५ श्लोक ५६ तथा ६०, ६१)

पार्वती ने प्रेम मे कर्त्तव्य की उपेक्षा नहीं की।

उधर शकुन्तला को फुलवारी मे घूमते हुए और हँसते खेलते ही राजा का जो प्रेम मिल गया था, और जिसके प्रभाव से अभिभूत हो वह अपने कर्त्तव्य कर्मो को भी भूल दुर्वासा[2] ऋषि के शाप का पात्र बन गई थी, वह उसी प्रकार जाता भी रहा और उसके वदले मे मिले कलंक[3] तथा घोर तिरस्कार। किन्तु पार्वती ने प्रेम विभोर होकर भी कभी धर्म की—अपने कर्त्तव्य कर्मो की उपेक्षा नही की। कवि ने उन्हे, अतिथियो[4] की सेवा करने वाली तथा शकुन्तला को अतिथिपरिभाविनी[5] लिखा

१. न वेद्मि स प्रार्थितदुर्लभ. कदा सखीभिरस्त्रोत्तरमीक्षितामिमाम्।
तपः कृशामभ्युपपत्स्यते सखी वृषेव सीतां तदवग्रहक्षताम्॥
कुमार० सर्ग ५ के श्लोक ६१

२. दुर्वासा—अरी ओ, अतिथि का अनादर करने वाली,
तू होकर एकाग्र, सोचती जिने निरन्तर,
नही रही है जान उपस्थित मुझे यहाँ पर,
तुझे जायगा भूल, प्रबोधन होगा निष्फल,
जैसे बीती बात भूल जाता है पागल॥
अ० शा० अक ३ पद्य १

३. राजा (कान मूँदकर)
शिव! शिव! भगवान ऐसे काम से बचाए,
क्यों इस भाँति कलंकित करती हो, अपने कुल का शुभनाम,
और हमें भी पतित वनाकर किया चाहती हो बदनाम,
जैसे-कूल पातिनी सरिता कलुपित करती निर्मल नीर,
और गिरा देती है तरु को, खड़ा हुआ जो उसके तीर॥
अभि० शा० अंक ५ श्लोक २१

४. अतिथियों का सत्कार करने वाली पार्वती ने वड़े आदर के साथ उसकी अगवानी की।
कुमार० सर्ग० ५ श्लोक ३१

५. इसी पृष्ठ पर पहला फुटनोट।

है—इसमें उसका विशेप अभिप्राय प्रतीत होता है । शकुन्तला, उर्वशी[1] तथा (मेघदूत के) यक्ष[2] के प्रेम में जो कर्त्तव्य विमुखता या लोक धर्म की अवहेलना देखी जाती है वह पार्वती की प्रेम साधना मे नही। तभी शिव जी ने उसे देखकर कहा था "हे प्रेममयी, मुझे तो धर्म भी आज त्रिवर्ग मे से इसलिए विशेप प्रिय लग[3] रहा है क्योंकि तुमने अर्थ तथा काम को छोड़ कर उसे ही अपना लिया है ।' ऐसे धर्म-युक्त प्रेम का ही तो लोक अभिनन्दन करता है तथा देवता और ऋपि भी उसमे शाप आदि द्वारा वाधा न डाल कर उलट सहायक ही वनते हैं ।

अनुराग का प्रारम्भ वासना से होता है और उसको पूर्णता प्रेम में । वह निष्कारण होता है

प्रम, प्रारम्भ में प्राय इंद्रियजन्य अर्थात् वासनात्मक हुआ करता है, क्योकि उसका आधार प्रेमभाजन के केवल वाह्य रूप रंग, वोल चाल, वाँकी-चितवन या मीठी मुस्कान आदि ही हुआ करते है । इसीलिए भवभूति ने उसे अहेतुक[4] कहा है और लिखा है कि जो प्रेम विना ही कारण उत्पन्न हो जाता है उसे कोई कैसे हटा सकता है क्योकि वह तो दो हृदयो को भीतर ही भीतर सी देता है ? प्रेम प्रेमभाजन के गुणो या अनुकूल कार्यो पर नही प्रत्युत प्रेमी के हृदय पर निर्भर होता है । प्रेम भाजन को देख

---

१. (क) भरत मुनि उर्वशी से 'तूने मेरे उपदेश को अवहेलना की अत. तुझे दिव्यलोक से गिरना पडेगा ।'

विक्रमोर्वशीय अक ३, मे विप्कम्भक।

(ख) चित्रलेखा—'तव वह (उर्वशी) पति के मनाने की परवाह न करती हुई, गुरुजी के शाप के कारण हतवुद्धि हो, स्कन्द देवता की वनाई मर्यादा का उल्लघन कर, उनके उन तपोवन में चली गई जहाँ स्त्रियो का जाना निपिद्ध था, और वहाँ जाते ही वह लता वन गई ।'

विक्रमो० अंक ४ का प्रवेशक।

२. एक यक्ष अपनी पत्नी के प्रेम मे ऐसा अन्धा हो गया कि उसे अपने कर्त्तव्यो का भी ध्यान न रहा । इस पर यक्षराज कुवेर ने रुष्ट होकर उसे एक वर्प तक अपनी पत्नी से अलग, परदेश मे रहने का शाप दे दिया।

मेघदूत पद्य १

३. अनेन धर्मः सविशेपमद्य मे त्रिवर्गसारः प्रतिभाति भाविनि ।
त्वया मनोनिर्विपयार्थकामया यदेक एव प्रतिगृह्य सेव्यते ।।

कुमार० सर्ग० ५ पद्य ३८

कर वह तो प्रेमी के अपने हृदय मे से स्वयं ही ऐसे प्रकट हो जाता है जैसे सूर्य का उदय होने पर कमल खिल उठता है या चन्द्रमा को देखकर चन्द्रकान्त[1] मणि द्रवित होकर जल टपकाने लगती है। यह भी सभव है कि प्रेम भाजन प्रेमी के प्रेम का कुछ भी प्रतिदान न करे या उलटे उसका तिरस्कार[2] ही कर दे और तो भी प्रेमी का प्रेम शिथिल न पड़े।। भवभूति[3] ने प्रेमभाजन को बैंक में, या भूमि में दबाकर धरे उस धन के समान कहा है जो किसी उपयोग मे न आता हुआ भी आनन्द का कारण बनता है। कभी कभी यह प्रेम आँख से आँख मिलने पर प्रथम दर्शन मे ही उत्पन्न हो जाता है और अनेक अनुकूल तथा प्रतिकूल परिस्थितियो मे से निकलता हुआ चरम उत्कर्ष तक पहुँच जाता है किन्तु कभी आँखो से ओझल होते ही वह काफूर भी हो जाता है। इस विविधता का कारण प्रेमी का हृदय ही है। यदि उसके स्वभाव मे स्थिरता है तब तो किसी वस्तु या व्यक्ति के प्रति उत्पन्न हुआ उसका आकर्षण लोभ या वासना के निम्न स्तर से उठ कर स्नेह और प्रेम के उस दर्जे तक पहुँच जाता है जिसका वर्णन भवभूति ने श्री राम के मुख से इस प्रकार करवाया है—

"यह हमारी एकान्त कामना है कि हमारा तथा सीता देवी का यह दाम्पत्य सम्बन्ध अविच्छिन्न चलता रहे जो सुख तथा दुख मे बदलता नही, जो जीवन के सब उतार चढ़ावो मे समान बना रहता है, जिसकी छाया मे पहुँचकर

---

४. अहेतु पक्षपातो यस्तस्य नास्ति प्रतिक्रिया।
स हि स्नेहात्मकस्तन्तुरन्तर्भूतानि सीव्यति॥
उत्तर० रा० च० अक ५ श्लोक १७

१. व्यतिषजति पदार्थानान्तर: कोपि हेतुर्न खलुबहिरूपाधीन् प्रीतय. सश्रयन्ते।
विकसति हि पतगस्योदये पुण्डरीकं द्रवति च हिमरश्मवुद्गते चन्द्रकान्तः॥
उत्तर राम० अक ६ श्लोक १२

२. (क) कुर्वन्नपि व्यलीकानि य: प्रिय: प्रिय एव स:।
अनेकदोषदुष्टोऽपि काय कस्य न वल्लभः॥
(ख) So true a fool is love, that in your will,
Though you do any thing, he thinks no ill.
शेक्सपीयर, गो० ट्रे० पृ० ७

३. न किचिदपि कुर्वाण. सौख्यैर्दु.खान्यपोहति।
तत्तस्य किमपि द्रव्य यो हि यस्य प्रियोजन.॥
उत्तर रामचरित० अक ६ श्लोक ५

व्यथित हृदय को विश्राम मिलता है, बुढापे में वाह्य सौन्दर्य के नष्ट हो जाने पर भी जिससे जीवन-रस मे कमी नही आती, और जिसका आधार वह प्रेमसार है जो वहुत दिनो साथ रहने के कारण, हृदय के सव पर्दों के हट जाने से परिपक्वता को प्राप्त हो जाया करता[१] है।"

सच्चे प्रेम पर केरयू का कथन

श्री कैरियू महोदय ने अपनी 'दि ट्रू ब्यूटी' नामक कविता मे कहा है कि 'जो व्यक्ति गुलावी गालो से प्रेम करता है या मूगे जैसे लाल लाल होठो पर फिदा हो जाता है, जिसे अपने प्रेम की आग को सुलगती रखने के लिए तारो जैसी आँख के सौन्दर्य-रूपी ईंधन की जरूरत पड़ती है, उसके प्रेम की ज्वाला तो तभी वुझ जाती है जव वुढ़ापा इनके सौन्दर्य को नष्ट कर देता है। किन्तु कोमल और दृढ़ मन, सुन्दर विचार और भद्र अभिलापाएँ तथा दोनों तरफ से होने वाले प्रेम से आवद्ध हृदय जिस प्रेम को उत्पन्न करते है वह कभी नही मरता। जहाँ ये नही उन सुन्दर गालों, होठों या आँखो से मुझे तो नफरत[२] है।' ऐसा प्रेम विघ्न वाधाओं से रुकता नही, प्रत्युत और तीव्र हो जाता है।

कालिदास

कालिदास ने विक्रमोर्वशीय नाटक में लिखा है कि[३] 'जैसे पहाड़ की ऊँची नीची चट्टानों के बीच

---

१. अद्वैतं सुखदु.खयोरनुगतं सर्वास्ववस्थासु यत्
विश्रामो हृदयस्य यत्र, जरसायस्मिन्न हार्यो रस
कालेनाऽऽवरणात्ययात्परिणते यत् प्रेमसारे स्थित
भद्र तस्य सुमानुपस्य कथमप्येकं हि तत्प्राथ्यते ॥
उत्तर राम० प्रथम अक २ श्लोक ३९

2. He that loves a rosy cheek
Or a coral lip admires,
Or From star like eyes doth seek
Fuel to maintain his fires;
As old time makes these decay
So his flames must fade away
But a smooth and stead fast mind
Gentle thoughts and calm desires,
Hearts with equal love combined,
Kindle never dying fires :
Where these are not, I despise
Lovely cheeks or lips or eyes. G.T. Page 75

३. नद्याइव प्रवाहो विपमशिला संकटस्खलितवेग ।
विघ्नितसमागमसुखो मनसि वशय: शतगुणो भवति ॥
विक्रमो० अंक ३ श्लोक ८

मे आ पडने से नदी का वेग और भी बढ जाता है वैसे ही मिलन के मार्ग मे आई बाधाएँ प्रेम नदी के प्रवाह[1] को अधिक प्रबल बना देती है।' अँग्रेजी कवि शेक्सपीयर ने भी लिखा है 'मै तो यह स्वीकार नही करता कि कोई भी बाधा सच्चे प्रेमी हृदयों के मिलने को रोक सकती है। वह प्रेम ही क्या जो अवसर देख कर बदल जाए या विरोध के सामने सिर झुका ले। प्रेम तो वह स्थिर लक्ष्य है जो बड़े तूफानो मे भी ओझल नही होता। समुद्र मे जा रही नौकाओ के लिए वह ऐसा ध्रुव तारा है जिस की ऊँचाई भले ही नप जाए, पर उसका मूल्याकन सभव नही। समय प्रेम को ठग नही सकता, यद्यपि गुलाबी गालो और लाल होठो का सौन्दर्य उसकी लपेट मे आकर नष्ट हो जाता है। घण्टे, सप्ताह आदि समय की छोटी इकाइयाँ प्रेम को बदल नही सकती, वह तो प्रलय पर्यन्त स्थिर रहने वाला है।

सच्चे प्रेम के विषय शेक्सपीयर के भाव

पर, जिन प्रेमियो के स्वभाव मे इस प्रकार की स्थिरता नही होती वे सदा ही रग बदला करते है। ऐसी ही एक प्रेमिका का मनोरजक चित्र किसी अँग्रेजी कवि ने निम्नलिखित पक्तियो मे चित्रित किया है :—

चंचल अस्थिर प्रेम प्रेम नहीं, केवल क्षणिक वासना है

"जब[2] सूर्य अपनी उष्ण किरणो से पर्वतो तथा घाटियों मे फलो को दग्ध कर रहा था तब फिलन नामक चरवाहा

1. Let me not to the marriage of true minds
Admit impediments Love is not Love
Which alters when it alteration finds,
Or bends with the remover to remove :
O no ! it is an ever fixed mark
That looks on tempests, and is never shaken,
It is the star to every wandering bark,
Whose worth's unknown although his height be taken.
Love's not times fool, though rosy lips and cheeks
Within his bending sickle's compass come;
Love alters not with his brief hours and weeks
But bears it out ev'n to the edge of doom :
If this be error, and upon me proved
I never writ not man ever loved. G.T. Page 15

2. While that the sun with his beams hot
Scorched the fruits in vale and mountain,

(प्रेमी), जिसे लोग वहुत दिनों से भुला चुके है, एक हरे बाँझ (ओक) वृक्ष के नीचे, निर्मल, स्रोत के किनारे बैठकर, अपनी बाँसुरी पर यह राग निकाल रहा था—

'जा जा जा विश्वास घातिनी कुटिल प्रेमिका अरी चपल,
देख नये प्रेमी को तेरा जाता है मन मचल मचल। जा जा जा ···
जब तक मैं था तेरे आगे, मैं ही था तेरा प्यारा,
मैं था तेरा दिलोजान, मै तेरी, आँखों का तारा,
मेरे लिए तड़पती थी तू, कितनी आहे भरती थी ?
जलती मेरी प्रेम ज्वाल में, मुझ पर ही बस मरती थी,
पर वह तेरा प्रेम तीन दिन ही मुझ पर केवल वरसा,
सूख गया फिर तीन दिनों में, प्यासा ही मुझ को तरसा ॥
जा जा जा ···

Philon the shepherd, late forgot,
Sitting beside a crystal fountain,
In shadow of a green oak tree
Upon his pipe this song played he :
Adieu Love, adieu Love, untrue Love :
Untrue Love, untrue Love, Adieu Love ;
Your mind is light, soon lost for new Love.
So long as I was in your sight
I was your heart your soul and treasure :
And ever more you sobb'd and sigh'd
Burning in flames beyond all measure :
Three days endured your love to me,
And it was lost in other three ! Adieu Love, Adieu Love...
Another shephered you did see
To whom your heart was soon enchained
Full soon your love was leapt from me
Full soon my place he had obtained.
Soon came a third, your love to win
And we were out and he was in.
Adieu Love, Adieu Love...........
Sure you have made me passing glad,
That you your mind so soon removed,
Before that I the leisure had
To choose you for my best beloved :
For all your love was past and done
Two days before it was begun :
Adieu Love, adieu Love.....
Golden Treasury Page 25

इन्ही दिनो एक नया चहेता तेरी नजरों मे आया,
फिसल गया दिल तेरा उस पर, वह ही था तुझको भाया,
मुझे निकाल दिया तब तूने दिल से, बाहर खड़ा किया,
पर तब ही आ एक तीसरे ने दिल तेरा चुरा लिया
हम दोनों रह गए देखते हमने कड़वा घूंट पिया। जा जा जा ···

इस प्रकार के चंचल प्रेम तथा एक कुलटा की भावना मे क्या अन्तर है जो किसी से कह रही है कि जब मैं कुंवारी थी तब भी अकेली नही सोई, और कोई भी ऐसा पुरुष नही जिसे मैंने अपना प्रेमी न समझा हो। इस तत्परता से अपने कुल की मर्यादा का पालन करने के कारण, जगत का उपकार करने वाले देवता[1] अवश्य ही मुझ पर कृपा करेंगे।

मालविकाग्निमित्र में प्रेम

संभव है कि कालिदास ने जब मालविकाग्निमित्र नाटक की रचना की थी तब तक उसने अपने जीवन मे उस गंभीर तथा स्थायी प्रेम के रस का साक्षात् अनुभव न किया था जिसका चित्रण कुमारसभव तथा शाकुन्तल मे हुआ है। इसीलिए उसका नायक वह शठ[2] है जो चुपके चुपके किसी स्त्री के प्रेम मे फस कर अपनी पत्नियो की उपेक्षा करने लगता है और भेद खुलजाने पर भी वह इरावती को कहता है कि तुमने शठ कह कर जो मेरा तिरस्कार किया है वह तो कोई नई बात[3] नही, क्योकि मैं तो तुम्हारा जाना बूझा ही हूं। जब वह नाराज होकर अपनी करधनी से राजा को पीटना चाहती है तो वह उसका हाथ पकड़ लेता है और उसे मनाने लगता है। पर जब वह वहां से रूठी ही चल देती है तब राजा अपने मित्र विदूषक से कहता है कि यह

---

१. मया कुमार्याऽपि न सुप्तमेकया न जारमुत्सृज्य पुमान् विलोकितः।
अनेन गोत्रस्थितिपालनेन मे सदा प्रसन्नाऽस्तु भवोपकारिणी॥

२. शठ नायक का लक्षण ···शठोऽयमेकत्र बद्धभावो यः।
दर्शितबहिरनुरागो विप्रियमन्यत्रगूढ माचरति॥
सा० द० परि० ३ श्लोक ६७

३. शठ इति मयि तावदस्तु ते परिचयवत्यवधीरणा प्रिये।
चरणपतितया न चण्डितां विसृजसि मेखलयापि याचिता॥
माल० मि० अक ३ पद्य २०

भी अच्छा ही हुआ क्योंकि कुछ देर के लिए उससे पीछा तो छूटा'। इस नाटक मे प्रेम के उसी रूप का वर्णन हुआ है जो तात्कालिक समाज में या राजाओ के अन्त:पुरो में प्राय. चलता था। इसमे नायक को यथार्थवाद से उठा कर आदर्शवाद की ओर ले चलने का प्रयत्न कवि ने नही किया। रानी के व्यवहार में उस आत्म-त्याग की कुछ झलक अवश्य पाई जाती है जो पति की प्रसन्नता के लिए, भारतीय नारियां सदा से करती आ रही है।

विक्रमोर्वशीय नाटक की नायिका उर्वशी एक अप्सरा है। उसकी उद्दाम वासनाएँ संयम की सीमाओं को स्वीकार नही करती।

विक्रमोर्वशीय में प्रेम पुरुरवा के साथ प्रथम परिचय के कुछ क्षणों में ही उसका व्यवहार शालीनता को लॉघ जाता है। इन्द्र सभा मे खेले जा रहे नाटक मे अपने प्रेमोन्माद के कारण वह प्रमाद कर बैठती है और भरतमुनि के शाप से मर्त्यलोक मे उतरती है। थोड़े से ही परिचय के बाद वह राजा के साथ आँख मिचौनी खेलने की धृष्टता करती है जो कि किसी नई कुल वधू के लिए संभव नही। वह पति-समागम सुख के लिए पुत्र का त्याग कर देती है जैसा कि मेनका ने अपनी पुत्री का कर दिया था। इस नाटक का नायक पुरुरवा वीर अवश्य है। वह भी असुरो का संहार करता है और राज काज को मन्त्रियो पर छोड़ चल देता[2] है किन्तु दुष्यन्त की तरह दुर्जय दानव गणों से युद्ध करने के लिए नही पर स्वर्ग के वनो मे उर्वशी के साथ सुहागराते मनाने के लिए। वहां भी उर्वशी स्कन्द[3] के शाप का पात्र बन कर जड़ हो जाती है। और जब उस शाप से उसकी मुक्ति होती है तो वह राजा के साथ पुन. मर्त्य भूमि पर आ जाती है।

---

१. मन्ये प्रियाहृतमनास्तस्याः प्रणिपातलघनं सेवाम्।
एवहि प्रणयवती सा शक्यमुपेक्षितु कुपिता॥
माल० मि० अंक ३ श्लोक २३

२. चित्रलेखा—राजा पुरुरवा ने राजकाज सचिवों पर छोड दिया है और उर्वशी उसे सुहागरात के लिए गन्धमादन पर्वत पर ले गई है……।

३. वहाँ पर वह पति के मनाने की परवाह न करती हुई रूठकर कुमार वन में चली गई जहाँ स्त्रियों का प्रवेश निषिद्ध था और जाते ही उपवन की लता के रूप मे बदल गई। विक्रमा० अंक ४ प्रवेशक।

अभिज्ञान शाकुन्तल में प्रेम

जान पड़ता है कि राजा दुष्यन्त भी अपने जीवन के पूर्व भाग में अग्निमित्र या पुरुरवा से कुछ भिन्न न था किन्तु घटना चक्र ने तृप्ति से पूर्व ही शकुन्तला को उससे पृथक् कर दिया जिससे रघुवश के अन्तिम राजा अग्निवर्ण की रानिया डरा करती थी। वहा लिखा है कि उसका मन नित्य नई नई भोग-सामग्री के लिए लालायित रहता था जिससे उसका जी भर जाता, उसे वह छोड़ देता था। इस लिए, स्त्रिया उससे इतना ही समागम करती थी जितने से उसका मन उनसे उब न जाए[1]। (रघुवश सर्ग १९ पद्य १६)' शकुन्तला के विरह ने ही पश्चात्ताप की आग मे जला कर राजा के प्रेम को परिष्कृत कर दिया। परिष्कार की इस प्रक्रिया को दिखलाना ही कवि का वह लक्ष्य प्रतीत होता है जिसके लिए उसने अभिज्ञान शाकुन्तल नाटक की रचना की थी।

महाभारत की शकुन्तला और कालिदास

इस नाटक के प्रारभिक अङ्कों मे शकुन्तला के प्रति राजा का प्रेम वह वासना-मात्र था जिस पर छठे अंक के शुरू में रानी हस-पदिका ने, एक गीत गाकर तीखा व्यग्य किया था। उस वासना का कारण, युवक युवतियो की, एक दूसरे के प्रति वह रति या[2] स्वाभाविक आकर्षण हुआ करता है जो एक आयु मे सभी युवक युवतियो के हृदयो को आन्दोलित कर दिया करता है। शकुन्तला भी उस चचलता की शिकार हो गई थी, किन्तु उसके सभल न सकने का वास्तविक कारण वह स्वार्थ भावना थी जिसका पता महाभारत[3] के उस प्रसग से चलता है जिसमे वह अपने शारीरिक सपर्क के लिए राजा के सामने यह शर्त रखती है कि उसके गर्भ से उत्पन्न पुत्र ही राज्य का उत्तराधिकारी होना चाहिए। कालिदास ने भी नाटक के छठे अक मे शकुन्तला[4] के निम्नलिखित वाक्य से इसी ओर सकेत किया

---

१. तस्य सावरणदृष्टसधयः, काम्यवस्तुपु नवेषु सगिनः।
वल्लभाभिरुपसृत्य चक्रिरे साभिभुक्तविपया समागमाः।
रघु० सर्ग० १९ पद्य १९

२. रतिर्मनोनुकूलेऽर्थे मनसः प्रवणायितम्।
साहित्य दर्पण परिच्छेद ३, कारिका १७६

३. महाभारत आदिपर्व अध्याय ७३, पद्य १५-१७

४. शकुन्तला—आर्यस्य परिणय एव सन्देह कुतः इदानी मे दूराधिरोहिण्याशा ?
अभि० शा० अक ५ पद्य १९ के आगे

है, 'जब आर्यपुत्र को विवाह मे ही सन्देह है तो मेरी दूसरी बड़ी बड़ी आशाओं पर तो बस पानी ही फिर गया। कालिदास सौन्दर्योपासक कवि था, उसे महाभारत की शकुन्तला की यह सौदेबाजी अच्छी न लगी। उसने उसे बिल्कुल हटाया तो नही किन्तु अपने कौशल से ऐसा सँवार दिया कि वह अब सहृदय की आँखो मे खटकती नही। कवि की लेखनी ने महाभारत की लोह मयी या रजत-मयी शकुन्तला को हिरण्मयी बना दिया या कहिए कि केवल प्रेममयी बना दिया। छैनी की नोक से छिले बिना पत्थर और आग में जले बिना सोना सुन्दर मूर्ति नही बन सकता।

प्रेम के परिष्कार के साधन पश्चाताप तथा विरह

शकुन्तला को प्रेम की मूर्ति के रूप मे ढालने के लिए कवि को पश्चात्ताप और विरह का सहारा लेना पड़ा। उसने लिखा है कि कुछ लोगो का कथन है कि विरह[1] स्नेह को नष्ट कर देता है, पर सच पूछो तो मनचाही वस्तु न मिलने पर उसकी चाह और भी प्रबल हो उठती है और उससे वह स्नेह निखर कर प्रेम की राशि बन जाता है। प्रेम के पारखी कहते है कि विरह के बिना प्रेम पुष्ट[2] ही नही होता। प्रेमी विरह में भी एक प्रकार का आनन्द अनुभव किया करते है और कहते[3] है कि सयोग तथा विरह के विकल्प मे हमे तो विरह ही अधिक भाता है। क्योकि सयोग के समय एक ही प्यारी के समागम का सुख मिलता है पर विरह मे ससार ही प्रियामय हो जाता है।

एक अंग्रेजी[4] कवि ने भी विरह की महिमा का बखान इस प्रकार किया है

---

१. स्नेहानाहुः किमपि विरहे ध्वसिनस्तेह्यभोगा—
   दिष्टे वस्तुन्युपचितरसाः प्रेमराशीभवन्ति। उत्तर मेघ, पद्य १०९

२. न विना विप्रलम्भेन संभोगः पुष्टिमश्नुते।
   सा० द० परिच्छेद ३, कारिका

३. सगमविरहविकल्पे वरमिह विरहो न सगमस्तस्याः।
   संगे सैव तथैका, विरहे जगदेव तन्मय मन्ये ॥

4. Absence, hear thou my protestation
   Against they strength,
   Do what thou canst for alteration :
   For hearts of truest metal
   Absence doth join and time doth settle.
   Who loves a mistress of such quality,

विरह पर एक अंग्रेज कवि

कि 'हे विरह, तू अपनी शक्ति, मिलन मे देर तथा देश की दूरी के प्रति मेरे इस प्रतिवाद को कान खोल कर सुन ले। मेरे प्रेम को शिथिल करने के लिए तू जो चाहे, कर देख, क्योकि जो हृदय खरे तत्त्व के बने होते है उन्हे तो विरह मिला देता है और समय जमा देता है। यदि कोई ऐसी प्रेमिका से प्रेम करता है तो उसे शीघ्र ही यह अनुभव हो जाता है कि प्रेम का आधार जहां स्थित है वहा दूरी, देर तथा मृत्यु की भी पहुँच नही। जो हृदय रंग बदलना नही जानते, उनका प्रेम-भाजन विरह के क्षणो मे भी उनसे अलग नही होता। मुझे विरह का एक लाभ यह भी प्रतीत होता है कि उस समय, मैं उसे अपने हृदय के एक ऐसे बद कोने मे पकड़ पाता हू जहा और कोई उसे नही देख सकता। वहां मै उसे अपने बाहु पाश में जकड़ लेता हूं और उसके होठ को चूम लेता हू। इस प्रकार विरह मे भी मुझे उसके मिलन तथा चिन्तन दोनो का आनन्द एक साथ प्राप्त हो जाता है।"

महाकवि टैनिसन[1] ने भी अपनी एक प्रसिद्ध कविता मे लिखा है कि बिगुल प्रतिध्वनि पहाड़ी घाटियो की दूरी मे मन्द मन्दतर होकर अन्त मे समाप्त हो जाती है किन्तु दो हृदय की घाटियो मे उठी प्रेम की ध्वनि प्रतिध्वंनि तो उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती है।

He soon, hath found
Affection's ground
Beyond time, place and all mortality.
To hearts that can not vary
Absence is Present Time doth tarry.
By absence this good means I gain,
That I can catch her,
Where node can watch her,
In some close corner of my brain :
There I embrace and kiss her.
And so I both enjoy and miss her.

Golden Treasury Page 7

1. "The splendour falls ...."
... .
....
I love, they die in yon rich sky,
They faint on hill, or field or river :
Our echoes roll from soul to soul,
And grow for ever and for ever,
Blow, bugle, blow, set the will echoes flying.
And answer, echoes, answer dying dying dying.

विरह की प्रशंसा करते हुए कबीर[१] कहते है कि विरह को विरह न कहो, वह तो महाराज है। जिस हृदय में कभी विरह की पीर नही उठी उसे श्मशान समझो। विरह ही वह संजीवनी है जिसने संसार के प्रेमी तथा प्रेमिकाओं को अमर कर दिया है। यदि कण्व जी द्वारा भेजी शकुन्तला को दुष्यन्त ने तुरन्त स्वीकार कर लिया होता तो आज उसका नाम भी कोई न जानता। किन्तु पाँचवे अंक में उसके अनघड़ उग्र रूप को देखकर कुछ आश्चर्य होता है। प्रेम तथा स्वार्थ को तनिक सी ठेस पहुँचते ही जिसके मुख से राजा दुष्यन्त के लिए 'अनार्य, औरो के हृदय को भी तुम अपने सा ही समझते हो। घास फूस से ढके कूवे जैसे, और धर्म का ढोग रचने वाले तुम सरीखे बगुले भगत से बढ़ कर नीच कौन हो सकता है।' ये शब्द निकल सकते है और जो उसे आर्यपुत्र (पति) कहना भी पसन्द नही करती और अंत मे 'इस धूर्त्त ने तो मुझे ठगा ही था, अब आप (कण्व के शिष्य शारद्वत तथा शार्ङ्गरव) भी मुझे छोड़ चले जा रहे है।' कह कर वहाँ से चल देती है उसे सच्ची प्रेमिका नही कहा जा सकता।

किन्तु सातवे अंक मे वह बिल्कुल बदले हुए रूप मे दिखाई पड़ती है। जब दुष्यन्त उसके पैरों पर गिर कर क्षमा माँगता है तो वह उसे उठाकर कहती है, "आपने मेरा कोई अपराध नही किया। 'उठिए! अवश्य ही मेरे पूर्व जन्म का कोई पाप उन दिनों फल रहा था जिसने ऐसे दयालु आर्यपुत्र को भी वैसा निठुर बना दिया था।'

कालिदास के हाथों दुष्यन्त का उद्धार

कवि ने शकुन्तला का यह कायाकल्प तो दिखलाया ही, किन्तु सुन्दरियों के शिकारी उस दुष्यन्त का भी उद्धार कर दिया, जिसकी न जाने कितनी उपेक्षिता रानियां उसके विलास-भवनो मे आहे भरती उसे शाप देती होगी। उसने एक दिन केवल वासना के वशीभूत होकर ही भोली-भाली तापस-कन्या को बहका कर उसके कौमार्य का हरण कर लिया था और फिर अन्य रानियों के तानो के डर से उसे अस्वीकार कर दिया था। उसने शकुन्तला को दुश्चारिणी तथा धोखेबाज़ तक कहने मे सकोच नही किया था और यह भी न सोचा था कि परिपूर्ण गर्भ वाली अपनी पत्नी को ऐसी असहाय दशा मे निकाल कर वह उसे कैसे संकट मे धकेल रहा है। कवि ने सोचा कि

---

१. विरहा विरहा ना कहो, विरहा है सुलतान
जामे विरहा ना रहे सो हिय जान मसान॥

ऐसे स्त्री पुरुषो की आत्मा की शुद्धि मर्त्यलोक के कलुषित वातावरण मे संभव नही अत. वह उन दोनो को ऊपर उठा कर मारीच ऋषि के उस आश्रम मे पहुँचा देता है जहाँ कुटिल राजनीति मे पले और स्वार्थ भावना से भरे राजा को यह देखकर आश्चर्य होता है कि यहाँ सब प्रलोभनो के बीच मे रहते हुए भी ऋषि निष्काम भाव से तप कर रहे है। वह कहता है :—

'पीकर केवल पवन, कल्प तरु-वन मे धारण करते प्राण,
स्वर्ण सरोरुह केसर रंजित जल में करते पुण्य स्नान,
सयम सुरवनिताओ के सँग, रत्नशिला पर धरते ध्यान,
जिनके लिए अन्य तप करते, ये उनमे स्थित भी तपवान ।।

अंक ७ पद्य १२

इस सातवे अक मे रूप का लोभी राजा भी शकुन्तला के रूप से नही किन्तु उस साधना से प्रभावित होता है जिसमे वह लगी हुई है। और उसके मुख से पश्चात्ताप के ये शब्द निकल पड़ते है·—

इसने धारण नही किए है उजले साड़ी और दुकूल,
कृश कपोल, बिन सँवरी वेणी एक रही पीछे को झूल,
लगी हुई है तीव्र साधना मे वियोग व्रत के अनुकूल—
मुझ निर्दय के लिए सती यह, गया जिसे मै बिल्कुल भूल ।।

अंक ७, पद्य २१

राजा के इस हृदय परिवर्तन का प्रधान कारण भी वह विरह ही है जिसने उसे शकुन्तला से वचित कर दिया था। यदि उसका मन शकुन्तला से भी वैसा ही ऊब जाता जैसा पिण्ड खजूर से पेट भर जाने पर खाने वाले का, तब तो विदूषक के कथनानुसार उसे फिर किसी नई इमली की आवश्यकता पड़ती। राजा नि:सन्तान था, पर यह तो कोई नई बात न थी। फिर वह केवल शकुन्तला ही के लिए इतना व्याकुल क्यों हुआ, हसपदिका आदि के लिए नही ? क्योकि अन्त पुर की ये कठपुतलियाँ तो उगली के इशारे मात्र से ही उसे मिल सकती थी, पर शकुन्तला उसकी पहुँच से बाहर हो गई थी। उसके विरह ने ही सन्तान-हीनता को राजा के सामने तब तीव्र रूप मे उपस्थित कर दिया जब उसने एक धनी वणिक् के नि सन्तान मर जाने का समाचार सुना। और तब इन दोनो अभावो ने (शकुन्तला तथा सन्तान के अभाव) मिलकर उसके प्रेम को निर्मल कर दिया। ऊपर देख चुके है कि प्रेम की यह निर्मलता मारीच ऋषि के आश्रम मे ही पूर्णता को प्राप्त हुई थी। कविने

कुमार संभव के प्रथम सर्ग के अन्त मे शिवजी की साधना का वर्णन करते हुए भी इसी प्रकार का चित्र खीचा है, और लिखा है कि वहाँ पर वे शिव जो और साधको को उनके तपो का फल प्रदान किया करते है और स्वयं निष्काम है, न मालूम क्यों, अपनी अष्ट मूर्तियों मे से एक मूर्ति अग्नि का आधान कर, उसके सम्मुख वैठ कठोर तप करने[1] लगे।

मेघदूत मे भी कवि ने यक्ष के वासनात्मक भौतिक अनुराग को विरह द्वारा शुद्ध करके, उसे फिर से दिव्य लोक मे पहुँचा उसकी व्रतचारिणी पत्नी से मिलन के योग्य वनाया है। मेघदूत तथा अभिज्ञान शाकुन्तल—दोनो मे ही नायक नायिका साधना द्वारा शुद्ध होकर और मर्त्य-भावना से ऊपर उठ कर स्वर्ग लोक के अधिकारी वन सके है। अन्त मे जर्मन महाकवि[2] गेटे के स्मरणीय प्रसिद्ध वाक्य के साथ हम इस प्रसंग को समाप्त करते है —

यदि तुम युवावस्था के फूल और प्रौढ़ावस्था के फल तथा इसी प्रकार की अन्य सामग्री एक स्थान पर ही देखना चाहो जिनसे आत्मा प्रभावित होता है, तृप्त होता है और शान्ति प्राप्त करता है, यदि तुम स्वर्ग तथा मर्त्य लोक को एक ही जगह देखना चाहते हो तो मैं 'शकुन्तला' यह शब्द कह दूँगा और इस एक ही शब्द में सब कुछ आ जाता है।

---

१. तत्राग्नि माधाय समित्समिद्धं स्वमेव मूर्त्यन्तर मष्ट मूर्त्तिः
स्वयं विधाता तपस फलाना केनापि कामेन तपश्चचार ॥ कुमार० सर्ग १
पद्य ५७

2. Wouldst thou the young year's blossoms
And fruits of its declıne,
And all by which the soul ıs charmed
Enraptured feasted and fed.
Would'st thou the earth and heaven itself
In one sole name combıned
I name thee to Shakuntala !
And all atonce ıs said.

कालिदास और महाकाव्य

मानव मन की तीन स्वाभाविक प्रवृतियां— १. जिज्ञासा, २. आत्माभिव्यंजन तथा ३. सौन्दर्य प्रियता

मानव की यह स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि वह बाह्य जगत् तथा दूसरे व्यक्तियो के विपय मे अधिक से अधिक जानकारी प्राप्त करना चाहता है। उसकी दूसरी प्रवृत्ति वह आत्माभि-व्यजन है जो ज्ञानेन्द्रिय तथा बुद्धि द्वारा उपलब्ध अनुभूतियो को प्रकट करने के लिए उसे बाधित करती है और इससे उसे वैसा आराम तथा आनन्दमिलता है जैसा सतान के जन्म से माता को। ग्रीक विद्वान् अर्शमीदस को नहाते समय, ज्यो ही सोने के आपेक्षिक गुरुत्व के तत्त्व का ज्ञान हुआ, वह उसे प्रकट करने के लिए व्याकुल हो उठा और स्नानागार से नगा ही निकल पडा। महाकवि तुलसीदास ने रामचरितमानस मे उस स्वात -सुख[1] का निर्देश किया है जो कवि को कविता करके प्राप्त होता है। मानवमन की तीसरी प्रवृत्ति वह सौन्दर्य प्रियता है जिससे प्रेरित होकर वह अपने शरीर, वस्त्र घर-बार, रहन-सहन तथा बोल-चाल—सब को सुन्दर बनाना चाहता है। वह अपनी भाषा को अलकारो से तथा उस द्वारा प्रतिपाद्य विषय अर्थात् अर्थ को भी अनेक अन्य उपायो से सवारता है। इतिहास, दर्शन, विज्ञान, काव्य, नाटक आदि समस्त साहित्य मानव की इन तीन प्रवृत्तियो का ही विलास है। किन्तु साहित्य की जिन विधाओ मे यह सौन्दर्य प्रियता प्रधान हो जाती है वे ललित साहित्य के अन्तर्गत मानी जाती है। यह सौन्दर्य प्रियता ही कवि को ऐतिहासिक, दार्शनिक, वैज्ञानिक आदि से पृथक् करने वाली है। यद्यपि इन विपयो के ग्रन्थ भी रोचक तथा सुन्दर शैली मे लिखे जा सकते है तो भी उनमे प्रधानता आत्माभिव्यजन अथवा तथ्य निरूपण की ही होती है।

---

१. स्वान्त सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा—
भाषा निवन्ध मति मजुल मातनोति ॥ रामचरित मानस वालकाण्ड।

वाह्य घटनाओं तथा आन्तरिक उत्तेजनाओ का प्रभाव तो सभी पर पडता है किन्तु कवि[1] का हृदय औरो की अपेक्षा अविक स्वच्छ तथा सवेदन शील होता है अतः उस पर इनकी प्रतिक्रिया कुछ विलक्षण ही हुआ करती है। सूर्य की किरणे पत्थर तथा लकड़ी पर भी पड़ती है किन्तु इनसे रगो की वह इद्रधनुपी छटा नही छूटती। कितने ही व्यक्ति क्रौच आदि पक्षियो को तड़प कर मरते देखते है, पर कविता का स्रोत किसी वाल्मीकि[2] के हृदय से ही फूटता है।

कवि हृदय

कवि का हृदय जब किसी महती घटना या प्रवल तथा उदात्त अन्त. प्रेरणा से उद्वेलित हो जाता है तो उसका वह उद्वेलन महाकाव्य के रूप मे प्रकट होता है। महाकाव्य मे किसी महान् चरित्र का होना भी आवश्यक है। वह घटना मूलक होता हुआ भी वर्णन-प्रवान रहता है। सस्कृत साहित्य के आचार्यो के मतानुसार महाकाव्य[3] वह पद्यवद्ध विशाल रचना है जो सर्गो मे विभक्त रहती है

महाकाव्य

---

१. यानेव शव्दान् वयमालपामो यानेव चार्थान्वयमुल्लिखाम.।
तैरेव विन्यास विशेप भव्यै समोहयन्ते कवयो जगन्ति ॥

२. तामभ्य गच्छद्रुदितानुसारी कवि कुशेध्माहरणाय यात
निपाद विद्धाण्डज दर्शनोत्थ श्लोकत्व मापद्यत यस्य शोक ।
रघु० सर्ग १४ का ७०।

३. सर्गवन्वो महाकव्यं तत्रैको नायक सुर
सद्वश क्षत्रियोवापि धीरोदात्तगुणान्वित ॥
एक वंश भवा भूपा. कुलजा वहवोऽपिवा
शृङ्गार वीर शान्ताना मेकोङ्गीरस इष्यते ॥
एक वृत्तमयै पद्यैरवसानेऽन्यवृत्तकै
नाति स्वल्पा नाति दीर्घा सर्गा अष्टाधिका इह ॥
सन्ध्यासूर्येन्दु रजनी प्रदोषध्वान्तवासरा
प्रातर्मध्याह्न मृगया शैलर्तुवनसागरा ।
संभोग विप्रलम्भौ च मुनिस्वर्ग पुराध्वरा ॥
रण प्रयाणोपयम मन्त्र पुत्रोदयादय ।
वर्णनीया यथायोग साङ्गोपाङ्गा अमी इह ॥
सा० दर्पण ६ परि०—कारिका ३१५—३२४ तक

और ये सर्ग कम से कम ८ तथा प्रत्येक सर्ग मे २५, ३० या इससे कुछ अधिक पद्य होते है। कोई देवता या धीरोदात्तादिगुणों से युक्त सत्कुलोत्पन्न राजा इसका नायक होता है। एक ही वश के अनेक राजा भी इसमे नायक हो सकते है। इसमे शृगार, वीर या शान्त मे से कोई एक रस प्रधान तथा शेष गौण होने चाहिए।

गीतिकाव्य

पर जब किसी छोटी या सामान्य घटना अथवा तीव्र अनुभूति से उत्तेजित हुए कवि-हृदय का कोई रागात्मक तत्त्व विधायक-कल्पना की वीणा द्वारा मुखरित हो उठता है तब गीति-काव्य की सृष्टि होती है। यह गीति-काव्य भावना प्रधान होता है।

किन्तु जव कवि किसी घटना को अनुकरण अथवा अभिनय की सहायता से अधिक सजीव तथा प्रभावशाली रूप मे जगत् के समक्ष रखना चाहता है तो वह उसे रूपक के किसी भेद-नाटक, प्रकरण प्रहसन आदि का रूप देता है। यह क्रिया प्रधान होता है। इसमे वह साधारण घटनाओ को तो छोड ही देता है, किन्तु कथा-क्रम का निर्वाह करने के लिए जिन्हे छोडना सभव नही होता, वह उनका निर्देश मात्र कर देता है और उन्हे रगमच पर नही लाता। नाटक मे ५ से १० तक अक हो सकते है किन्तु वह वहुत बड़ा न होना चाहिए। उसका नायक कोई देवता या प्रसिद्ध राजा होता है। उसकी कथावस्तु का विकास मुख प्रतिमुख आदि ५ सन्धियो[1] द्वारा किया जाता है। कालिदास की बहुमुखी प्रतिभा ने इन सभी क्षेत्रो मे अपने अद्भुत कौशल का परिचय दिया है।

---

१. नाटक ख्यात वृत्त स्यात् पचसन्धिसमन्वितम्।
   ....
   पचादिका दशपरा स्तत्राङ्का परिकीर्त्तिता ॥
   प्रख्यातवशो राजर्षिर्धीरोदात्त. प्रतापवान्
   दिव्योऽथ दिव्याऽदिव्यो वा गुणवान्नायको मत ॥
   सा० दर्पण षष्ठ परिच्छेद कारिका—७–९ तक
   अर्थ प्रकृतय पच पचावस्था समन्विताः
   यथा सख्येन जायन्ते मुखाद्या पच सन्धय ॥
   अन्तरैकार्थ सम्बन्ध· सन्धिरेकान्वये सति ॥
   दशरूपक प्रथम प्रकाश० कारिका २२–२३

कालिदास के ग्रन्थों में भारत के भौगोलिक चित्रों, प्राकृतिक दृश्यों, सामाजिक जीवन के विविध पहलुओ तथा जातीय भावनाओं का ऐसा सूक्ष्म तथा सजीव चित्रण हुआ है कि उन्हें विश्व के किसी भी कोने में पढ़ा जाए, भारत की झांकी अनायास ही आँखों के आगे आजाती है। उसने हिमालय विन्ध्याचल, मलय महेन्द्र, नर्मदा गोदावरी, सिन्धु सरस्वती, गंगा यमुना, प्रातः सायं, सूर्य चन्द्रमा, षड्ऋतु, तपोवन, नगर, देव-मन्दिर राजदरबार, ऋषि राजा, शिक्षा दीक्षा, गुरुशिष्य, गोसेवा तपस्या स्वयंवर, विवाह, पुनर्जन्म, सोलह संस्कार, वर्णाश्रमधर्म, धार्मिक विश्वास, दार्शनिक चिन्तन, राजनीति, युद्ध, दिग्विजय, यज्ञ, दान दक्षिणा, उत्सव, आमोद प्रमोद, नाटक, नृत्य, गीत, वादित्र, चित्रकला, पत्रलेखन, मृगया, मृत्यु, आदि किसी भी विषय को अछूता नही छोड़ा। किन्तु इस से यह न समझना चाहिए कि कवि का ससार भारत की सीमाओ मे ही संकुचित है। मानसिक क्षेत्र मे उसने जिस मानव के अनुराग विराग, करुणा क्रोध आशा निराशा, उत्साह अवसाद आदि का वर्णन किया है वह देश काल, तथा जाति के बन्धनो से उन्मुक्त विश्व का निवासी है।

कालिदास भारत का राष्ट्रीय कवि होता हुआ भी विश्व कवि है

उसके अनेक पात्र यद्यपि देवदानव, यक्ष राक्षस, गन्धर्व अप्सरा आदि भी है और उनकी कुछ शक्तियां अतिमानव है तो भी उनके भीतर हृदय का स्पन्दन हमारे समान ही है। महादेव शकर भी नारी के प्रति आकृष्ट होते हैं और लोक-मर्यादा का पालन करते हुए पार्वती के साथ अपने विवाह का प्रस्ताव करने के लिए ऋषियो को हिमालय के घर भेजते है। तपस्या मे विघ्न डालने वाले कामदेव पर वे क्रोध करते है और देवताओ की प्रार्थना से प्रसन्न होकर उसे क्षमा भी कर देते है। रघुवश में शिव का कुम्भोदर नामक गण सिंह बन कर ऋषि की गाय पर आक्रमण करता है, किन्तु पशु का देह धारण कर लेने पर भी उसका हृदय मानवीय ही रहता है। वह एक ओर कठोर कर्त्तव्य-परायण स्वामीभक्त सेवक है तो दूसरी ओर राजा की भावनाओ का प्रशसक तथा उसका हित-चिन्तक मित्र। प्रियवद नामक गन्धर्व एक ऋषि के शाप से हाथी बन गया था और अज द्वारा उसका शाप से उद्धार हुआ। इस उपकार का बदला चुकाना वह अपना कर्त्तव्य समझता है और इसके लिए अपना समोहनास्त्र प्रदान कर अज को सदा के लिए स्नेह सूत्र मे बाँध लेता है। प्रियंवद यद्यपि मानव नही तो भी उसके भीतर कृतज्ञता से भरा मानव हृदय

कालिदास के साहित्य में मानवीय भावना

विद्यमान है। मेघदूत का यक्ष तो किसी भी बात मे अमानव नही प्रतीत होता।

काव्य नाटक आदि के मूलतत्त्व

किसी रचना को प्रारम्भ करते समय लेखक के हृदय में ज्ञात या अज्ञात रूप मे कोई ऐसा विचार अवश्य रहता है जिसका प्रभाव वह पाठक के हृदय पर विशेषतया अंकित कर देना चाहता है और वह विचार ही उस रचना का 'उद्देश्य' समझना चाहिए। उस उद्देश्य को मूर्तरूप देने के लिए लेखक जिस यथार्थ घटना अथवा कल्पित कथा की योजना करता है वह वस्तु' कहलाती है और जो व्यक्ति उससे सीधा सम्बन्ध रखते हैं वे उसके "पात्र' तथा उनकी बातचीत या सवाद 'कथोपकथन' कहलाते है। प्रत्येक व्यक्ति का अपना-अपना स्वभाव होता हैं और वह स्वभाव उसकी बातचीत तथा कार्यकलापो में प्रतिबिम्बित हुए बिना नही रह सकता। पात्र के इस पृथक् व्यक्तित्व का वर्णन 'चरित्रचित्रण' कहलाता है वह उस पात्र के अपने उद्गार, उसके कार्य-कलाप तथा उसके सम्बन्ध मे दूसरे पात्रो की बात-चीत के आधार पर होता हैं। इस व्यक्तित्व के बिना सब पात्र अवास्तविक तथा छायामात्र प्रतीत होते हैं। कथोपकथन या सवाद का महत्त्व नाटक आदि रूपको मे तो होता ही है किन्तु काव्य, आख्यायिका आदि में भी उसकी उपेक्षा नही की जा सकती। प्रत्येक घटना किसी स्थान और समय मे ही होती है और इन दोनो का भी कुछ न कुछ प्रभाव उस पर अवश्य पड़ता है। अत लेखक आवश्यकतानुसार 'देश काल' का भी उल्लेख किया करते हैं। किन्तु इनसे भी प्रधान एक अन्य तत्त्व है जिसे 'रस' कहते हैं। रस के बिना कोईरचना ललित-साहित्य के अन्तर्गत नही गिनी जा सकती। काव्य नाटक आदि ज्ञान-वृद्धि के भी साधन हो सकते हैं किन्तु उनके अध्ययन का मुख्य उद्देश्य रस ही है। यह रस हमारे हृदय की वह विशेष दशा है जिसमे किसी कृति को पढते सुनते या किसी नाटक अथवा चलचित्र को देखते समय हमारे हृदय के भाव—प्रेम, शोक, क्रोध आदि या श्रद्धा आदि मनोवेग अपने स्वरूप को सुरक्षित रखते हुए भी हमारे लिए सुखमय हो जाते हैं। यह सारी सामग्री किसी भी साहित्यक रचना की आत्मा तथा उसका भाव पक्ष है। उपर्युक्त उद्देश्य, वस्तु, घटना, विचार तथा मनोवेग—ये सब इस भाव के अन्तर्गत आ जाते हैं, इस सामग्री को सुन्दर तथा प्रभावशाली बनाने के लिए लेखक जिन उपायो—शब्दशक्ति, गुण अलकार, रीति तथा छन्द आदि का उपयोग करता है वे उस रचना के शरीर अथवा कलापक्ष हैं। कालिदास ने इन्हे संक्षेप मे क्रमश. अर्थ तथा शब्द कहा है और रघुवश के प्रारम्भ मे "अर्थ

तथा उसे प्रकट करने में समर्थ वाणी की सिद्धि के लिए, मैं जगत् के पिता तथा माता उन शिव पार्वती को प्रणाम करता हूँ जो उन (अर्थ तथा वाणी) की तरह ही सदा मिल कर रहते हैं।" कह कर इनके महत्त्व को प्रकट किया है। इन तत्त्वों को ध्यान में रखकर यहा कालिदास के काव्यो के सम्वन्ध मे कुछ चर्चा की जाती है।

कुमार संभव महाकाव्य है

कालिदास का प्रथम महाकाव्य कुमार संभव है, इसमे ८ सर्ग है और इसके नायक नायिका शिव तथा पार्वती। इसमें पार्वती के पिता हिमालय का वर्णन चेतन जगम और जडस्थावर दोनो रूपो मे किया गया है। तारकासुर[1] का वध एक महती घटना थी जिसका निर्देश कवि ने इसके दूसरे सर्ग मे इस प्रकार किया है कि उससे शिव पार्वती के विवाह और उसके फल कुमार जन्म का महत्त्व भी वढ गया है। ग्रंथ के नाम के आधार पर भी कुमार-जन्म ही इसका मुख्य विपय प्रतीत होता है किन्तु उससे पूर्व ही काव्य समाप्त हो जाता है। इसके कारण के विपय मे पहले (पृष्ठ सख्या ११९) विचार किया जा चुका है, यह रचना महाकाव्य है क्योकि इसका निर्माण कवि ने महाकाव्य की शैली पर किया है। किसी रचना के खण्डकाव्य या महाकाव्य होने का निर्णय उसके केवल छोटे या वडे आकार के आधार पर नही किया जा सकता, क्योकि दोनों की शैली मे मौलिक अन्तर रहता है। खण्डकाव्य की रचना जीवन के किसी एक ही लघु अग या घटना को लेकर की जाती है, जवकि

---

१. तस्मिन् विप्रकृता काले तारकेण दिवौकसः।
तुरासाहं पुरोधाय धाम स्वायंभुवं ययु ॥
तेपामाविरभृद् ब्रह्मा परिम्लान मुखश्रियाम्।
सरसा सुप्तपद्मानां प्रात दींधितिमानिव ॥
. .. .
वाचस्पतिरुवाचेद प्राजलिर्जलजासनम्।
भवल्लब्धवरोदीर्ण स्तारकाख्यो महासुर.।
उपप्लवाय लोकाना धूमकेतुरिवोत्थित ॥
तदिच्छामो विभो स्रष्टु सेनान्य तस्य शान्तये
.. ..
गोप्तार सुरसैन्याना य पुरस्कृत्य गोत्रभृत्।
प्रत्यानेप्यति शत्रुभ्योवन्दीमिव जयश्रियम् ॥ कुमार० सर्ग २ पद्य १–५२ तक

महाकाव्य का आधार कोई ऐसी महती घटना होती है जो अनेक अवान्तर अथवा आगिक घटनाओ द्वारा पूर्णता को प्राप्त होती है।

कुमार संभव की रचना मे निगूढ उद्देश्य

जान पड़ता है कि इस महाकाव्य के निर्माण मे कवि का अन्तर्निहित उद्देश्य जनता के हृदय पर उस गृहस्थाश्रम की महिमा को अकित करना था जिसका गौरव बौद्धयुग मे भिक्षु वृत्ति की प्रधानता के कारण विलुप्त हो गया था और इसी लिए वीर क्षत्रियो के अभाव मे देश पर विदेशी शत्रुओं के आक्रमण का भय सदा बना रहता था। तभी तो कवि ने बृहस्पति के मुख से ब्रह्मा जी को कहलवाया था कि हे भगवन् उस असुर के संहार के लिए हमें योग्य सेनापति की आवश्यकता है जिसे अगुआ बनाकर हम विजय प्राप्त कर सके और इसके उत्तर मे उन्होने कहा था कि परम तेजस्वी शिव के अंग से उत्पन्न पुत्र के सिवाय कोई भी उससे लोहा नही ले सकता अत. तुम हिमवान् की पुत्री पार्वती से उनका विवाह करवा दो जिससे उस वीर संतान का जन्म होगा जो इस विपत्ति से तुम्हारा उद्धार कर सकेगी।

कथावस्तु
प्रथम सर्ग

कुमारसभव की मूल कथा बहुत छोटी है तो भी कवि ने विविध प्रसंगों तथा वर्णनो की सहायता से पल्लवित कर उसे महाकाव्य का रूप दे दिया है। कथा का निष्कर्ष यह है.—भारत के उत्तर मे पूर्व से पश्चिम तक फैला हुआ हिमालय का प्रदेश है। हिमालय के ऊँचे शिखर हिममण्डित हैं। वहा नाना रत्न तथा विविध औषधिया उत्पन्न होती है। अनेक धातुओं वाले उसके शिखर इस प्रकार शोभित हुआ करते है मानो रगबिरगे मेघखण्डो से मण्डित अकाल संध्या वहां स्थिर हो गई है। उसके शिखर इतने ऊँचे है कि बादल उन तक नही पहुँच पाते अत. जब सिद्ध गण बहुत वर्षा से ऊब जाते है तो उठकर उन चोटियों पर चले जाते है जहां धूप चमकती होती है। चादनी के समान शुभ्र पूंछ वाली चंमरी गउएं उस पर जहां तहां विचरा करती हैं और जब वे अपनी पूँछ हिलाती हैं तो ऐसा प्रतीत होता है मानो पर्वतों के महाराज पर चमर डुलाए जा रहे हैं। वहा भागीरथी के झरनों की फुआरो से शीतल पवन चला करता है जिससे देवदारुओ के सघन वन झूमने लगते है, मयूर मस्त हो अपने पर फैला देते हैं और मृगों के पीछे दौड़ कर थक गए शिकारी सुस्ताते उसका आनन्द लिया करते है। पर्वतो के राजा उस हिमवान् की पत्नी का नाम 'मेना' था जिसके गर्भ से पुत्र मैनाक तथा पुत्री पार्वती का जन्म हुआ। पड़ौस मे ही कैलास पर शिवजी का निवास था। कुछ समय पूर्व जब उनकी पहली पत्नी सती ने अपने पिता

दक्ष से रुष्ट हो उसके यज्ञ कुण्ड में कूद कर प्राण त्याग दिए थे तभी से वे विरक्त हो तपस्या में लग गए थे। एक दिन नारद ऋषि हिमवान् के घर आए और उन्होंने नवयौवन में पदार्पण करती हुई पार्वती को देखा तो बोले कि वह पूर्व जन्म में शिवजी की पत्नी थी और अब भी उसका विवाह उन्ही के साथ होगा। यह सुनकर उसकी लगन शिवजी से लग गई और पिता हिमवान् ने भी इसे पसन्द किया। इस पर वह उसको अनुमति ले सखी सहित जाकर शिवजी की सेवा करने लगी। एक क्वारी कन्या का आना जाना शिवजी अच्छा न समझते थे तो भी एक तो वे उसकी भक्ति-भावना को ठेस न पहुँचाना चाहते थे दूसरे उन्हे अपने ऊपर पूरा भरोसा था अत उन्होंने उसे न रोका।

द्वितीय सर्ग

उन्ही दिनों तारक नाम के एक दैत्य की शक्ति बहुत बढ़ गई और उसने सब देवताओ को जीत लिया। वे सब दुखी हो पितामह ब्रह्मा जी की शरण मे पहुँचे और उन्हे अपना दुखडा सुनाया। उन्होंने कहा कि शिवजी के वीर्य से उत्पन्न सतान ही उस दैत्य का सहार कर सकती है किन्तु वे कठोर तप साधन मे मग्न है। तुम यदि हिमवान् की कन्या पार्वती से उनका विवाह करवा दो तो उस वीर पुत्र का जन्म हो सकता है जो तुम्हारा सेनापति बनकर उसे यमपुर पहुँचा सके। यह सुनकर देवराज इन्द्र को ढारस हुआ और उसने कामदेव को याद किया।

तृतीय सर्ग

कामदेव जब दरबार मे पहुचा तब इन्द्र ने उसे अपने पास बिठा लिया और उसकी बडी आवभगत की। इससे वह कुछ फूल गया और बोला, 'आपने मुझे याद किया है, यही मेरे लिए कुछ कम नही पर मै चाहता हू कि अब आप मुझे वह सेवा बताए जिससे मेरा यह गौरव और भी बढ़ जाए, सेवक की शक्ति तो आप जानते ही है कि यदि वह अपना फूलो का धनुष उठा ले तो पिनाक धारी शिव भी अपना धीरज खो बैठे, फिर औरो का तो कहना ही क्या ?' इन्द्र चाहता ही क्या था ? वह उसके मुह की बात को पकड़ता हुआ बोला, "बस ठीक है, तुमसे मुझे यही आशा थी। मेरे दो ही तो हथियार है—वज्र और तुम, पर वह वज्र उनका कुछ भी नही बिगाड सकता जो तप के धनी है, जब कि तुम कही भी नही चूकते। इस लिए तुम ऐसा उपाय करो कि वे शिव जो अपनी आतमा को परमातमा के ध्यान मे लीन कर समाधि लगाए बैठे है, हिमवान् की उस अनुपम सुन्दरी कन्या पार्वती को चाहने लगे जो पास ही रहकर उनकी सेवा कर रही है क्यो कि सब देवता चाहते है कि उनके (शिव के) वीर्य से उत्पन्न वीर पुत्र उनका

सेनापति बनकर असुरोका सहार करे। इस काम में सब देवता तुम से ही आस लगाए है और इससे तीनो लोको की भलाई होगी।'' यह सुनकर कामदेव कुछ घबरागया क्योकि शिव जी से भिडना हसी खेल न था। पर अब करता क्या ? तीर उसके हाथ से निकल चुका था। कुछ चारा न देख उसने अपनी प्यारी पत्नी रति तथा मित्र वसन्त को साथ लिया और शिवजी के तपोवन मे पहुच चारो ओर अपना जादू फैला दिया। देखते देखते मलय पवन चलने लगा, फूल खिल उठे और कोयल कूकने लगी। पशु पक्षियो की कौन कहे, स्थावर तक उसके वश मे होगए। हथिनी कमल के पराग से सुवासित जल को अपनी सूड़ मे भरकर प्रेम से हाथी को पिलाने लगी और चकवे ने आधी खाई मृणाल की डडी चकवी को दे दी। वे लतावधुए जिनके फूलो के बडे बडे गुच्छे स्तनो के समान तथा नवकिसलय लाल होठो से दीखते थे उन वृक्षो के बाहु पाश मे बंध गई जिन्होने अपनी शाखा-रूपी भुजाए उन पर फैला दी थी। पास ही अप्सराओ के मधुर गीत की मादक ध्वनि कानो मे पड रही थी पर इस परिस्थिति मे भी शिवजी विचलित न हुए। वे देवदारु के एक वृक्ष के नीचे, चबूतरे पर बिछे बाघम्बर पर पद्मासन जमाए बैठे थे। उनके पलक न झपकते थे, और कुछ कुछ दीखती तीक्ष्ण पुतलियो वाली उनकी आखे एकटक, नाक की नोकपर जमी थी। उन्होने श्वास रोक रक्खा था और वे बरस न रहे मेघ के घटाटोप के समान गभीर, तरग रहित महासागर की तरह निस्तब्ध तथा वातशून्य प्रदेश मे जल रहे दीपक की लौ की तरह निश्चल थे। उनके ऐसे दुर्धर्ष रूप को देख कामदेव का धैर्य छूट गया और उसके हाथ से धनुष बाण कब गिर पडे यह भी उसे पता न चला। किन्तु तभी नये सूर्य की आभा सी लाल साडी पहने तथा वासन्ती फूलो के आभूषणो से सिगार किए किसी चलती-फिरती लता-सी पार्वती वहां आ पहुची। उसने बडी प्यारी भावभङ्गी से प्रणामकर अपने गोरे गुलाबी हाथो से मन्दाकिनी के कमल गट्टो की माला उन्हे भेट की। उसे लेने के लिए शिवजी ने हाथ बढाया ही था कि कामदेव ने साहस कर फिर धनुष सम्हाला और उस पर अपना सुप्रसिद्ध समोहनास्त्र चढा लिया। अस्त्र के प्रभाव से शिवजी भी एकक्षण को विचलित हो गए और वे ललचाए लोचनो से पार्वती के लाललाल होठो को निहारने लगे। उनका चित्त चचल हो उठा—ऐसी अनहोनी बात कैसे हो गई यह जानने को जब उन्होने इधर उधर दृष्टि घुमाई तो तीर कमान ताने कामदेव उन्हे दीख पड़ा और दीखते ही जल कर राख हो गया। उसकी सहायता के लिए आए देवताओ की "भगवन् क्षमा करो क्षमा करो' यह गुहार आकाश मे ही विलीन हो गई और तब स्त्री के निकट ठहरना उचित न

समक्ष शिव भी अन्तर्धान हो गए। इस दुर्घटना से पार्वती का हृदय टूट गया और वह अनमनी हो घर को लौट गई।

चतुर्थ सर्ग

रति ने अपनी आंखों के सामने ही पति को भस्म होते देखा तो वह मूर्छित हो गई। होश आया तो वह धरती पर लोट पड़ी और विलाप करने लगी। ढारस बँधाने को जब वसन्त पास आया तो उसका शोक और भी उमड़ पड़ा। वह छाती पीट-पीट कर रोने लगी। रोते-रोते उसने कहा, "हे वसन्त, हवा के झोंके से दीपक की तरह तुम्हारा मित्र तो बुझ गया, अब वह न लौटेगा, उसके शोक से मलिन मेरी दशा देखो जो काली बत्ती की तरह बच रही है। तुमने कितनी बार मिलन-रात्रियों के लिए फूलों की सेज सजाने में मेरी सहायता की है, आज मैं हाथ पसार प्रार्थना करती हूं कि उन्हीं हाथों से तुम मेरे लिए वह चिता तय्यार कर दो जिस पर मैं अपने प्राण प्यारे के साथ सती हो जाऊं। और इस काम को तुम जल्दी ही करो क्योंकि तुम्हारे मित्र को मेरे बिना वहां भी चैन न होगी। तुम यह भी ध्यान रखना कि हम दोनो के लिए एक ही जलाञ्जलि देनी होगी क्यों कि वह उसे मेरे साथ ही पीयेगा।" जब वह इस प्रकार प्राण त्यागने की तय्यारी कर रही थी तभी आकाशवाणी हुई, "हे रति, तू अभी अपने प्राण न त्याग। तेरा उससे पुर्नमिलन शीघ्र ही होगा। ब्रह्मा के शाप से आज उसकी यह दशा हुई है किन्तु जब शिवजी पार्वती से विवाह कर लेंगे तब उसे फिर शरीर से युक्त कर देंगे।" यह सुनकर उसने मरण का विचार छोड़ दिया और दिन मे चन्द्रकला की तरह कुमलाई वह किसी तरह अपनी विपत्ति के दिन काटने लगी।

पंचम सर्ग

पार्वती यह देखकर कि शिवजी ने उसके सामने ही कामदेव को जलाकर राख कर दिया निराश हो गई और उसे अपना वह सौन्दर्य अब अच्छा न लगा जिससे वह प्यारे को न रिझा सकी थी। इस लिए उसने कठोर तप द्वारा उसके हृदय को जीतने का निश्चय किया और पिता की अनुमति ले वह हिमालय के एक शिखर पर कुटिया बना, सखी के साथ, वहा रहने लगी। उसने गले का हार उतार दिया और साड़ी की जगह वल्कल वस्त्र पहन लिया। जो कभी सेज पर बिखर गए अपनी चोटी के फूलों से भी बेचैन हो जाती थी वही बाँह को तकिया बना धरती पर सोने लगी। वह नित्य स्नान कर अग्निहोत्र करती और जप स्वाध्याय में लग जाती। उसके इस आचरण की ऐसी धूम मची कि बड़े बड़े ऋषि भी दर्शनों को आने लगे पर उसका मनोरथ पूरा न हुआ। यह देख उसने अपनी साधना को और भी कठोर कर दिया। झुलसाने वाली गर्मियों की कड़ी

धूप मे चारो तरफ आग जला वह एकटक सूर्य को देखती रहती । पवन के प्रबल झकोरो के साथ जब मूसलधार पानी बरसता वह खुले आकाश के नीचे पत्थर की पटिया पर लेट रहती और तब सावन भादो की अधेरी राते बिजली कौंधने के बहाने, मानोअपनी आखे खोल उसकी साखी भरा करती । जाडे की रातो मे जब वह गले तक पानी मे खड़ी हो जाती और उसके होठ ठड से फरकने लगते तो उसका महकता मुह ऐसा जान पड़ता मानो पाले की मार से कोई कमल बच रहा हो । मृणालिनी के समान सुकुमार शरीर से भी उसने ऐसी साधना की कि कठोर देह वाले बड़े बड़े तपस्वियो का तप भी उसके सामने फीका पड गया । तब एक दिन जटाजूट-धारी कोई तरुण ब्रह्मचारी वहा आ निकला । उसने मृगचर्म पहन रक्खा था और हाथ मे लाठी थी । ब्रह्मतेज से उसका चेहरा ऐसा दमक रहा था मानो वह शरीरधारी साक्षात् ब्रह्मचर्य ही हो । वह बातचीत मे तेज तर्रार और चुलबुला था । पार्वती ने आगे बढकर उसकी अगवानी की ओर बैठने को आसन दिया । कुछ देर आराम कर और कुशल प्रश्न के बाद उसने पार्वती से तप का कारण पूछा। वह स्वय तो कुछ न बोली पर इशारा पाकर उसकी सखी ने कहा, कि इन्होने शिवजी से विवाह का सकल्प किया था । ये उनकी सेवा मे थी कि एक दिन उन्होने कुपित होकर कामदेव को भस्म कर दिया पर उसका तीर मानो उनकी घुड़की से डर, उधर न जा इनके हृदय मे आ लगा और गहरा घाव कर गया । तभी से ये उनके प्रेम मे ऐसी मतवाली हुई है कि घरबार छोड़ यहा चली आई और अब निराहार रह अपने शरीर को सुखा रही है । और वे शिव जिन के लिए ये अपने आप को इस तरह मिटा रही है, न जाने कैसे पाषाण हृदय है कि पसीजते ही नही ।" यह सुनकर ब्रह्मचारी प्रसन्न हुआ किन्तु अपने भाव को छिपाता हुआ बोला, "अरे ! ! क्या सचमुच ही, या तू हसी कर रही है ? वह बमभोला जिसके शरीर पर साप लिपटे रहते है जिसकी ओढी हाथी की खाल से खून टपकता रहता है और जो मसान मे पड़ा रहता है वह भी भला ब्याह के योग्य है? तीन आखो ने उसकी सूरत शकल को बिगाड़ रक्खा है, उसके पास पैसाधेला नही इस लिए नंगा रहता है और उसके मा बाप का किसी को पता नही । उसमे तो ऐसी एक भी बात नही जो दुलहो में देखी जाती है । कहा तुझ सी सुलक्षणा और कहाँ वह कुलच्छन? तेरे रेशमी दुपट्टे के साथ उसकी हाथी वाली खाल की गांठ कैसे बधेगी ? सजे हाथी पर सवारी करने वाली तू जब उसके साथ बूढे बैल पर चढकर निकलेगी तो दुनिया के लोग तुझे देखकर मुसकराया करेंगे । तू अब भी सोच ले और ऐसी भूल न कर ।" ब्रह्मचारी की ये अटपटी बाते पार्वती को अच्छी न लगी, उसकी भँवो मे बल पडगए और आखे कुछ

लाल हो गई। उसके होठ फरकने लगे और वह बोली, "तुम उनके असली रूप को नहीं जानते तभी ऐसा कह रहे हो। पर मुझे तो किसी से बहस नही करनी। वे जैसे भी हैं मेरे लिए अच्छे है। मै उनके विरुद्ध कुछ भी सुनना नहीं चाहती।" यह कहती हुई वह ज्यो ही वहां से उठकर जाने लगी कि ब्रह्मचारी ने अपना नकली वेश उतार दिया और पार्वती भी यह देखकर कि उसका चितचोर सामने खड़ा है सकपका गई। वह न आगे बढ़ सकी न रुक सकी। यह देखकर शिवजी बोले, "जिसे तुमने अपनी तपस्या से मोल ले लिया है तुम्हारा वह दास यहां उपस्थित है।"

इस पर उसकी सखी ने कहा कि विवाह के सम्बन्ध में वे उनके पिता हिमवान् से बात करे और शिवजी ने भी यही उचित समझ सप्तर्षियों को याद किया। वे तुरन्त उपस्थित हो गए। उनके बीच में वशिष्ठ जी के साथ देवी अरुन्धती को देख शिवजी की गृहस्थ बनने की इच्छा और भी प्रबल हो गई। उचित शिष्टाचार के अनन्तर ऋषियो ने निवेदन किया, "देव, जो आपको याद करते हैं वे धन्य है फिर जिनको आपने याद किया उनका तो कहना ही क्या? अब आज्ञा कीजिए कि हम आपकी क्या सेवा करें?" "शिवजी बोले, "आप जानते हैं कि हमारा अपना कोई स्वार्थ नही किन्तु दैत्यो से सताए देवगणों की प्रार्थना पर हम पर्वतराज हिमवान् की पुत्री से विवाह करना चाहते है। आप वहाँ जाकर क्या कहें, यह हम क्या बताए? क्योंकि शिष्टाचार की पद्धति के निर्माता तो आप ही है। और आर्या अरुन्धती जी का सहयोग तो इसमें बहुमूल्य होगा ही क्योकि ऐसे कार्यों मे स्त्रियों की बुद्धि खूब चलती है।" वहाँ से चलकर सप्तर्षि जब हिमवान् की राजधानी ओषधिप्रस्थ मे पहुँचे तो उसके वैभव को देख वे अचम्भे मे आ गए। पर्वतराज उनका सत्कार कर नम्रता से बोला, "आपका यह अचानक आगमन बिना मेघ की वृष्टि और बिना फूल के फलों के समान है। अभी तक मेरा जो सिर केवल गंगाजल से पवित्र था आज आपके चरणोदक मे वह और भी अधिक पवित्र हो गया। आपका कोई काम मुझसे अटका हो यह तो संभव नही, अत आप मुझे पवित्र करने को ही यहा पधारे हैं।" यह सुन कर ऋषि अंगिरा बोले, "तुमने ठीक कहा है तुम्हारी इन चोटियों की तरह ही तुम्हारा मन भी उच्च है, और निर्मल विस्तार वाली तुम्हारी कीर्तियों तथा नदियों ने जगत् को पवित्र कर रक्खा है। हम सचमुच तुम्हारे ही काम से यहां आए है। तुम्हारे अहो भाग्य है कि त्रिलोकी के स्वामी भगवान् शंकर तुम्हे अपना श्वशुर बनाना चाहते है। माँगने वाले हम, देने वाले तुम,

षष्ठ सर्ग

तुम्हारी पुत्री पार्वती वधू और भगवान शकर वर—तुम्हारे कुल का इससे बढ़कर क्या गौरव हो सकता है ?" यह सुनकर हिमवान् कृतार्थ हो गया और उसने अपनी पत्नी की तरफ दृष्टि डाली। उसे भी सहमत देखा तो वह पार्वती से बोला, "बेटी इधर आओ, मै तुम्हे विश्व के स्वामी भगवान् शंकर को भिक्षा-रूप मे दे रहा हूँ।" और फिर उसने ऋषियो से कहा, "आज मेरा गृहस्थ-जीवन सफल हुआ। भगवान् शकर की भावी वधू यह मेरी पुत्री आपके चरणो मे प्रणाम करती है।" लजाती हुई पार्वती जब प्रणाम करने लगी तो देवी अरुन्धती ने उसे अपनी गोद मे खीच कर प्यार किया। अन्त मे सब ऋषि उसे आशीर्वाद दे विदा हुए।

सप्तम सर्ग

हिमवान् विवाह की तैयारियाँ धूम-धाम से करने लगा और उसका घर बन्धु-बान्धवो से भर गया। तीसरे दिन कुनबे की पूज्य सुहागिन स्त्रियो ने बाजे-गाजे के साथ पार्वती को तेल उबटन मला और मंगल-स्नान करवा विवाह के वस्त्र पहना दिए। तब किसी सखी ने धूप के धूए से उसके केशों को सुखाया और जूड़े को फूलमाला से सवार दिया, कोई पैरो मे महावर लगाने लगी और किसी ने आँखो में काजल आँज दिया। तरह-तरह के जड़ाऊ गहनो से पार्वती की सुन्दरता फूलो से लता, तारावली से निशा तथा रग-बिरगे पक्षियो से नदी की तरह खिल उठी। माता की आज्ञा से पार्वती ने कुलदेवताओ की वन्दना की और वहाँ उपस्थित सती स्त्रियों के चरण छूए। यह सब कुछ हो चुका तो पर्वतराज बन्धु-बान्धवो के साथ बैठकखाने मे बैठ गया और वर के आगमन की प्रतीक्षा करने लगा।

उधर कुबेर-शैल पर सब देवता शिवजी को भी विवाह के लिए सजाने लगे। देव-माताओ ने उनके लिए जो सामग्री प्रस्तुत की उसे शिवजी ने सादर स्वीकार तो कर लिया पर पहना नही। किसी अद्भुत शक्ति के प्रभाव से उनका वही वेश सहसा बदल कर उस अवसर के अनुरूप हो गया। शरीर पर मली राख चन्दन बन गई, और कपालमाला सफेद फूलों का गजरा। हाथी की खाल पल्लो पर गोरोचना के छीटो वाला रेशमी दुपट्टा दीखने लगी और माथे पर का तीसरा नेत्र तिलक, तथा चन्द्रमा चूडामणि बन गया। तब उनके एक अनुचर ने दर्पण के समान चमकती तलवार उनके सामने कर दी और उन्होंने उसमे अपना मुख देखा। बैल की कमर पर बाघम्बर पडा था, वे नन्दी का सहारा ले उस पर सवार हो गए और तभी एक बडा नगाड़ा बजा जिसे सुनकर सब लोकपाल और देवता एकत्र हो गए। सबका वेश सादा था। नन्दी ने उनका परिचय

दिया और उन्होने उत्तर मे सिर झुका दिया। शिवजी ने सिर को तनिक हिला कर ब्रह्मा का, 'आइए' कहकर विष्णु का, मुस्करा कर इन्द्र का तथा चारो तरफ एक नजर डाल सब देवताओ का स्वागत किया। जब सप्तर्षियो ने उन्हे आशीर्वाद दिया तो उन्होने मुसकरा कर कहा, 'इस विवाह-यज्ञ मे मैंने आपको ही पुरोहित वरा है।" बरात हिमवान् के नगर में पहुँची तो वहाँ उसका खूब स्वागत-सत्कार हुआ। शिवजी जब विवाह-वेदी पर पहुँचे तो अर्घ्य, मधुपर्क, विविध रत्न तथा वस्त्र-युगल समर्पित कर उनका आतिथ्य किया गया और परिक्रमा, लाजाहोम, तथा ध्रुव-दर्शन की विधि पूर्ण कर पुरोहित ने पार्वती को उपदेश दिया। वर-वधू ने पितामह को प्रणाम किया और स्नातको ने उनके मस्तक पर अक्षतरोली से तिलक लगाया। सरस्वती ने मधुर गीत गाकर उनकी स्तुति की और अप्सराओ ने उनके मनोरजन के लिए एक नाटक खेला। बरात विदा हुई किन्तु हिमवान् ने आग्रह कर शिवजी को वही रोक लिया।

सास ससुर न मानते थे तो भी, शिवजी एक मास पश्चात् उन्हे किसी तरह समझा बुझाकर पार्वती को साथ ले कैलाश चले आए और वहाँ से वे अपनी विहार-यात्रा पर निकले। पार्वती को मेरु, मन्दिर और कुबेर शैल के विविध दृश्य

अष्टम सर्ग

दिखलाकर शिव जब मलयाचल पर पहुँचे तो वहाँ लवग केसरो से सुवासित दक्षिण पवन चन्दन लताओ को नचा रहा था और उसने पार्वती के मुँह पर झलक रही पसीने की बूदो को सुख दिया। वहाँ से वे जब नन्दन वन पहुँचे और उन्होने पारिजात के फूलो से पार्वती का शृगार किया तो सुर वधुएं उसके सुहाग को सराहने लगी। गधमादन पर्वत पर पहुँच कर उन्होने पार्वती को दिखाया कि सूर्य का प्रकाश मन्द पड जाने से झरनों की फुआर पर बने इन्द्र धनुप मिटते जा रहे है। मुनियो के आश्रमो मे यज्ञग्नियाँ जलने लगी, पालतू मृग आँगनो मे जमा हो गए, वृक्षो के थाँवलो मे जल दे दिया गया और चरने गई गउएँ वनो से लौट आई। अस्त हो रहे सूर्य के लाल बिम्ब से पश्चिम दिशा गुलदुपहरी के फूलो से किसी सुन्दरी के मस्तक के समान सुशोभित हो गई। बादलो की लाल, पीली, नीली रेखाओ को दिखाते हुए वे कहने लगे कि यह सध्या मानो तुम्हारा मनोरजन करने को ही तूलिका से इन चित्रो को बना रही है। मुनिजन ब्रह्म का ध्यान करने लगे तो शिवजी पार्वती से छुट्टी ले सन्ध्योपासना मे बैठ गए। जब वे उठे तब अंधेरा खूब घना हो गया था उसे दिखा वे कहने लगे, 'बुरा हो इस अधकार का जिसने उजले मैले, खड़े चलते-फिरते, सीधे टेढ़े-मेढ़े सबको बराबर कर दिया। असत् के राज्य

यही हुआ करता है।" धीरे-धीरे अधेरा कुछ छँटने लगा और पूर्व दिशा का मुख चद्रिका से धवल हो गया, मानो उस पर किसी ने केतकी का पराग मल दिया। कुछ समय तक चन्द्रचन्द्रिका का वर्णन करते हुए शिव विश्राम के लिए पार्वती के साथ शयनागार मे चले गए।

कुमार सभव की यह कथावस्तु वस्तुत बहुत छोटी है, किन्तु कवि ने विविध प्रसगो और वर्णनो द्वारा इसका विस्तार कर दिया है। प्रसग उस साधारण घटना को कहते है जिसके सपादन मे मुख्य कथा के पात्रो से भिन्न जो व्यक्ति योग देते है उनके कार्य मुख्य कथा की प्रगति मे सहायक होते है किन्तु उन्हे स्वय किसी विशेष फल की प्राप्ति नही होती। इसके विपरीत, अन्तरकथा वह महत्त्वपूर्ण घटना होती है जिसके द्वारा उसके व्यक्ति या व्यक्तियो को भी कोई स्वतन्त्र फल मिलता है और वह फल प्रधान कथा के विकास मे अग बन जाता है। कुमारसभव मे तारकासुर द्वारा सताए देवताओ का ब्रह्मा की शरण मे जाना, ब्रह्मा की स्तुति करना, उसका प्रकट होना और उनकी दुरवस्था देखकर उसका कारण पूछना, उसके उपाय के रूप मे शिव पार्वती के विवाह की बात कहना, इन्द्र का कामदेव को बुलाना, उसका शिव के आश्रम में जाकर भस्म होजाना, निराश पार्वती की कठोर तपस्या और उसके प्रेम की परीक्षा के लिए आए ब्रह्मचारी-वेशधारी शिवजी का अत्यन्त नाटकीय ढग से प्रकट होकर उसे विस्मित कर देना आदि सब घटनाए प्रसग है और इनमे यह अन्तिम प्रसग सबसे अधिक चमत्कार-पूर्ण है।

पात्र तथा चरित्र चित्रण

शिव

कुमारसभव के प्रमुख पात्र शिव पार्वती, काम रति तथा हिमवान् है। इन मे से शिव यद्यपि कवि के आराध्य देव तथा अतिमानव है तो भी उनका व्यवहार मानवोचित है। कवि की भावना के अनुसार वे सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् निष्काम तथा निरीह है और गीता के उस आदर्श श्रेष्ठ पुरुष की तरह है जो लोक-सग्रह के लिए सब मर्यादाओ का पालन करता है।

पहली पत्नी सती की मृत्यु के पश्चात् वे विमुक्तसग तापस का जीवन व्यतीत करने को शरीर पर राख मल लेते और ऊपर से एक खाल ओढ लेते थे। उनका सारा समय अग्निहोत्र, अध्यात्म-चिन्तन तथा साधना मे ही जाता था। तभी पार्वती उनकी सेवा के लिए वहां आने जाने लगी। वे यह पसन्द न करते थे तोभी उसे टाल न सके क्योकि वे प्रणयि-प्रिय थे। हृदय की इस कोमलता के साथ उनके चरित्र मे दृढता भी थी। उन्हे विश्वास था कि बड़े से बडा प्रलोभन भी उन्हे विचलित नही कर सकता। वे पार्वती के अत्यन्त

मनोमोहक रूप से भी आकृष्ट न हुए किन्तु उसकी साधना से उनका सिंहासन डोल गया और वे उसके क्रीतदास बन गए। उन्हें गृहजीवन का अनुभव था क्योंकि वे पहले भी गृहस्थ रह चुके थे किन्तु सती के दुःखद अवसान से, जब उनके हृदय को ठेस पहुंची तब उन्होंने फिर से कोई ऐसा नया प्रिय सम्बन्ध स्थापित करना अच्छा न समझा जिसका अन्त विषाद में हो। उन्हें वह स्वतन्त्र तथा निश्चिन्त जीवन अधिक भला लगा और वे चैन की बंसी बजाने लगे। बहुत दिन न हुए थे कि तारकासुर से सताए देवताओं को वीर सेनापति की आवश्यकता प्रतीत हुई और उस सेनापति को उत्पन्न करने के लिए इन्हें विवाह करना अनिवार्य हो गया। फिर पार्वती की साधना से भी ये प्रभावित हुए और तभी इन्होंने वशिष्ठ-दम्पति को देखा जिनका जीवन इन्हें अपने से कहीं अधिक सरस तथा सुखी प्रतीत हुआ। इन्हें यह भी जान पड़ा कि सत्पत्नी धर्माचरण मे बाधक नहीं प्रत्युत साधक होती है। ये गृहस्थ बने और पूरे गृहस्थ, वैसे ही जैसे पहले पूरे तपस्वी थे। वे पत्नी से फिर कभी अलग न हुए। पर ये दोनों रूप भी उनके असली नहीं, तभी तो पार्वती ने कहा था, 'उनके यथार्थ रूप को कोई नही जानता, वे विश्वमूर्ति है। उनका कोई एक रूप निर्धारित नही किया जा सकता।'

नम्रता तथा शिष्टता

शिवजी सब ऐश्वर्यों के अधिपति थे तो भी उन में न ममता थी न अभिमान—उनका व्यवहार शिष्ट तथा मधुर था। घर आए सप्तर्षियों का उन्होंने उचित सत्कार किया। पार्वती से विवाह करने के निमित्त हिमवान् से प्रार्थना करने मे उन्होंने अपनी हेठी नहीं समझी। बरात मे आए सब देवताओं का यथायोग्य सत्कार करना भी वे न भूले। हिमवान् के घर पहुंच उन्होंने अपने भावी श्वशुर को प्रणाम कर लोकाचार का पालन किया। विवाह हो चुकने पर उन्होंने वहां विराजमान पितामह ब्रह्मा के चरणों में झुक कर नमस्कार किया।

दुर्धर्ष वीरता

किन्तु उनकी उस नम्रता तथा शिष्टता की शोभा उस दुर्धर्ष वीरता के कारण थी जिसकी धाक दूर-दूर तक जमी हुई थी। उनसे लोहा लेना आसान न था। इन्द्र के दरबार मे कामदेव अपनी बहादुरी की शेखी बघारता हुआ कह तो गया कि वह शिवजी के भी छक्के छुड़ा सकता है, पर जब सिर पर आ पड़ी तो वह घबरा गया कि अब कुशल नहीं। इसलिए वह सिर पर कफन बाँधकर इनके आश्रम मे पहुंचा। वहाँ पहुंच कर उसने खूब ऊधम मचाया और सब व्यवस्था भंग कर दी। पर जब उसने इन पर हाथ उठाने की हिमाकत की तो वह एक ही दृष्टि में जल कर राख हो गया।

पार्वती की सखी ने ब्रह्मचारी को कहा था कि वे शकर न जाने कैसे कठोर हृदय है जो इनकी (पार्वती की) सुध नही लेते । वे नही देखते कि उनके ही ध्यान मे मगन इनकी ये रूखी और भूरी लटे किस तरह बिखर गई है । अभी ऊपर देखा जा चुका है कि काम को इन्होने ऐसी उग्र दृष्टि से देखा था कि वह वही ढेर हो गया । पर वह भी इनका बहुत ही ऊपर का रूप था । इनका अन्त करण अत्यन्त करुणापूर्ण था । ये आशुतोष प्रसिद्ध हैं । रति के विलाप पर ये तुरन्त पसीज गए और कामदेव के अपराध को क्षमा कर दिया । ये स्वभाव से मस्त तथा फक्कड थे किन्तु जब इन्होने एक कन्या का हाथ पकड ही लिया तो उसे अपनी तरह रहने को विवश नही किया, पार्वती, भले ही, इसके लिए भी प्रस्तुत थी । बरात मे जाते समय इन्होने अपना अटपटा रूप बदल डाला । वे नही चाहते थे कि उनके निहगपन के कारण उनके सास-सुसर अपनी पुत्री के भविष्य जीवन के विषय मे दुखी हो या पार्वती की सखिया ही ऐसे पति के चुनाव पर उसकी हसी उड़ाए । इनका शरीर खूब बलिष्ट और सुन्दर था । हिमवान् के नगर की नारियो ने इन्हे देखकर कहा था कि सुकुमार शरीर वाली हमारी राजकुमारी ने ऐसे वर के लिए जो दुष्कर तप किया वह ठीक ही था, क्योकि यदि कोई नारी इसकी दासी भी बन सके तो सौभाग्य की बात है फिर इसकी पत्नी के तो कहने ही क्या ? और इनके प्रसन्न चेहरे को देखकर वे विश्वास न कर सकी कि इनके ही क्रोध से कामदेव भस्म हुआ होगा । उनका विचार था कि इनके सुन्दर रूप को देखकर उसने स्वय ही आत्महत्या करली होगी । माता पिता से बिछुडने पर पार्वती को कुछ दुख होना स्वाभाविक था, अत ये उसे-ले मधुयामिनिया मनाने चल दिए और देश-देशान्तरो के विविध दृश्य दिखला उसका मनोरंजन करते रहे । यदि वह कभी अकारण भी रूठ गई तो उसे मनाने मे इन्होने कसर न की ।

कृपा तथा प्रेम

शिवजी विनोदी तथा हसोड़ भी कम न थे । पार्वती के प्रेम की परीक्षा के लिए ब्रह्मचारी का वेश भरने की सुन्दर सूझ से ही इसका पता चलता है । वहा जाकर और शिव के विषय मे ऊल जलूल बाते कहकर पार्वती को चिढाने और उसकी मुखमुद्रा को देखने मे उन्हे बड़ा आनन्द आया । अपने इस नाटक मे ये खूब सफल रहे, इससे इनकी अभिनय-निपुणता भी सिद्ध होती है । शिव अच्छे नट भी थे । वे ताण्डव नृत्य के आविष्कारक माने जाते है तथा नटराज नाम से प्रसिद्ध है ।

विनोदी तथा नटराज

महायोगी

शिवजी का यह चित्र अधूरा ही रह जायगा यदि इसके उपसंहार में उनके योगिराज रूप का भी निर्देश न किया गया। कामदेव जब उनके आश्रम में पहुंचा तब वे पद्मासन जमाए, ध्यान मग्न हो अपनी अन्तरात्मा के भीतर अक्षर परमात्मा का साक्षात्कार कर रहे थे। उनका मेरुदण्ड सीधा था, कंधे कुछ झुके तथा श्वासोच्छ्वास निरुद्ध थे। गोद में तले-ऊपर धरी हथेलियां खिले कमल सी प्रतीत होती थीं। न पलक झपकते थे न भौंहें हिलती थीं। उनकी वे आँखें नाक की नोक पर एकाग्र थीं जिनकी निश्चल तीखी पुतलियां कुछ-कुछ दिखाई देती थीं। ऐसे गंभीर रूप को देख कामदेव घबरा गया और उसके हाथ से तीर कमान गिर पड़े। ध्यान योग के साथ कर्मयोग में भी वे कच्चे न थे किन्तु उनके कर्म-फल की कामना से प्रेरित न थे। उन्होंने सप्तर्षियों को कहा था, "आप जानते ही हैं कि मैं कोई काम स्वार्थभावना से नहीं करता।" पार्वती से विवाह करके वे संसारी बने किन्तु फिर भी पद्म-पत्र की तरह निर्लिप्त रहे।

पार्वती की कुलीनता तथा रूप

इस महान काव्य की नायिका पार्वती हिमवान् की कन्या थी। उसका जन्म समृद्ध परिवार में हुआ था अतः उसका पालन-पोषण बड़े लाड़-प्यार से हुआ। परिवार के सब व्यक्तियों को वह पुत्रों की अपेक्षा भी अधिक प्यारी थी। उसका रूप स्वभाव से ही सुन्दर तथा आकर्षक था। तपस्या में रत शिव यद्यपि उसके साथ संपर्क को तप के प्रतिकूल समझते थे तो भी उसे आने-जाने से न रोक सके। जब वे ब्रह्मचारी का वेश बना उसके आश्रम में गए थे तब उन्होंने कहा था, "ब्रह्माजी के उच्च कुल में तुम्हारा जन्म हुआ है तुम्हारी रूप-शकल ऐसी प्यारी है कि मानो त्रिलोकी का सौन्दर्य मूर्तिमान हो उठा है, तुम्हें किसी बात की कमी नहीं तुम सुन्दर युवति हो फिर तुम्हें तप की क्या आवश्यकता है? यह भी देखा जाता है कि कभी मनस्विनी स्त्रियाँ किसी के क्रोध या अपमान के कारण ऐसा करने लगती हैं पर तुम्हें देख कर भला कौन क्रोध करेगा और पिता के घर तुम्हारा निरादर भी संभव नहीं। कोई और ही आकर तुम्हारा अपमान कर जाए, मैं यह भी नहीं मान सकता क्योंकि सांप की मणि को छीनने के लिए कौन हाथ बढ़ाता है? रही विवाह की बात—तो रत्न को ही सब ढूंढते जाते हैं, वह किसी को नहीं खोजता। शिवजी के उग्र रूप को देखकर जब कामदेव निराश हो गया था तब इसके सौन्दर्य के भरोसे पर ही उसे फिर साहस हुआ था। विवाह के

अवसर पर जब उसने स्नान किया तो आँखो के अजन, होठो के रजन तथा गालो पर के पराग के धुल जाने से निखरे उसके स्वाभाविक रूप को देखकर सखियाँ भी ठिठक गई और उसे कृत्रिम शृगारो से विकृत करना उन्हे अच्छा न लगा।

तीक्ष्ण बुद्धि शिक्षा तथा शील

पार्वती का शैशव गुड़िया तथा गेद से खेलने मे और फिर गगा की रेती मे बालू के घर बनाने मे बीत गया। वह कुछ बडी हुई तो पढने बैठी और पूर्व जन्म के सस्कारो के प्रभाव से सब विद्याए उसे अनायास ही आ गई। उसका चरित्र दृढ था तभी पिता ने युवति पुत्री को भी विश्वासपूर्वक अलग जा कर रहने तथा तप करने की अनुमति दे दी। उसकी तपस्या की धूम मच गई और ऋषि भी उसके दर्शनो के लिए आने लगे। ब्रह्मचारी ने उसे कहा था, "सप्तर्षियो द्वारा विसर्जित पूजा पुष्पाजलि से सुहावने इन गगाजलो ने हिमवान् और उसके कुल को इतना पवित्र नही किया जितना तुम्हारे निर्मल चरित्रो ने। तुम्हे देखकर मुझे आज यह विश्वास हो गया है कि मधुर रूप तथा पवित्र आचरण का चोली-दामन का साथ है।"

दृढ़-संकल्प तथा कष्ट सहिष्णुता

पार्वती बचपन से ही दृढ-सकल्प वाली थी। उसे कोई उसके निश्चय से विचलित न कर सकता था। शिवजी को पा सकना हँसी-खेल न था पर वह अपने उद्देश्य मे सफल हो कर ही रही। उसके सुकुमार शरीर और कठोर साधना का विचार करते ही एक सिहरन-सी दौड जाती है। कवि ने उसकी समता उस स्वर्ण कमल से की है जो कोमल होता हुआ भी भगुर नही। उसके चरित्र की इस विशेषता के कारण ही ब्रह्माजी ने उसे देवताओ के सेनापति की माता बनने योग्य समझा था।

प्रेम तथा पातिव्रत्य

पार्वती मन वाणी तथा कर्म से अपने पति की इतनी अनुगामिनी थी कि उसके विषय मे 'दो तन एक प्राण' वाली कहावत 'हीनोक्ति' समझी जाने लगी। कवि कहता है कि विवाह के अवसर पर उसने उनकी अर्द्धांगिनी बन उससे कही अधिक प्राप्त कर लिया।

करुणा

भारतीय लोक कथाओ मे प्रसिद्ध है कि पार्वती किसी भी दीन दुखिया के दुख को देख कातर हो उठती थी और उसकी सहायता के लिए शिवजी से हठ करती थी। वे कितनी भी आनाकानी करते पर अन्त मे चलती पार्वती की ही थी। उसकी

इस करुणाशीलता की सूचना कवि ने कुमार सम्भव के इस वर्णन मे दी है—"भयंकर जाड़े वाली पौष माघ की रातो मे जल मे खडी हो तपस्या करती वह जब बिछुड़े चकवे-चकवी का क्रन्दन सुनती थी तो उनके कष्ट के सामने अपने दु:ख को भूल जाती थी।" संक्षेप मे यह कहा जा सकता है कि पार्वती का चरित्र स्मरणातीत समय से भारतीय नारियों के लिए आदर्श बना हुआ है।

जातीय महापुरुषों म देवत्व का आरोप

राम कृष्ण आदि की तरह, सभवत., शिव भी ऐसे महापुरुष है जिन्हे उनके लोकोत्तर कल्याणकारी कार्यों के प्रति जाति की श्रद्धा ने देवता या ईश्वर बना दिया। ऐसा कब हुआ—यह निश्चयपूर्वक नही कहा जा सकता। पौराणिक युग में परमात्मा को उसकी उत्पादक, पालक तथा सहारक—इन तीन शक्तियो के प्रतीक तीन स्वतन्त्र देवताओ—ब्रह्मा विष्णु और शिव—के रूप मे देखा जाता है।

अमूर्त्त मनोवेगों का मानवीकरण

इसके विपरीत काम और रति आदि हमारे वे अमूर्त्त मनोवेग है जिन्हे वैदिक कवि की कल्पना ने मूर्त्त रूप प्रदान कर उन्हे व्यक्ति बना दिया है। अथर्व वेद[1] मे काम तथा उसके बाण का रोचक वर्णन है जिसमे पौराणिक कामदेव के चित्र की रूपरेखा दिखाई पड़ती है। कोई अपनी प्रेमिका को कहता है, "काम का चुटीला बाण तुझ पर चोट करे। तुझे अपनी शय्या पर

---

१. उत्तुदस्त्वोत्तुदतु मा धृथा शयने स्वे।
इषु. कामस्य या भीमा तया विध्यामि त्वा हृदि॥
आधीपर्णा कामशल्यामिषु सङ्कल्पकुल्मलाम्।
तां सुसन्नता कृत्वा कामो विध्यतु त्वा हृदि॥
या प्लीहान शोषयति कामस्येषु सुसन्नता।
प्राचीनपक्षा व्योषा तया विध्यामि त्वा हृदि॥
शुचा विद्धा व्योषया शुष्कास्याऽभि सर्पमा।
मृदुर्निमन्यु. केवली प्रियवादिन्यनुव्रता॥
आजामि त्वाजन्या परि मातुरथोपितु.।
यथा मम क्रतावसो ममचित्तमुपायसि॥
व्यस्यै मित्रावरुणौ हृदश्चित्तान्यस्यतम्।
अथैनामक्रतु कृत्वा ममैव कृणुत वशे॥ अथर्व काण्ड ३, सूक्त २५॥

चैन न मिले। इस वाण मे व्याकुलता के पंख लगे है, कामेच्छा का फलक और सकल्पो की डडी। कामदेव तुझे इसका निशाना वनाए जिससे तुझे आग सी लग जाए। तेरा मुँह मेरी प्यास से सूख जाए, तेरा हृदय प्रतिरोध छोड़कर मृदु बन जाए और तू अपने माता-पिता से अलग हो मेरे पास चली आए। तू मुझसे मीठे बोल बोले, तेरे सब काम मेरे अनुकूल हो और तू केवल मेरी ही बन जाए।"

कुमारसभव के काम तथा रति देहधारी प्राणी है। इनकी कुछ शक्तियों अतिमानव है और इन्हे देवता कहा जाता है किन्तु ये वस्तुत मर्त्य है अमर नही। ये सौन्दर्य तथा प्रेम-माधुरी के आदर्श प्रतीक है। विदर्भ की नगरनारियाँ इन्दुमती तथा अज का वर्णन करती हुई कहती है कि "ये दोनो पूर्व जन्म में रति तथा काम रहे होगे तभी तो इसने सैकडो राजाओ मे से अज को ही चुना। क्योकि अन्त करण मे जन्मान्तर के सस्कार भी सुरक्षित रहते है यह सच है।" कामदेव शिवजी द्वारा दग्ध होकर अनग हो जाता है। उसका धनुष फूलो का है और उसके पॉच वाण—अरविद, अशोक, आम्रमजरी, नवमल्लिका तथा नीलोत्पल भी फूल ही है। प्रेमियो पर इनका प्रभाव वहुत कुछ वैसा ही हुआ करता है जैसा ऊपर अथर्ववेद के मन्त्रो मे कहा गया है। वे उन्हे उन्मत्त करने वाले, विरह की आग मे जलाने वाले, शरीर को सुखाने वाले, अक्रतु अर्थात् निष्क्रिय या प्रतिरोध मे असमर्थ कर देने वाले और समोहक हुआ करते है। कामदेव की सवारी मकर, पत्नी रति तथा मित्र वसन्त है। चन्द्रमा और दक्षिण-पवन आदि भी उसके अनेक सहायक है। वह इन्द्र का स्वामिभक्त सेवक है और वीर है। इन्द्र को भी उस पर भरोसा है। वह इसे कहता है, कि "मै तुम्हे भी अपनी तरह ही उत्तरदायी समझता हूँ अत बडे भारी काम मे लगा रहा हूँ।" इन्द्र इसका विशेप आदर करता है जिससे यह कुछ फूल जाता है और शेखी मे आकर शिवजी को भी हरा सकने का दम भरता है। इन्द्र यही तो चाहता था। और वह इसे अपने वाण से शिव को पार्वती के प्रति आकृष्ट करने को कहता है। यह कुछ घबरा तो जाता है पर अपनी बात से फिरता नही। इसका चित्रण करते समय कवि के सामने राजा के किसी ऐसे नर्म सचिव का रूप रहा होगा जो विट विदूषक आदि रहकर उसकी प्रेम लीलाओ मे सहायता किया करते थे और जिसका आभास कवि के नाटक मालविकाग्निमित्र मे मिलता है। कामदेव कहता है कि पतिव्रताओ के धर्म, तपस्वियो के तप तथा नीतिविशारदो की नीति को विफल कर देना उसके वाए हाथ का खेल है। इन्द्र भी इसका

से कोई भी उसके आँसू पोंछने नहीं आता तो भी वह उन्हे कोसती नही। उसे सन्तोष है कि वह अपना कर्तव्य पालन करता हुआ वीर गति को प्राप्त हुआ है। अन्त मे वह पति की चिता पर जलकर सती होने का निश्चय करती है किन्तु तभी आकाश-वाणी उसे ऐसा करने से रोक देतीहै। सक्षेप मे, रति का चरित्र एक कुलीन सत्पत्नी के अनुरूप है।

हिमवान्

पर्वतराज हिमवान् हिमालय के उन प्रदेशो का अधिपति है जिन्हे कवि देव[1] भूमि अर्थात् स्वर्ग मानता है। काव्य के आरम्भ मे ही उसे देवतात्मा[2] कहकर यह स्पष्ट कर दिया गया है कि वह मिट्टी पत्थर आदि का ढेर नही किन्तु कोई चेतन मानव है। उसका शरीर खूब लम्बा चौडा, गौरवर्ण और बलिष्ठ है। उसके होठ लाल, भुजाए देवदारु के समान लम्बी और छाती चट्टान जैसी चौड़ी तथा दृढ है। उसके पैर धरने से धरती दब सी जाती है अत वह चलता फिरता हिमालय[3] प्रतीत होता है। यज्ञो मे सहायक होने तथा पृथ्वी के पालन मे उसकी असाधारण क्षमता के कारण प्रजापति ने उसे पर्वतराज का पद प्रदान कर यज्ञ भाग का अधिकारी बनाया है। उसके वन दुर्लभ औषध वनस्पतियो तथा खाने बहुमूल्य रत्नराशियो एव धातुओ से भरपूर है जिनके कारण उसका कोष अतुल सम्पत्ति का भडार है। उसकी पत्नी मेना प्रजापति के उच्च कुल की राजकन्या है। उसका पुत्र मैनाक तथा पुत्री पार्वती है। वह सद्गृहस्थ है और एक बडे फलते-फूलते पविार का स्वामी है। वह सुशिक्षित तथा सदाचारी है। उसके यहा नारद तथा सप्तर्षि जैसे अतिथि पधारते है और उनकी सेवा कर वह प्रसन्न होता है। उसके विचार उदार है और उसने अपनी सुशिक्षित पुत्री को मनचाहा पति चुनने की स्वतन्त्रता दी हुई है। जब उसे पता चलता है कि पार्वती शिव से विवाह करना चाहती है तो वह बीच मे नही पड़ता। पार्वती की आरम्भिक असफलता से वह दुखी होता है और उसे शिव के शून्य तपोवन से घर ले आता है। वह इस दुर्घटना से क्षुभित नही होता जिससे उसकी गभीरता का पता चलता है। वह आत्माभिमानी भी है इसलिए शिवजी की

---

१. दिव यदि प्रार्थयसे वृथा श्रम पितु. प्रदेशास्तव देवभूमय ।। कुमार० ५ का ४५

२. अस्त्युत्तरस्या दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराज. ।।
कुमार० सर्ग १ पद्य १ ।।

३. धातुताम्राधर प्राशुर्देवदारुबृहद्भुज ।
प्रकृत्यैव शिलोरस्क. सुव्यक्तो हिमवानिति ।। कुमार० सर्ग ६ पद्य ५१ ।।

भी खुशामद नही करना चाहता। संभवत. इसी कारण शिव सप्तर्षियो से कहते है, कि उसका सिर ऊचा है। वह अपनी स्थिति से डिगता नही, उसने पृथ्वी को सम्भाल रक्खा है। ऐसे महानुभाव के साथ सम्बन्ध स्थापित होने से तुम मुझे भी कृतार्थ समझो। किंतु वह साथ ही शिष्ट तथा नम्र भी कम नही। उसका व्यवहार मधुर तथा बोलचाल सुसस्कृत है। सप्तर्षियो को घर आते देख वह आगे बढ़ उनका स्वागत करता है और उचित आतिथ्य कर कहता है, "आपका यह अकस्मात् आगमन मेरे लिए बिना बादलो की वर्षा तथा बिना पुष्पोद्‌गम के फलो के समान है। हे द्विजवरो, गंगाजल और आपका चरणोदक–इन दो को ही मस्तक पर धारण कर आज मै अपने आप को पवित्र मानता हू। आपके चरणो के स्पर्श से मेरा वह स्थावर शरीर तथा आपकी सेवा कर यह जगम रूप—दोनो ही आज कृतार्थ हो गए।" इसके उत्तर मे महर्षि अगिरा कहते है, "यह सब ठीक है। तुम्हारा मन भी तुम्हारे इन शिखरो के समान उच्च है। अविच्छिन्न तथा निर्मल प्रवाह वाली और समुद्र की तरगो तक बे रोक-टोक पहुचती तुम्हारी कीर्तियों तथा नदियों से तीनो लोक पवित्र हो रहे है। यद्यपि पर्वत-रूपी तुम्हारे उस स्थावर शरीर मे समस्त कठोरता भरी हुई है तो भी सत्पुरुषो की सेवा करने वाला यह देह भक्तिभाव से सदा झुका रहता है।" शिव जैसा जामाता पाकर, लोक मे हिमवान् की प्रतिष्ठा और भी बढ जाती है किंतु उसमे फिर भी अभिमान का लेश नही। बरात को आती देख शिवजी तथा देवगणो के समक्ष उसका सिर अनायास ही झुक जाता है। वह जी खोल कर, अपनी पद-प्रतिष्ठा, ऐश्वर्य तथा पुत्री के प्रति प्रेम के अनुरूप विवाह का आयोजन करता है। विवाह के पश्चात्, कुछ दिन रहकर जब शिवजी पार्वती को लेकर जाने लगते है तब वियोग का विचार उसे विकल कर देता है। जिसके सिर पर हिम के भयकर तूफानो के आक्रमण विफल हो जाते है उसी के पुत्री स्नेह कातर हृदय से करुणा की वे धाराएँ फूट पडती है जो आज भी जगत् को आप्लावित कर रही है।

संवाद या कथोपकथन

काव्यो मे कथोपकथन का उतना महत्त्व नही जितना रूपको मे, तो भी कालिदास के कुछ कथोपकथन इतने उत्कृष्ट हैं कि काव्य सौन्दर्य की समीक्षा करते समय उनकी उपेक्षा नही की जा सकती, वे बड़े ही सजीव तथा प्रभावक है। उनमे राजदरबारों, आश्रमो, परिवारो, मित्र मिलन या युद्धसंघर्ष आदि के अवसर पर बातचीत करने वाले विभिन्नस्तरो के लोगो के सवादों की नाटकीय वास्तविकता व्याप्त है, और वह वास्तविकता काव्यकला से परिष्कृतह

गई है। कुमारसभव के पांचवे सर्ग में ब्रह्मचारी तथा पार्वती का और छठे सर्ग मे महर्षि अगिरा तथा हिमवान् का सवाद इसके सुन्दर उदाहरण है। इनका एक एक शब्द नपा-तुला तथा वाँछित प्रभाव को उत्पन्न करने वाला है। बातचीत शुरू होते ही ब्रह्मचारी कुछ तो पार्वती के शारीरिक सुखदुख के विषय मे अपनी चिन्ता प्रकट कर और कुछ उसके रूप तथा शील की प्रशसा कर उसे यह समझा देता है कि वह उसका हित-चिन्तक है और उसका विश्वास प्राप्त कर लेता है। कालिदास इन सवादो मे शुद्ध तर्क को महत्त्व नही देता। वह तो सहानुभूति[1], सौहार्द[2], अनिष्टाशका[3], और इन सबसे बढ़कर प्रशसा[4] द्वारा हृदय को प्रभावित करना चाहता है। वह जानता है कि स्त्रियो को वश मे करने

---

१. प्रयुक्तसत्कारविशेषमात्मना न मां परं सप्रतिपत्तुमर्हसि।
यत सता सनतगात्रि[1] सगत मनीषिभि साप्तपदीनमुच्यते ॥
कुमार० सर्ग ५, पद्य ३९ ॥

२. कियच्चिर श्राम्यसि गौरि! विद्यते ममापि पूर्वाश्रमसचित तप।
तदर्धभागेन लभस्व काक्षित वर तमिच्छामि च साधु वेदितुम् ॥
कुमार० सर्ग ५, पद्य ५०।

३. (क) मुनिव्रतैस्त्वामतिमात्रकर्शिता दिवाकराप्लुष्टविभूषणास्पदाम्।
शशाङ्कलेखामिव पश्यतो दिवा सचेतस कस्य मनो न दूयते ॥
कुमार० सर्ग ५, पद्य ४८ ॥

(ख) अवस्तुनिर्बन्धपरे! कथ नु ते करोऽयमामुक्तविवाहकौतुक.।
करेण शभोर्वलयीकृताहिना सहिष्यते तत्प्रथमावलम्बनम् ॥
कुमार० सर्ग ५ पद्य ६६ ॥

४. (क) कुले प्रसूति प्रथमस्य वेधसस्त्रिलोकसौन्दर्यमिवोदित वपु।
अमृग्यमैश्वर्यसुख नव वयस्तप फल स्यात्किमतः पर वद ॥
कुमार० सर्ग ५ पद्य ४१ ॥

(ख) उपपन्नमिद सर्वमत. परमपि त्वयि।
मनस. शिखराणा च सदृशी ते समुन्नति· ॥
कुमार० सर्ग ६ पद्य ६६ ॥

(ग) स्थाने त्वा स्थावरात्मान विष्णुमाहुस्तथा हि ते।
चराचराणा भूताना कुक्षिराधारता गत ॥
कुमार० सर्ग ६, पद्य ६७॥

के लिए यदि उनके रूप की प्रशंसा ब्रह्मास्त्र है तो पुरुषो को मूर्ख और निर्बल बनाने के लिए उनकी बुद्धि तथा बल की प्रशसा आवश्यक है। इन संवादो की यही विशेषता है, और ये सक्षिप्त तथा सारगर्भित भी है। इनमें कितने ही वाक्य ऐसे है जो सस्कृत साहित्य मे सूक्ति[1] बन गए है और वैसा प्रसग उपस्थित होने पर, बातचीत मे अनायास ही वक्ता के मुख से निकल पड़ते है।

देश काल

काव्यो मे देश काल का वर्णन प्राय. उद्दीपन विभाव के रूप मे किया जाता है क्योकि ये परिस्थिति के अनुकूल पृष्ठभूमि तैय्यार कर रसानुभूति मे सहायता करते है। कालिदास की व्यापक किंतु सूक्ष्म तथा सारग्राहिणी प्रतिभा देशकाल के विस्तृत क्षेत्र मे से केवल अत्यावश्यक एव प्रतिनिधि तत्त्वो को छाट और उन्हे गिने-चुने शब्दो मे रखकर पूर्ण चित्र की व्यंजना कर देती है। कुमारसभव के प्रथम सर्ग मे कवि ने हिमालय का वर्णन करते हुए वहा की कोई विशेषता[2] नही छोड़ी। शीत

---

१. (क) शरीरमाद्यं खलु धर्म साधनम्।
   (ख) न रत्नमन्विष्यति मृग्यते हि तत्।
   (ग) द्विषन्ति मन्दाश्चरित महात्मनाम्।
   (घ) मनोरथानामगतिर्न विद्यते।
   (ङ) न केवल यो महतोऽपभाषते शृणोति तस्मादपि य स पापभाक्।
   कुमार० सर्ग ५, पद्य ३३, ४५, ७५, ६४, ८३॥
   (च) अपमेघोदय वर्षमदृष्टकुसुम फलम्।
   अतर्कितोपपन्न वो दर्शन प्रतिभाति मे।
   (छ) मन्ये मत्पावनायैव प्रस्थान भवतामिह॥
   (ज) विनियोगप्रसादा हि किंकरा. प्रभविष्णुषु॥
   (झ) अशोच्या हि पितु कन्या सद्भर्तृ प्रतिपादिता॥
   कुमार० सर्ग ६, पद्य ५४, ६१, ६२, ७९॥

२. (क) अनन्तरत्नप्रभवस्य यस्य हिम न सौभाग्यविलोपि जातम्।
   कुमार० सर्ग १, पद्य ३॥
   (ख) यश्चाप्सरोविभ्रममण्डनानां संपादयित्री शिखरैर्बिभर्ति।
   बलाहकच्छेदविभक्तरागामकालसध्यामिव धातुमत्ताम्॥
   कुमार० सर्ग १, पद्य ४॥

की अधिकता, रत्न तथा धातुओ की खानें, जमे हिम पर चलने की असुविधा, भूर्जपत्र, चमरीगाय, गंगा आदि सबका यथार्थ वर्णन किया गया है। शिशुपाल-वध महाकाव्य मे रैवतक पर्वत के वर्णन की तरह उसमे अनेक कल्पित पदार्थो की भरती नही की गई। तीसरे सर्ग मे वसन्त[1] ऋतु तथा उसके उन्मादक प्रभाव[2] का वर्णन भी कवि ने वड़े सुन्दर ढंग से किया है। कोई भी वात देश तथा काल के विरुद्ध होकर रसभग का कारण न वने इसके लिए वह सदा सतर्क रहता है।

कालिदास की कविता की एक वड़ी विशेषता उसकी सरसता है। कुमारसभव मे मुख्य रस[3] शृगार है किन्तु स्थान-स्थान पर

(ग) उद्वेजयत्यङ्गुलिपार्ष्णिभागान्मार्गे शिलीभूतहिमेऽपि यत्र।
न दुर्वहश्रोणिपयोधरार्ता भिन्दन्ति मन्दा गतिमश्वमुख्य.॥
कुमार० सर्ग १, पद्य ११॥

(घ) न्यस्ताक्षरा धातुरसेन यत्र भूर्जत्वच. कुञ्जरविन्दुशोणा.।
व्रजन्ति विद्याधरसुन्दरीणामनङ्गलेखक्रिययोपयोगम्॥
कुमार० सर्ग १, पद्य ७

(ङ) लाङ्गूलविक्षेपविसर्पिशोभैरितस्ततश्चन्द्रमरीचिगौरै।
यस्यार्थयुक्त गिरिराजशब्द कुर्वंति वालव्यजनैश्चमर्य.॥
कुमार० सर्ग १, पद्य १३

(च) कपोलकण्डू. करिभिर्विनेतु विघट्टिताना सरलद्रुमाणाम्।
यत्र स्रुतक्षीरतया प्रसूत सानूनि गन्ध सुरभी करोति॥
कुमार० सर्ग १, पद्य ९॥

१. वालेन्दुवक्राण्यविकासभावाद्बभु. पलाशान्यतिलोहितानि।
सद्यो वसन्तेन समागताना नखक्षतानीव वनस्थलीनाम्॥
कुमार० सर्ग ३, पद्य २९॥

२. पर्याप्तपुष्पस्तबकस्तनाभ्य स्फुरत्प्रवालौष्ठमनोहराभ्य.।
लतावधूभ्यस्तरवोऽप्यवापुर्विनम्रशाखाभुजवन्धनानि॥
कुमार० सर्ग ३, पद्य ३९॥

३. (क) हरस्तु किंचित्परिलुप्तधैर्यश्चन्द्रोदयारम्भ इवाम्बुराशि।
उमामुखे विम्बफलाधरोष्ठे व्यापारयामास विलोचनानि॥

(ख) विवृण्वती शैलसुतापि भावमङ्गै. स्फुरद्वालकदम्बकल्पै.।
साचीकृता चारुतरेण तस्थौ मुखेन पर्यस्तविलोचनेन॥
कुमार० सर्ग ३, पद्य ६७, ६८॥

प्रसंगानुसार अन्य रस भी पाए जाते है। पांचवे सर्ग मे पार्वती के पूर्वराग[1] का जो वर्णन उसकी सखी ने ब्रह्मचारी के समक्ष किया है वह बड़ा मार्मिक है । चतुर्थ सर्ग मे रति-विलाप करुण रस[2] के परिपाक का उत्कृष्ट नमूना है। मदन दाह के संक्षिप्त प्रसंग मे रौद्र रस[3] की झाकी है, और इन्द्र के दरबार मे कामदेव की गर्वोक्तियो मे वीररस[4] देखा जा सकता है। यहा रसों के लम्बे उद्धरण देकर विषय का विस्तार अनावश्यक है क्योकि मिशरी को तो जहाँ से भी चखे वह मीठी ही लगेगी।

रस

यहा तक कुमारसभव के भावपक्ष अर्थात् उद्देश्य से रस पर्यन्त प्रत्येक तत्त्व पर अलग-अलग विचार किया जा चुका। उसके कलापक्ष अर्थात् भाषा, शैली, गुण, अलकार, तथा छद का विवेचन पृथक् नकर रघुवश के प्रकरण में एक साथ ही उस पर लिखना अधिक उपयुक्त होगा क्योकि इसकी दृष्टि से दोनो महाकाव्यो में कोई विशेष अन्तर नही है।

कुमार संभव का कलापक्ष

---

१. तदाप्रभृत्युन्मदना पितुर्गृहे ललाटिकाचन्दनधूसरालका ।
न जातु बाला लभते स्म निर्वृतिं तुषारसंघातशिलातलेष्वपि ॥
उपात्तवर्णे चरिते पिनाकिन. सबाष्पकण्ठस्खलितैः पदैरियम् ।
अनेकश. किन्नरराजकन्यका वनान्तसगीतसखीररोदयत् ॥
कुमार० सर्ग ५, पद्य ५५, ५६ ॥

२. अथ सा पुनरेव विह्वला वसुधालिंगनधूसरस्तनी ।
विललाप विकीर्णमूर्धजा समदु खामिव कुर्वती स्थलीम् ॥ कु० सर्ग ४ पद्य ४ ॥
अहमेत्य पतङ्गवर्त्मना पुनरङ्काश्रयिणी भवामि ते ।
चतुरै. सुरकामिनीजनै प्रिय ! यावन्न विलोभ्यसे दिवि ॥ सर्ग ४ पद्य २० ॥

३. तप परामर्शविवृद्धमन्योर्भ्रूभङ्गदुष्प्रेक्ष्यमुखस्य तस्य ।
स्फुरन्नुदर्चि· सहसा तृतीयादक्ष्ण कृशानु किल निष्पपात ॥
कुमार० सर्ग ३, पद्य ७१ ॥

४. प्रसीद विश्राम्यतु वीर ! वज्र शरैर्मदीयै. कतमः सुरारिः ।
बिभेतु मोघीकृतबाहुवीर्य स्त्रीभ्योऽपि कोपस्फुरिताधराभ्य· ॥
तव प्रसादात्कुसुमायुधोऽपि सहायमेकं मधुमेव लब्ध्वा ।
कुर्यां हरस्यापि पिनाकपाणेर्धैर्यच्युतिं के मम धन्विनोऽन्ये ॥
सर्ग ३, पद्य ९, १० ॥

कवि का दूसरा महाकाव्य रघुवश है है। इसमे १९ सर्ग है और इसका विषयक्षेत्र अधिक व्यापक है। इसकी रचना उसने विशेप उद्देश्य से की है। कवि ने अपने दीर्घ जीवन मे वहुत कुछ देखा-सुना था। सभव है कि उसकी आँखो के आगे कई राज्य परिवर्तन भी हुए थे। उन अनुभवो के आधार पर व्यक्ति, समाज, राजा, प्रजा तथा राज्यादि के विपय मे उसकी अनेक मान्यताए बन गई थी, जिन्हे मूर्तरूप देकर वह लोक के समक्ष इनके आदर्श उपस्थित करना चाहता था और रघुवश द्वारा उसने यही किया।

रघुवंश

उद्देश्य—उसकी दृष्टि मे मानव जीवन का उद्देश्य इहलोक मे अधिक से अधिक अभ्युदय तथा परलोक मे नि श्रेयस की प्राप्ति था और इसके लिए वह राष्ट्र के प्रत्येक व्यक्ति के स्वतन्त्र विकास को अत्यावश्यक समझता था और वह विकास तभी सभव था जब माता-पिता केवल वासना के वशीभूत न होकर किसी उच्च सकल्प से सतान को उत्पन्न करने का निश्चय करे और वालक के जन्म से भी पहले से ही पुसवन, जातकर्मादि वैदिक[1] सस्कारो को इस प्रकार

---

१ (क) सोऽहमाजन्मशुद्धानामाफलोदयकर्मणाम् ।
आसमुद्रक्षितीशानामानाकरथवर्त्मनाम् ॥ रघु० सर्ग १, पद्य ५ ॥

(ख) यथाक्रम पुसवनादिका. क्रिया धृतेश्च धीर सदृशीर्व्यधत्त स. ॥

(ग) स जातकर्मण्यखिले तपस्विना तपोवनादेत्य पुरोधसा कृते ।
दिलीपसूनुर्मणिराकरोद्भव प्रयुक्तसस्कार इवाधिक बभौ ॥

(घ) अथोपनीत विधिवद्विपश्चितो विनिन्युरेन गुरवो गुरुप्रियम् ।

(ङ) अथास्य गोदानविधेरनन्तर विवाहदीक्षा निरवर्तयद्गुरु. ।
रघुवश सर्ग ३ के पद्य १०, १८, २९, ३३ ॥

(च) श्रुतदेहविसर्जन पितुश्चिरमश्रूणि विमुच्य राघव. ।
विदधे विधिमस्य नैष्ठिक यतिभि सार्धमनग्निमग्निचित् ॥
रघु० सर्ग ८, पद्य २५ ॥

(छ) कुमारा कृतसस्कारास्ते धात्रीस्तन्यपायिन ।
रघु० सर्ग १०, पद्य ७८ ॥

(ज) तपस्विससर्गविनीतसत्त्वे तपोवने वीतभया वसास्मिन् ।
इतो भविष्यत्यनघप्रसूतेरपत्यसस्कारमयो विधिस्ते ॥
रघु० सर्ग १४, पद्य ७५ ॥

करने लगे कि पूर्वोक्त सकल्पो के स्मरण के साथ-साथ उनका उत्तम प्रभाव वच्चे पर भी पडता रहे। वच्चो का पालन-पोपण तथा शिक्षा-दीक्षा ऐसे स्वतन्त्र वातावरण मे हो जहा उनके शरीर, मन तथा आत्मा को किसी प्रकार की कुण्ठा या घुटन का अनुभव न हो। काश्यप[1], कण्व, वाल्मीकि, च्यवन और वरतन्तु आदि कुलपतियो के आश्रम इसी प्रकार के प्रतिष्ठान थे जहा से स्वतन्त्र व्यक्तित्व वाले कौत्स जैसे आत्मविश्वासी ब्राह्मण तथा लवकुश या भरत और आयु[2] जैसे वीर क्षत्रिय निकलते थे। इन्हे ही कवि भारतीय सस्कृति का मूल स्रोत तथा प्रवान शक्ति केन्द्र मानता था। राजनीति के सामयिक दाव-पेचो से अलग-थलग रहने वाले महान् गुरु इन आश्रमो मे रहते हुए, जाति की भावी संतति के चरित्र का निर्माण किया करते थे, किंतु सकट के समय, और आवश्यकता आ पड़ने पर वे अपना सक्रिय सहयोग भी देते रहते थे। राजा दिलीप ने गुरु वशिष्ठ से कहा था "मेरी प्रजा को अग्नि, जल, महामारी, दुर्भिक्ष तथा अकाल-मृत्यु आदि दैवी एव

---

१. शाकुन्तल नाटक मे काश्यप और कण्व के तथा विक्रमोर्वशीयनाटक मे च्यवन के आश्रम का उल्लेख है। उर्वशी के पुत्र आयुके सस्कार तथा शिक्षा च्यवन के आश्रम मे हुए थे।

२. (क) उर्वशी सभवस्यायमैलसूनोर्वनुष्मत.।
कुमारस्यायुपोवाण· प्रहर्तुर्द्विपदायुपाम्॥ विक्रमो० अक ५, पद्य ७।

(ख) उपपन्न ननु शिव सप्तस्वगेपु यस्य मे।
दैवीना मानुपीणा च प्रतिहर्ता त्वमापदाम्॥ रघु० सर्ग १ पद्य ६०॥

(ग) तद्दर्शनादभूच्छभोर्भूयान्दारार्थ मादर। कुमार० सर्ग ६ पद्य १३।

(घ) अपि प्रसन्नेन महर्पिणा त्व सम्यग् विनीयाऽनुमतो गृहाय।
कालोह्ययं सक्रमितु द्वितीय सर्वोपकारक्षममाश्रम ते॥ रघु० सर्ग ५ पद्य १०

(ङ) तदुपहि तकटुम्व शान्तिमार्गोत्सुकोऽभू-।
न्नहि सतिकुलधुर्ये सूर्यवश्या गृहाय॥ रघु० सर्ग ७ पद्य ७१॥

(च) मुनिवनतरुच्छाया देव्या तया सह शिश्रिये।
गलितवयसामिक्ष्वाकूणामिदं हि कुलव्रतम्॥ रघु० सर्ग ३ प० ७०

(छ) भूत्वा चिराय चतुरन्त मही सपत्नी
दौष्यन्ति मतिरथ तनप्रनिवेश्य।
भर्त्रातदर्पित कुटुम्वभरेण सार्ध
शान्ते करिष्यसि पदं पुनराश्रमे ऽस्मिन्॥ शाकुन्तल अंक ४ पद्य २०॥

चोर-डाकू, शत्रु आदि मानुषी आपत्तिया नही सताती क्योकि नीति-निपुण आपके तप तथा मन्त्रणा के प्रभाव से मेरे शासन-तन्त्र के सब अग--राजा, मन्त्रिमण्डल, मित्र राष्ट्र, राजकोष, जनता, दुर्ग तथा सेना सब स्वस्थ है। आपके ये उपाय मेरे अलक्ष्य शत्रुओ को भी दूर से ही नष्ट कर देते है। अत मेरे वे शस्त्र तो बेकार ही हो गए जो केवल दीखने वाले लक्ष्य पर ही प्रहार कर सकते है।

कालिदास वर्ण धर्मो के साथ आश्रम धर्मो के पालन पर भी बहुत बल देता है। सपत्नीक वशिष्ठ को देख शिवजी की भी गृहस्थ बनने की इच्छा प्रबल होगई---यह कुमार सभव के प्रकरण मे लिखा जा चुका है। रघुवश मे भी रघु कौत्स से पूछता है, "क्या गुरूजी ने तुम्हे खूब पढा लिखा कर, प्रसन्न चित्त से घर जाने की अनुमति दी है, क्योकि तुम सब आश्रमो का उपकार करने मे समर्थ गृहाश्रम मे प्रवेश के योग्य हो गए हो ?" फिर वही रघु एक दिन युवा पुत्र अज पर उत्तरदायित्व डालकर वानप्रस्थ हो जाता है। उसके पिता दिलीप ने भी यही किया था। कालिदास ने कण्व द्वारा शकुन्तला को भी कहलवाया था, "जब दुष्यन्त राज्य का भार पुत्र को सौपकर निश्चिन्त हो जाएगा तब तू उसके साथ ही इस आश्रम मे रहने को आएगी।" कालिदास ने रघुवश के आठवे सर्ग मे वानप्रस्थ आश्रम मे प्रविष्ट रघु तथा राज्य मे नवाभिषिक्त अज की साधनाओ का जो सुन्दर वर्णन तुल्ययोगिता[1] अलंकारो की माला बनाकर किया है वह पढने योग्य है।

समाज की उन्नति के लिए राज्य मे सुख, शान्ति, समृद्धि तथा सुव्यवस्था का होना अत्यावश्यक है और इसका मुख्य आधार ऐसा शासक है जो प्रतापी,

---

१ (क) यतिपार्थिवलिङ्गधारिणौ ददृशाते रघुराघवौ जनै ।
अपवर्गमहोदयार्थयोर्भुवमशाविव धर्मयोर्गतौ ।
अजिताधिगमाय मन्त्रिभिर्युयुजे नीतिविशारदैरज. ।
अनपायि पदोपलब्धये रघुराप्तै समियाय योगिभि ॥
न नव प्रभुरा फलोदयात्स्थिर कर्मा विरराम कर्मण ।
न च योगविधेर्नवेतर स्थिरधीरा परमात्मदर्शनात् ॥
इति शत्रुषु चेन्द्रियेषु च प्रतिपिद्धप्रसरेपु जाग्रतौ ॥
प्रसितावुदयापवर्गयो रुभयी सिद्धि मुभाववापतु ॥
रघु० सर्ग ८ पद्य १६, १७, २२, २३ ॥

(ख) यथा प्रह्लादनाच्चन्द्र प्रतापात्तपनो यथा ।
तथैव सोऽभूदन्वर्थो राजा प्रकृतिरजनात् ॥ रघु० ४ पद्य० १२ ॥

जागरूक, जितेन्द्रिय और न्याय-परायण तो हो ही किन्तु प्रजा के पालन तथा अनुरजन को भी अपना परम कर्त्तव्य समझे। कालिदास ऐसे राजा को इन्द्रादि लोकपालो की विभूतियों से युक्त तथा पितृ-तुल्य मानता है। अपने काव्य के आरम्भ मे उसने आदर्श राजाओं के गुणो की तालिका[1] देते हुए लिखा है, "वे जन्म से ही शुद्ध पवित्र थे और उन्होने अपने चरित्र को कभी कलकित नही होने दिया। वे जिस काम को हाथ मे ले लेते थे उसे पूरा करके ही छोड़ते थे। उनके राज्य का विस्तार समुद्र पर्यन्त था और उनके रथ की गति सर्वत्र बेरोक-टोक थी। वे विधिपूर्वक यज्ञ-याग करते तथा याचको को भरपूर दान देते थे। वे अपने-पराये का विचार किए बिना अपराधी को दण्ड देते और अवसर के लिए सदा सतर्क रहते थे। वे दान के लिए धन-संग्रह करते तथा यश के लिए विजय-यात्रा करते थे। वे बचपन मे विद्याभ्यास कर जवानी मे सासारिक सुखो का उपभोग करते और सतान उत्पन्न करने के लिए विवाह करते थे। बुढापे मे वे मुनिवृत्ति धारण कर वनो मे चले जाते और अन्त मे योग द्वारा प्राण त्याग देते थे।" इसके आगे सारे काव्य मे उसने यह दिखाया है कि रघुवशी राजा इन गुणो की कसौटी पर पूरे उतरते है और उनका चरित्र आदर्श है।

रघुवश मे राजा दिलीप से अग्निवर्ण तक सूर्य वश के २५ राजाओ की जीवन कथा सरस काव्यशैली में लिखीगई है। इसमे १० से १५ तक ६ सर्गो मे रामकथा का सक्षेप वाल्मीकि रामायण के आधार पर दिया गया है। उसमे कवि को अपनी तरफ से कुछ जोडना या विशेष परिवर्तन करना नही पडा है। किन्तु अन्य राजाओ के चरित्र के विकास के लिए उसने पौराणिक पद्धति पर अनेक प्रकार की कथाओ की सृष्टि की है। जिनमे उसका मन खूब रमा है, और उसकी उन्मुक्त प्रतिभा को अपना चमत्कार दिखाने का भी अच्छा अवसर मिला

---

१. सोऽह माजन्म शुद्धानामाफलोदय कर्मणाम्।
आसमुद्रक्षितीशाना मानाकरथवर्त्मनाम्॥
यथाविधिहुताग्नीना यथा कामार्चितार्थिनाम्।
यथापराधदण्डाना यथाकालप्रबोधिनाम्॥
त्यागाय सभृतार्थाना सत्याय मितभाषिणाम्।
यशसे विजिगीषूणा प्रजायै गृहमेधिनाम्॥
शैशवेऽभ्यस्तविद्याना यौवनो विषयैषिणाम्।
वार्धके मुनिवृत्तीना योगेनान्ते तनुत्यजाम्॥ रघु० सर्ग १ पद्य ५-८।

है। इन कथाओ के कारण रघुवश सुन्दर महाकाव्य बनगया है और उसमे विपयो की विभिन्नता तथा गतिशीलता आगई है। ये प्रसंग इतने रोचक है कि इनमे पाठक की उत्सुकता अन्तिमक्षण तक बनी रहती है। रघुवश मे से यदि इन्हे निकाल दिया जाए तो वह महाकाव्य ही न रहेगा।

राजा दिलीप तथा सिह की कथा—वैवस्वत मनु के वश मे राजा दिलीप का जन्म हुआ वह उत्तर कोशल राज्य का स्वामी था और उसकी राजधानी अयोध्या थी। वह यद्यपि सब तरह से सुखी था किंतु सतान का अभाव उसके हृदय मे काटे सा खटकता रहता था। अत वह एक दिन रानी सुदक्षिणा को साथ ले गुरू वशिष्ठ के आश्रम मे पहुँचा। सायकाल सन्ध्या बन्दन के पश्चात् गुरू ने उन्हे दर्शन दिए। राजारानी ने गुरू तथा गुरूपत्नी के चरणो मे प्रणाम किया और राज्य मे कुशल क्षेम का समाचार सुनाकर अपने आने का प्रयोजन कहा। सुनकर गुरू कुछ क्षण तक समाधिस्थ हो सोचते रहे और फिर बोले,' तुम एक दिन स्वर्ग से घर को लौट रहे थे। बहुत जल्दी मे होने के कारण तुमने मार्ग मे खडी कामधनु सुरभी का उचित सत्कार नही किया, यह उसी के शाप का फल है। ऋपि यद्यपि अपने तप के बल से ही राजा की कामना पूरी कर सकते थे तो भी कठोर साधना तथा नियत्रण की शिक्षा देने और उससे भी कही अधिक गो-सेवा का महत्व प्रकट करने के उद्देश्य से उन्होने राजा को वन्यवृत्ति स्वीकार कर अपनी गऊ की सेवा करने को कहा, तदनुसार राजा उसे चराने के लिए प्रतिदिन वन मे लेजाने तथा भक्तिभाव से उसकी सेवा करने लगा। एक दिन, वह जब, पर्वतीय दृश्यो की सुषुमा का आनन्द ले रहा था तभी उसने अकस्मात् गऊ का करुण-क्रन्दन सुना और देखा कि एक सिंह ने उसे दबोच लिया है। सिह को मारने के लिए तीर निकालने को उसने हाथ उठाया ही था कि वह वही ठिठक गया। राजा मन ही मन बहुत झुझलाया पर करता क्या? यह देख सिह मनुष्य की तरह बोलकर कहने लगा कि वह शिवजी का कुभोदर नामक सेवक है जो उनकी आज्ञा से देवदारूओ के बन की रक्षा के लिए वहाँ रहता है और जो जीवजतु उधर आ निकलते है वह उन्हे ही खाकर जीता है। उसने बडे मित्रभाव से राजा को समझाया, "विश्व मे तुम्हारा एकछत्र राज्य है, तुम्हारी यह नौजवानी और ऐसा सुन्दर शरीर! एक साधारण सी गऊ के लिए तुम इन सब से हाथ धो रहे हो। तुम्हारा यह काम मुझे समझदारी का नही लगता। तुम इस तर्रह की कितनी गउए देकर ऋषि को प्रसन्न कर सकते हो।" इसपर राजा ने उत्तर दिया, "क्षत्रिय किसी पर अत्याचार नही होने

देता और इसी से उसके क्षत्रिय नाम की सार्थकता है। यदि मै ऐसा न कर सकूं तो मेरा राजा कहलाना किस काम का ? और मै इस कलक से कलुषित जीवन के भार को उठाना नही चाहता। तुम कहते हो," इसके वदले अनेक गउएँ देकर मै ऋषि को प्रसन्न करलू। किन्तु यह संभव नही क्योकि यह कोई साधारण गऊ नही और तुमने शिवभगवान् के वल के सहारे इस पर आक्रमण किया है। अत उचित है कि मै अपने प्राणो की वलि देकर इसे तुम से छुडा लू। इस प्रकार तुम भी भूखे न रहोगे और ऋषि की यह गऊ भी मरने से वच जाएगी। इस पर सिह सहमत हो गया और राजा की वह बाह जो आधी उठकर ही जकड गई थी, एक दम खुल गई। राजा ने हथियार फेक दिए और वह सिर नीचा कर सिंह के आगे पड़ गया। वह उसकी झपट की अशका कर ही रहा था कि आकाश से फूलो की वर्षा होने लगी और गऊ ने राजा को कहा, "पुत्र, उठ तेरी इच्छा पूर्ण होगी," राजा का व्रत समाप्त हुआ और कुछ समय पश्चात् रानी सुदक्षिणा के गर्भ से रघु का जन्म हुआ। रघु शीघ्र ही सब विद्याओं मे पारगत तथा शस्त्रास्त्रों के प्रयोग मे कशल हो गया। राजा दिलीप निन्यानवे यज्ञ तो कर चुका था। अव उसने सौवा भी करना चाहा और रघु की सरक्षकता मे अश्वमेघ का घोडा छोड़ दिया गया। घोडे को पकडने का साहस किसी राजा को न हुआ। यह देख इन्द्र को भय-हुआ कि यदि दिलीप के सौ यज्ञ पूरे हो गए तो वह भी इन्द्र-पद का अधिकारी वन जायगा अत उसने घोडा चुरा लिया और उसके साथ ही अदृश्य हो गया। रघु कुछ समझ न सका कि क्या मामला है तभी अकस्मात् वहा नन्दिनी गऊ प्रकट हुई जिसके वर से रघु का जन्म हुआ था। गऊ[1] की कृपा से रघु को दिव्य दृष्टि प्राप्त होगई और उसने इन्द्र को घोडा लेजाते देखा। उसने इन्द्र को समझाने का यत्न किया किन्तु जब वह न माना तो ललकार कर कहा कि युद्ध मे रघु को हराए विना तुम घोडा न ले जा सकोगे। घमासान लडाई छिड गई और रघु ने एक तीर से इन्द्र के धनुष की डोर को काट डाला। इस पर इन्द्र वहुत विगडा और उसने रघु पर वज्र से प्रहार किया। किन्तु रघु इसे भी झेल गया। यह देख इन्द्र प्रसन्न हुआ और उसने रघु को वर दिया कि उसके पिता को घोडे के विना ही यज्ञ का सम्पूर्ण फल प्राप्त हो जाएगा और इन्द्र ने यह समाचार अपने विशेष दूत द्वारा दिलीप के पास भी भिजवा

---

१. कुछ आश्चर्य नही कि इस कथा को लिखते समय कवि का एक उद्देश्य गऊ की महिमा का प्रतिपादन भी रहा हो।

दिया। जब रघु लौट आया तो दिलीप उसे राज्य दे स्वय साधना के लिए वन को चला गया।

राज्य प्राप्त कर रघु विजययात्रा पर निकला और उसने पूर्व मे बगाल, आसाम और दक्षिण मे रामेश्वरम एवं केरल तक तथा पश्चिम मे फारस और उत्तर में हिमालय तक सर्वत्र अपनी विजय ध्वजाएं गाड़ दी। फिर विश्वजित् नामक यज्ञ मे उसने अपनी समस्त सम्पत्ति दान कर दी। यहां तक कि भोजन के लिए भी उसे मिट्टी के पात्र रखने पड़े। तभी कौत्स नामक एक ब्रह्मचारी गुरुकुल मे अपनी शिक्षा पूर्ण कर गुरु-दक्षिणा के लिए चौदह करोड स्वर्ण मुद्राएं मागने उसके पास आया। विद्वान् ब्राह्मण को अपने द्वार से खाली हाथ लौटने देना उसने अपने लिए अपमानजनक समझा अत धन-प्राप्ति के लिए कुबेर पर चढाई का विचार किया। कुबेर जानता था कि गुरु वशिष्ठ के मन्त्रों के प्रभाव से उसके रथ मे ऐसी शक्ति थी कि वह समुद्र, आकाश तथा पर्वतों पर अबाध गति से चल सकता था अत वह डर गया और उसने रातों-रात रघु के कोप को अनन्त धन से भर दिया और रघु ने वह समस्त धन ब्रह्मचारी को समर्पित कर दिया किन्तु ब्रह्मचारी ने गुरुदक्षिणा की मात्रा से एक पैसा भी अधिक न लेना चाहा। यह देख अयोध्या निवासी दग थे कि दाता के दान की अधिक प्रशसा करे या याचक की निस्पृहता की। ब्रह्मचारी के आशीर्वाद से रघु को अज नामक पुत्र प्राप्त हुआ। अज युवा हुआ तो विदर्भ की राजकुमारी इन्दुमती के स्वयम्वर का निमन्त्रण आ पहुचा और रघु ने सेना की एक छोटी-सी टुकडी के साथ उसे वहां भेज दिया। वह नर्मदा के तट पर पहुंचा ही था कि सेना की हलचल से क्षुभित हुआ एक महाकाय गन्धगज जल से निकलकर एकाएक शिविर पर टूट पडा। उसने तम्बुओं को रौंद दिया और रथो को तोड-फोड डाला। घोडे बागडोर तुडवाकर भागने लगे और स्त्रिया घबरा गई। सारे शिविर मे भगदड़ मच गई। यह देख अज ने क्षत्रिय के धर्म का विचार करते हुए, उस हाथी को केवल डरा देने के उद्देश्य से एक सादा सा तीर छोड़ दिया। उसके लगते ही हाथी एक सुन्दर गन्धर्व-कुमार बनकर अज के सामने आ खड़ा हुआ और बोला, "चोट करते हुए भी तुमने मुझे कम-से-कम कष्ट दिया। तुम्हारे इस उपकार को स्वीकार न करना कृतघ्नता है अत इसके बदले मे मै अपना यह समोहनास्त्र भेट करता हूं। इससे बिना हिंसा किए शत्रु को जीता जा सकता है। अज उसके अनुरोध को न टाल सका और मित्रता के सूत्र मे बंध दोनो ने अपनी-अपनी राह ली। स्वयवर सभा मे इन्दुमती ने अज को वर लिया और दोनो का विवाह हो गया। अज अपनी नवपरिणिता वधू के साथ

जव लौट रहा था तव स्वयवर मे पराजित राजाओ ने मिलकर उसे घेर लिया। युद्ध छिड गया और अस्त्र-शस्त्र चलने लगे। दोनो सेनाओ के पैदल पैदलो से और रथी रथियो से भिड़ गए। घुडसवार घुड़सवारो से तथा हाथी सवार हाथी-सवारो से जूझ पड़े और वरावर जोट की लड़ाई होने लगी। घोडों की टाप से उठी धूल पहियों से उड़ी हुई धूल से मिलकर घनी हो गई और हाथियो के हिलते-डुलते कानो ने उसे ऊपर तक ऐसा फैला दिया कि सूर्य भी ढक गया। पर आँखो को ढक लेने वाले उस धूल-रूपी अधकार को हाथी घोड़े और सैनिको के शरीर से वहे, नवोदित सूर्य से लाल रुधिर-प्रवाह ने शीघ्र ही शान्त कर दिया। जिन दो योद्धाओ के सारथि मारे गए, वे अपना रथ भी आप ही हाँकने लगे, जव उनके घोड़े भी मर गए तो वे रथो से उतर, पैदल ही गदायुद्ध करने लगे और गदाओ के भी टूट जाने पर खाली हाथ गुत्थम-गुत्था हो गए। जैसे विरुद्ध दिशाओ से आते प्रवल प्रभजन के झकोरो से महासागर की लहरो मे से कभी कोई आगे वढ जाती है और कभी कोई, वही हाल दोनो सेनाओं का था। कोई हारती या जीतती न थी। किन्तु शत्रु पक्ष सख्या मे वहुत अधिक था अत. अन्त में उसने अज की सेना को पीछे धकेल दिया तो भी वह पीछे न हटा। वायु धूए को भले ही उडा दे पर आग तो सूखे जगल की तरफ वढ़ती ही जाती है। वह कव तीर निकालता था और कव उसे धनुप पर रख कर छोडता था—यह पता न चलता था। ऐसा जान पड़ता था कि मानो कान तक खिंची उसके धनुप की डोर ही शत्रु के सहारकारी वाणो को सिरजती चली जा रही है। अन्त मे अज ने प्रियवद नामक गन्धर्व के दिए समोहनास्त्र को शत्रुओ पर छोड दिया जिसके प्रभाव से वे सव एकदम तसवीर से वन गए। उनके हाथ जहां के तहा रह गए, सिर की पगडियाँ कन्धो पर लटक पड़ी और वे ध्वजा के डडे का सहारा ले ऊघने लगे। यह देख अज इन्दुमती के पास पहुँचा और वीर वड़े दर्प से वोला, "हे विदर्भ-राजकुमारी, जरा इन राजाओं को तो देखो जो अपनी इस वहादुरी के वलवूते पर तुम्हे मुझसे छीनना चाहते थे।" इसके वाद उसने अपने विजय शख को वजाया और उन्हे सोता छोड आगे वढ़ गया। जव वह अयोध्या पहुँचा तो रघु ने इन्दुमती सहित उसका खूव स्वागत किया और राज्य का भार उसे सौप स्वय वन को चला गया और वहा एक दिन योग द्वारा प्राण त्याग दिए।

अज अपने नीतिकुशल मन्त्रियो से मिल-जुलकर राजकाज देखने लगा और शीघ्र ही साम दाम आदि उपायो तथा सन्धि विग्रह आदि षड् गुणो के प्रयोग

मे कुशल हो गया । उसकी प्रभु शक्ति खूब बढी हुई थी अत उसने अपने पड़ौसी राज्यो पर अपना दवदबा वैठा दिया और शत्रु राजाओ के मन के मनसूबे मन मे ही रह गए । देश मे सर्वत्र सुख और शान्ति का राज्य था । राजा एक दिन अपनी रानी इन्दुमती के साथ उद्यान मे विहार कर रहा था कि आकाश-मार्ग से जा रहे नारद जी की वीणा से गिरी देवकुसमो की माला नीचे आ पडी और उसकी चोट से सुकुमारी रानी के प्राण पखेरू उड गये। देखते-देखते रंग मे भग हो गया । अज के लिये ससार सूना हो गया और वह अधीर हो करुण-विलाप करने लगा । उसने फूलो की उस माला को अपनी छाती पर रख लिया और कहने लगा यदि उसमे ऐसी मारण-शक्ति है तो वह उसे क्यो नही मारती । वह दैव को भी उलहना देने लगा कि इन्दुमती को हर कर उसने उसका क्या नही छीन लिया क्योकि वह तो उसकी गृहिणी, विश्वस्तसचिव, सखी, तथा ललित कलाओ मे उसकी प्रिय शिष्या---सभी कुछ थी । उसके विलाप को सुनकर लता वृक्ष भी मानो आँसू वहाने लगे । वन्धु-वान्धवो ने वहुत समझा बुझाकर, किसी तरह रानी की अन्तिम क्रिया तो कर ही दी पर राजा का चित्त स्थिर न हुआ । गुरु वसिष्ठ उन दिनो किसी साधना मे व्यस्त थे, स्वय न आ सकते थे अत उन्होने अपने एक शिष्य को भेजकर कहलवाया, "तुम्हारा उससे इतने ही दिनो का सयोग था । वह तो हरिणी नामक एक अप्सरा थी जो तृणविन्दु नामक ऋषि की तपस्या मे विघ्न डालने के लिए, इन्द्र की आज्ञा से गई थी और जिसे उस ऋषि के शाप से मर्त्युलोक मे उतर तुम्हारी पत्नी बनना पडा था । ऋषि के वचनानुसार देवकुसुम के दर्शन से उसका शाप जाता रहा और वह सद्गति प्राप्त कर स्वर्ग को चली गई । तुम उसके लिये शोक न करो । ससार मे जो भी जन्म ग्रहण करता है उसका मरण अवश्यभावी है । अब तुम अपना सारा ध्यान प्रजा-पालन मे लगा दो क्योकि वह तुम्हारा प्रधान कर्त्तव्य है । तुम मर कर भी अव उसे नही पा सकते, रोकर तो कहना ही क्या ? सब प्राणी मरकर, कर्मो के अनुसार अपनी अलग-अलग राह ले लेते है । प्रियजन की मृत्यु को मूर्ख ऐसा समझते है मानो किसी ने हृदय मे खूटा ठोक दिया हो, किन्तु विद्वान् उसे ही दु खो से छुटकारा मानते है । एक दिन यह आत्मा अपने ही शरीर को छोड़कर चल देती है फिर दूसरे वाह्य विपयो से अलग होने पर विद्वान् क्यो दु खी हो ।" किन्तु इस उपदेश का भी राजा के हृदय पर यथेष्ट प्रभाव न हुआ । तो भी शिशु पुत्र दशरथ जव तक राज्य सभालने योग्य न हो जाए तव तक उसने जीवित रहने का निश्चय किया । यद्यपि शोकरूपी वरछी से उसका हृदय भीतर ही भीतर बुरी तरह विंध गया

था तो भी विरह के कठिन आठ वर्प उसने किसी प्रकार काट दिए और एक दिन सुशिक्षित नवयुवक पुत्र दशरथ को राज्य प्रदान कर उसने गगा तथा सरयू के पवित्र संगम-स्थल पर आमरण अनशन द्वारा शरीर छोड़ दिया।

इसके आगे दशरथ तथा राम की सारी कथा कवि ने संक्षेप मे प्राय. वाल्मीकि रामायण के अनुसार ही दे दी है जिसके अन्त मे लक्ष्मण के मरण तथा यमराज की प्रार्थना पर श्री राम के वैकुण्ठ गमन का वर्णन हृदयस्पर्शी है। श्री राम ने महा प्रस्थान से पूर्व ही सारे राज्य को चारो भाइयो के आठ पुत्रों मे वाट दिया था। इनमे कुश सवसे वड़ा था और उसे ही श्री राम ने उत्तराधिकार मे एक विशेप रत्न दिया था जो उन्हे अगस्त्य ऋपि से प्राप्त हुआ था। कुश ने अपनी नयी राजधानी कुशावती वनाई और वहा रहकर राज्य करने लगा।

एक दिन, आधी रात के सन्नाटे मे जव घर के सव लोग सो रहे थे, कुश की नीद अचानक टूट गई और उसने भीतर से वन्द अपने शयनागार मे, टिमटिमाते दीपक के झिलमिल प्रकाश मे एक ऐसी स्त्री को देखा जिसका वेश वियोगिनी का सा था। उसने विस्मित हो पूछा कि वह कौन है, वहा क्यो आई है, और वह यह तो जानती ही होगी कि "रघुवशियो का चित्त किसी पराई नारी पर कभी चलायमान नही होता ? इस पर वह स्त्री हाथ जोड़कर वोली, "तुम्हारे पिता श्री राम वैकुण्ठ जाते समय जिसके निष्पाप निवासियो को भी अपने साथ ले गए मै उसी सूनी अयोध्या नगरी की अनाथ अधिष्ठात्री देवी हू। कोई स्वामी न रहने से मेरे मकान, महल खण्डहर हो गए है और वडी-वड़ी शालाए विध्वस्त। उनके कारण सारा प्रदेश उस पश्चिमाकाश-सा प्रतीत होता है जिसमे सूर्यास्त के समय पवन के प्रवल झकोरो से छिन्न-भिन्न मेघ खण्ड जहा-तहा विखर गए हो। मेरी क्रीडा वापिकाओ का जो जल कभी वारिविहार करनेवाली कामिनियो के कोमल करकमलो के आघात से मृदंग के समान मधुर ध्वनि किया करता था वह आज जगली भैंसो के तीखे सीगो की चोट से चीखता सा लगता है। महलो की जिन सीढियों पर कभी महिलाओ के महावर लगे पैर पड़ा करते थे उनपर आज तत्काल मारे हरिण के खून से सने पैरो वाले वाघ घूमते है। वहुत दिनो सफाई न होने से चूने के लेपवाले मेरे धवल प्रासाद काले पड गए है और उन पर जगह-जगह घास जम आई है अतः मोतियो की लडियों-सी उजली भी चादनी उनपर पड़कर अव नही जगमगाती।

जिनकी डार को बडी सम्हार के साथ सहज से झुका के कभी विलासिनिया फूल चुना करती थी, आज भीलो जैसे जगली वन्दरो ने मेरी उन उद्यानलताओ को उजाड दिया है। मेरे घरो मे अव रात को दिये नही जलते, और दिन मे उन्हे सुन्दरियो की मुखकान्ति अलकृत नही करती। उनके झरोखो से अव धुँआ नही निकलता और उनमे मकडियो ने जाले तन लिये है। यह सव कुछ मुझसे नही देखा जाता, इसलिये अपना दुखडा रोने यहा आ गई हूं। मेरी प्रार्थना है कि तुम फिर वही चलो और अपनी पुरानी कुलराजधानी की सुध लो।" यह सुनकर, मन्त्रियो की सलाह ले कुश अयोध्या लौट आया और उसने परिश्रम से, कुशल शिल्पियो द्वारा उसका जीर्णोद्धार किया। उसमे फिर चहल-पहल हो गई। उसके वाजार विक्रय की वहुमूल्य वस्तुओ से सज गये और घोडो से घुडसाले तथा हाथियो से हथसार भर गई। वह नगरी सव अगो मे आभूपणो से सजी युवति-सी सुन्दर दीखने लगी।

इन्ही दिनो ग्रीष्म का आगमन हुआ और कुश के मन मे इच्छा हुई कि रानियो सहित जाकर गर्मियो मे सुखद सरयू के उस शीतल जल मे स्नान का आनन्द लिया जाय जिसकी लहरियो मे मस्त राजहसो के जोडे तैर रहे है और तरु लताओ से झड़े हुए फूल वह रहे है। तभी मछुओ ने जाल डालकर सरयू को दूर-दूर तक मकर आदि जल-जन्तुओ से शून्य कर दिया और उसके तट पर शामियाने गड़ गये। जव कुश की रानिया नहाने के लिये एक साथ जल मे उतरी तो उनकी वाहो मे वधे अनन्त आपस मे टकरा गये और पैरो मे पहने विछुओ की झनकार को सुन वहा तैर रहे राजहस मचल उठे। रानिया एक दूसरे पर छीटे उडाकर खेलने लगी। उनकी आखो मे लगा अजन पानी से धुल गया, कानो मे लगे शिरीष के करनफूल गिरकर तैरने लगे और गले मे पडे मोतियो के हार टूट कर बिखर गये। उनकी साड़ी छाती और नितम्बो पर चिपक गई, जूडे खुल पडे, गाल और छाती पर चीती पत्ररचना धुल गई, मोतियो के कनफूल खिसक गये और इस प्रकार उनका सारा वेश अस्तव्यस्त हो गया तो भी उनके भीगे मुखड़े वडे प्यारे लगते थे। यह देख राजा भी उनके साथ विहार के लिये जल मे उतर गया। इच्छानुसार जलक्रीड़ा कर वह बाहर आया तो पता चला कि उसकी भुजा का वह दिव्य आभूपण कही गिर गया है जो राज्याभिपेक के अवसर पर, स्वय श्रीराम ने उसे दिया था और जिसे वह मागलिक तथा अपने पिता की पवित्र यादगार समझता था। गोताखोर लोग वडी लगन से उसे खोजने लगे पर वह हाथ न आया। तव

निराश हो कर मछुओं ने कहा कि महाराज, इस जल में कहीं कुमुद नामक नागराज रहता है, हो न हो, वह रत्न उसी ने हथिया लिया है। यह सुनते ही कुश के नेत्र मारे क्रोध के लाल हो गये और उसने नागो का नाश करने वाला गरुडास्त्र अपने धनुप पर चढा लिया। धनुप पर उस वाण के चढते ही सरयू के दह मे खलबली मच गई। जल खौलने सा लगा, बड़ी-बड़ी तरंगें उठ तट से टकराने लगी और ऐसा भयानक कोलाहल हुआ मानो गढे में गिर पड़ा कोई महागज चिंघाड रहा हो। इस भयकर दृश्य को देखकर जल के जन्तु घबरा उठे और तभी नागराज कुमुद एक सुन्दर कन्या को आगे किये, जल मे से प्रकट हुआ। कन्या के हाथ मे वही रत्न था। कुमुद ने हाथ जोड़ कुश को प्रणाम किया और वोला "आप विष्णु भगवान् के अवतार श्री राम के पुत्र है यह मै जानता हू। यह कन्या मेरी छोटी वहिन कुमुद्वती है। अपनी गेंद उछाल कर यह खेल रही थी तभी इसने आपका यह आभूपण ऊपर से गिरता हुआ देखा और कुतूहलवश, अल्हड़पन से इसे वीच मे ही लपक लिया। अब अपने इस निर्दोप अपराध का परिमार्जन करने को यह जन्म भर आपकी सेवा मे रहना चाहती है अत आप इसे पत्नी रूप मे स्वीकार कीजिए। कुश ने उस प्रस्ताव का अभिनन्दन किया और कुमुद ने सगे सम्बन्धियो को एकत्र कर, वडी धूम-धाम से अपनी वहिन का विवाह कुश के साथ कर दिया। आकाश से पुष्पो की वर्पा होने लगी और इस प्रकार इक्ष्वाकुवश तथा नागकुल में परस्पर मधुर सम्वन्ध का सूत्रपात हुआ।

बुद्धि जिस प्रकार रात के चौथे पहर से प्रसाद को प्राप्त करती है उसी प्रकार कुमुद्वती ने कुश से अतिथि नामक पुत्र पाया। अतिथि शीघ्र ही सव विद्याएं पढ़ कर विद्वान् तथा वीर होगया। कुश अपनी कुल-परम्परा के अनुसार एकवार युद्ध मे इन्द्र की सहायता के लिये गया था, वहा उसने दुर्जय नामक दानव को मार तो दिया पर स्वय भी उसके हाथो वीरगति को प्राप्त हुआ। तव मन्त्रियो तथा पुरोहित आदि ने मिलकर अतिथि को राजा वना दिया। जवानी रूप तथा ऐश्वर्य-इनमें से एक एक भी मनुष्य को उन्मत्त वनाने वाला है किंतु उसे तीनो मिलकर भी विचलित न कर सके। उसका मुख सदा प्रसन्न रहता और वह सबसे हँस कर वात करता था। वह कोरी कूटनीति को भीरुता तथा उच्छृंखल वल प्रयोग को पशुवृत्ति समझता था। अत. शत्रु को जीतने के लिए दोनो को मिलाकर काम मे लाने का पक्षपाती था। वह प्रतिदिन मन्त्रियों से मिलकर उनकी सलाह लेता था किन्तु उसका भेद खुल नही सकता था। उसने स्वराष्ट्र तथा

परराष्ट्रो मे अपने गुप्तचरो का जाल बिछा रक्खा था और वे आपस मे भी एक दूसरे को न जानते थे। उनसे उसे सब भेद पता चलता रहता था। उसने अर्थ और काम के लिए यदि कभी धर्म की उपेक्षा नही की तो उसका धर्म भी कभी इनके रास्ते का रोडा नही बना। उसके ये तीनो सतुलित रहते थे। वह सदा सतर्क रहता था, तथा अवसर मिलते ही शत्रु के निर्बल अग पर चोट कर उसके प्रयत्नो को विफल करने मे कभी न चूकता था और अपनी निर्बलता को शीघ्र ही चुपचाप सुधारने का यत्न करता था। वह सन्धि विग्रह आदि गुणो तथा साम दाम आदि उपायो का प्रयोग खूब सोच समझ कर करता था। वह कूट युद्ध की चालो को खूब समझता था अत शत्रु के फन्दे मे नही पडता था किन्तु स्वय धर्मयुद्ध ही करता था। इस प्रकार बुद्धि तथा नीतिशास्त्र के अनुसार चलने के कारण उसका प्रताप बहुत बढ गया और वह देवताओ के राजा इन्द्र की तरह सब राजाओ का राजाधिराज हो गया। उसने अनेक यज्ञ किए और बडी बडी दक्षिणाए दी जिनके कारण लोग उसे दूसरा कुबेर कहने लगे। इन्द्र उसके राज्य मे जल बरसाता, यमराज रोग और अकालमृत्यु का नियन्त्रण करता, वरुण समुद्र यात्राओ मे सुख-सुविधा का प्रबन्ध करता और कुबेर उसके कोष को धनसपत्ति से भरपूर रखता था। मानो ये लोकपाल भी उसके प्रताप से भय-भीत हो आधीन राजा की तरह उसकी सेवा मे लगे रहते थे। इस प्रकार बहुत वर्ष तक राज्य कर अतिथि अपने युवा पुत्र निषध को राज्य देकर अपने उज्वल कार्यो से उपार्जित सुखो का भोग करने के लिए स्वर्ग लोक को चला गया।

निषध के पश्चात् नल से ध्रुवसधि तक, उसके वश के १५ राजाओ ने शासन किया। सुदर्शन ६ वर्ष का बालक ही था कि सिह का शिकार खेलते उसके पिता राजा ध्रुवसधि की मृत्यु हो गई। मन्त्रियो ने सुदर्शन को राजा घोषित कर दिया और वे बडी सावधानी से उसका पालनपोषण करने लगे। प्रजा बडी राज भक्त थी अत वह जब कभी हाथी पर सवार हो निकलता तो सब उसे पिता की तरह मानते और सिर झुकाकर प्रणाम करते। यद्यपि उसका शरीर शिरीष कुसुम सा सुकुमार था और वह गेद खेलते भी थक जाता था तो भी उसका तेज ऐसा था कि राज्य मे कोई अव्यवस्था न हो सकती थी। यद्यपि उसके हाथो मे वे घट्टे न पडे थे जो धनुष के अभ्यास से हो जाया करते है और उसने तलवार पकडना भी न सीखा था तो भी उसका प्रताप राज्य की रक्षा मे समर्थ था। बहुत शीघ्र उसके शरीर के सब अग ही पूर्ण वृद्धि को

प्राप्त नही होगए, किन्तु अपने कुलोचित समस्त कमनीय गुणो से भी वह युक्त हो गया। वह पढने वैठा तो पूर्व जन्म के सस्कारो के कारण अनायास ही न केवल शास्त्रो मे किन्तु शस्त्र चलाने मे भी सिद्धहस्त होगया। सुदर्शन ने वहुत दिन न्याय पूर्वक प्रजा का पालन किया और अन्त मे अपने पुत्र अग्निवर्ण को राज्य दे वह तप के लिए नैमिपारण्य चला गया।

अग्नि वर्ण को राजकाज सम्हालने मे कुछ प्रयत्न न करना पडा क्योकि सव काम पहले से ही सुव्यवस्थित थे। अत वह धीरे-धीरे आराम तलव होगया और विपयभोगो मे वुरी तरह फँस गवा। उसे नृत्यगान और मदिरा पान से ही छुट्टी न मिलती थी दरवार मे वैठ कर प्रवन्ध की वात सोचना तो दूर रहा। एक वार प्रजा ने उसके दर्शनो के लिए वहुत आग्रह किया तो उसने झरोखे से अपना एक पैर वाहर लटका दिया। इस सव का फल यह हुआ कि एक दिन वह भयकर क्षय रोग का शिकार होगया और वैद्यो के प्रयत्न भी उसे न वचा सके। वह मर गया तव मन्त्रियो ने उसकी गर्भवती रानी का विधिवत् राज्याभिपेक कर दिया और वह सिहासन पर वैठ कर उन की सलाह से राज काज चलाने लगी। उसके आदेश की उपेक्षा करने का दुःसाहस कोई नही कर सकता था।

पात्र तथा चरित्र-चित्रण

दिलीप—रघुवश के प्रारम्भ मे ही पाठक की भेट एक ऐसे व्यक्ति से होती है जिसका शरीर विशाल तथा हृप्ट-पुप्ट है। यही इस काव्य का प्रथम नायक दिलीप। दिलीप मूर्तिमान् क्षत्रियत्व प्रतीत होता है। वह रूपवान् ही नही, वुद्धिमान् भी है और साथ ही विद्वान् भी। वह जो कुछ करता है, वह वुद्धि तथा शास्त्र के अनुसार ही अत उसका फल भी उसे तदनुरूप ही मिलता है। वह न तो ऐसा उग्र है कि कोई पास ही न फटके और न इतना मीठा कि सव खा जाए। यद्यपि वह निर्भय है तो भी आन्तरिक तथा वाह्य—दोनो प्रकार की रक्षा का पूर्ण प्रवन्ध उसने कर रक्खा है। वह रोगी या असमर्थ नही तो भी आस्तिक है और पूजा-पाठ तथा दान-पुण्य करता रहता है। वह धन का लोभी नही तो भी अपराधियो से वड़े-वड़े आर्थिक दण्ड वसूल करता है। वह सासारिक सुखो का उपभोग करता है किन्तु उन मे लिप्त नही होता। दण्ड तथा पुरस्कार की व्यवस्था करने मे वह अपने पराये का भेद नही करता। वह प्रजा को अपनी सन्तान के समान मान उसका

पालन करता है, उनकी शिक्षा तथा जीविका का प्रवन्ध करता है और प्रजा भी उससे बहुत प्रेम करती है। उसका नम्र स्वभाव तथा गुरु-भक्ति प्रशसनीय है। जव वह वशिष्ठ ऋषि के आश्रम मे पहुंचता है तव वहा उसका उचित आतिथ्य तो होता है किन्तु उसके स्वागत् के लिये कोई जुलूस आदि नही निकलता या स्वय वशिष्ठ जी दौड-धूप करते नही फिरते। वे सायकाल की सन्ध्या पूजा के पश्चात् जब उसे दर्शन देते है तब राजा रानी चरण छूकर गुरुजी और उनकी पत्नी को प्रणाम करते है। सन्तान के लिए वशिष्ठ जब उसे वन्यवृत्ति स्वीकार कर गऊ की सेवा करने को कहते है तब भी वह कुछ ननु नच नही करता और उनकी आज्ञानुसार पृथ्वी पर सोता तथा जंगल के फल मूल खाकर रहता है। उनकी गऊ की रक्षा के लिए अपने प्राणो तक को वाजीपर लगा देता है। जब गऊ प्रसन्न होकर उसे दूध पीने को कहती है तव वह उसे भी गुरूजी की आज्ञा के विना नही लेता। वह निर्भय है। सिह जव गऊ पर आक्रमण कर देता है और वह चिल्लाती है तो उसके करुण चीत्कार से राजा का हृदय दयार्द्र हो आता है और वह सिह को मारने के लिए धनुष पर वाण चढाना चाहता है किन्तु उसका हाथ जहा का तहा रह जाता है। उसे अपने इस नये अनुभव पर आश्चर्य तो होता है किन्तु भय नही लगता और जब उसे यह पता चलता है कि वह कोई साधारण सिह नही किन्तु शिव का गण है तब उसे अपनी पराजय की ग्लानि तो नही रहती क्योकि उसकी वह हार सिह से नही पर शिवजी से है, तो भी दया और कर्त्तव्य पालन के प्रति वह शिथिल नही होता। उसे शिष्टाचार का ध्यान सदा रहता है। जब वह ऋषि आश्रम मे पहुचता है तव उस समय के शिष्टाचार के अनुसार पहले वह सहारा देकर रानी को रथ से उतारता है, तब अपने आप उतरता है। वशिष्ठ आश्रम को जाते समय मार्ग मे गाव के बडे-बूढे मक्खन लेकर उसका अभिनन्दन करने आते है तो वह रथ रोक कर उनसे दो वात करता है, पास खड़े जगली वृक्षो के नाम पूछता है, और यज्ञ-याग करनेवाले ब्राह्मणो के आशीर्वाद स्वीकार करता है इससे वे ग्रामवृद्ध अवश्य ही प्रसन्न हुए होगे और समय-समय पर सुनाया करते होगे कि महाराज ने उनसे वाते की थी। इससे यह भी पता चलता है कि राजा को किसी से भय या आशका न थी अन्यथा राज कर्मचारी सवको उससे दूर रखते।

रघु—वाल्मीकि रामायण को पढकर यह पता चलता है कि सूर्य वश मे पहले कुकत्स्थ और फिर रघु—ये दो राजा ऐसे हुए जिनके कारण उनके अगले

वंशज काकुत्स्थ तथा राघव कहलाए। ऐसे महापुरुष वंश के कर्त्ता समझे जाते है। दिलीप ने गऊ से यही वर मागा था कि सुदक्षिणा के गर्भ से उसे वंश का कर्त्ता पुत्र प्राप्त हो। श्री राम ने परवर्त्ती काल मे यद्यपि भगवान् का रूप ग्रहण कर लिया, पर वे और उनके पुत्र पौत्र आदि भी राघव ही कहलाए। वे वंश को अपना नाम न दे सके। कवि ने इस पृष्ठ भूमि पर ही रघु के चरित्र का विकास किया है। वह दिलीप तथा सुदक्षिणा के दृढ सकल्प और साधना, वशिष्ठ के आशीर्वाद तथा गऊ की कृपा के शुभ परिणामो की साकार मूर्ति है। ओजस्वी रूप सपत्ति, असाधारण बल पराक्रम, हृदय की विशालता तथा चरित्र की उदात्तता मे वह, इस प्रकार अपने पिता के समान है जैसे दीपक से जलाया दीपक और पूर्ण युवा होकर तो वह उससे भी बढ जाता है यद्यपि विनय के कारण वह अपने को दिखलाता बहुत कम है। ब्रह्मचारी कौत्स ने कहा था, "पूज्यो के प्रति तुम्हारा भक्ति-भाव अपने कुल के अनुरूप ही नही, किन्तु उससे भी बढकर है।" रघु मे विनय और वीरता, नम्रता तथा तेजस्विता, और शिष्टता तथा दुर्धर्षता--इन विरोधी गुणो का सुन्दर समन्वय है। यह जान कर कि उसके घोडे का अपहरण करनेवाला कोई साधारण मानव नही किन्तु देवताओ का राजा इन्द्र है तब अपने बल पर पूरा भरोसा रखते हुए भी उसने पहले बड़ों के प्रति समुचित विनय का व्यवहार ही ठीक समझा और कहा, "प्रभो यज्ञ का भाग प्राप्त करने वाले देवताओं मे आपका प्रथम स्थान है फिर भी आप मेरे पिता के यज्ञ में विघ्न डाल रहे है? आप तो यज्ञो मे विघ्न करनेवाले असुरो का सहार करनेवाले प्रसिद्ध है, यदि आप ही उनका-सा व्यवहार करने लगे तो बेचारा धर्म कहा टिकेगा?" किन्तु जब उसने नम्रता तथा सद्भावना से काम चलता न देखा तो ललकार कर कहा, "यदि आपका यही निश्चय है तो शस्त्र उठाइए, क्योकि रघु को हराए बिना आपका मनोरथ पूर्ण न होगा।" वह बडी वीरता से लडा और उसने इन्द्र के धनुष की डोर को काट डाला तथा उसका झडा भी गिरा दिया। इस पर इन्द्र बहुत बिगडा और उसने रघु पर वज्र से प्रहार किया। रघु उसे भी झेल गया। उसकी अभूतपूर्व वीरता को देख इन्द्र बहुत प्रसन्न हुआ और उसे घोडे के अतिरिक्त, कोई भी मन चाहा वर देकर, उसने पीछा छुडवाया। यद्यपि वह बड़ा प्रतापी और वीर विजेता था, किन्तु उसके युद्ध राज्य विस्तार के उद्देश्य से न होते थे। वह युद्ध-व्यसनी न था अत जहा किसीने उसकी प्रभुसत्ता को स्वीकार कर लिया वह फिर रक्तपात न होने देता था। वह लोगो के हृदय पर नृशसता का आतक जमाने के लिए सिर नही काटता था तो भी कुबेर आदि लोकपाल उससे भय मानते थे।

वरतन्तु का शिष्य कौत्स जब गुरु दक्षिणा के लिए चौदह करोड स्वर्ण मुद्राए मागने आया और रघु उससे पहले ही समस्त धन विश्वजित् नामक यज्ञ मे दान कर चुका था, यहा तक कि भोजन के लिए भी उसके पास केवल मिट्टी के कुछ पात्र बच रहे थे तब वह सोच ही रहा था कि ब्रह्मचारी की इच्छा कैसे पूरी की जाए कि भयभीत कुबेर ने अपरिमित धनराशि, उपहार स्वरूप उसके पास भेज दी। उसका जीवन आडम्बर शून्य तथा सरल था। उसके राज्य में सर्वत्र सुख शान्ति थी।

अज—इस महाकाव्य के पात्रो मे अज मध्यम कोटिका नायक है। अज धीरोदात्त प्रकृति वाला तथा वीर और गभीर है। नर्मदा के तट पर पहुचते ही एक जगली हाथी इसके शिविर पर टूट पडता है और सब लोग घबरा जाते है यह तब भी विचलित नही होता और स्थिति को सम्भाल लेता है। विवाह के पश्चात् विदर्भ से लौटते समय, स्वयम्वर मे हारे हुए राजा जब इसे घेर लेते है तब भी यह बडी वीरता से उनका मुकाबला करता है और उन्हे हरा देता है। कवि ने इसका चरित्र-चित्रण करते समय वीरता आदि की अपेक्षा इसके सज्जनता, सौहार्द, दयालुता, और प्रेम आदि कोमलता-प्रधान गुणो पर अधिक प्रकाश डाला है। अपने उन्हीं गुणो से इसने हाथी बने गन्धर्व राजकुमार प्रियवद को शाप मुक्त कर उसकी मित्रता प्राप्त की थी तथा वैसी ही मनोवृत्ति से प्रेरित हो उन राजाओ का बध नही किया जिन्होने इसे रास्ते मे घेर कर इन्दुमती को छीनने की चेष्टा की थी। किन्तु यह उस वीरदर्प से शून्य नही जो क्षत्रिय कुमार मे होना ही चाहिए और जिसके कारण इसने इन्दुमती को कहा था, "हे वैदर्भी, मेरे कहने से अब उन राजाओ को तो जरा देखो जिनके हाथ से एक बच्चा भी हथियार छीन ले। क्या इसी बलबूते पर वे तुम्हे मुझसे छीनने के मनसूबे बाधते थे ?" वीरता के साथ इसका रूप भी बड़ा आकर्षक था। स्वयवर सभा मे सुनन्दा ने इन्दुमती से कहा था, कुलीनता, रूप सौन्दर्य, आयु तथा विनय आदि गुणो मे ये तुम्हारी जोड़ के है अत. तुम इन्हे वर लो क्योकि मणि स्वर्ण के आभूषण मे ही जड़ी जानी चाहिए।" और इन्दुमती भी उस पर मोहित हो जाती है। अज जगद्विजेता महा प्रतापी सम्राट् रघु का एकमात्र उत्तराधिकारी है किन्तु फिर भी अभिमानी या उदण्ड नही। इसे राज्य का लोभ नही। यह पिता की आज्ञा का पालन करने के लिए ही सिहासन स्वीकार करता है भोग-तृष्णा से नही। यह अत्यन्त पितृ भक्त है। रघु की इच्छा थी कि वह सन्यास लेकर कही चला

जाए, किन्तु अज की आंखो के आंसू उसे दूर नही जाने देते । फिर वृद्ध पिता की मृत्यु का समाचार इसे कातर कर देता है और यह देर तक रोता रहता है। इसे अन्तिम आघात अपनी पत्नी की मृत्यु से लगता है जिससे इसका हृदय बिल्कुल टूट जाता है । रघुवंश के आठवे सर्ग मे अज का विलाप अत्यन्त मर्मस्पर्शी है यद्यपि इसका जीवन सूना-सूना और नीरस हो जाता है तो भी जब तक बालक पुत्र दशरथ योग्य नही हो जाता तब तक वह कर्त्तव्य भावना के वशी-भूत होकर जीता रहता है । आठ वर्ष पश्चात् पुत्र को राज्य दे वह गंगा तथा सरयू के संगम पर आमरण अनशन कर प्राण त्याग देता है। अज प्रेमी जीव है, वह ललित कलाओं का भी प्रेमी है किन्तु अग्निवर्ण की तरह कर्त्तव्य विमुख तथा लम्पट नहीं ।

दशरथ—दशरथ तथा राम के चरित्र का वर्णन वाल्मीकि ने रामायण में विस्तार पूर्वक किया है। अत इनके सम्बन्ध मे कालिदास को अपनी ओर से विशेष उद्भावना नहीं करनी पडी । दशरथ वीर है किन्तु उसका व्यक्तित्व दुर्बल है। वह भावुक अधिक है विवेकशील कम । उसके सकल्प मे दृढ़ता नही। वह स्त्री का वशवर्ती है । सतान न होने के कारण उसे तीन विवाह करने पड़े । तीसरा विवाह बुढापे मे केकय देश की सुन्दरी राजकुमारी से हुआ जो नवयुवती थी। वृद्धावस्था के विवाह के जो दुष्परिणाम हुआ करते है दशरथ भी उनका अपवाद न हो सका । सतान का मुख भी उसने बड़ी आयु में देखा अतः उसके प्रति उसका अत्यधिक मोह होना स्वाभाविक था, फिर श्री राम जैसी सन्तान का तो कहना ही क्या जिनके रूप तथा स्वभाव में ऐसा जादू था कि जो भी उन्हे देखता वही उनका हो जाता । पिता दशरथ को तो उन्हे देखे विना चैन ही न पड़ता था । ऋषि विश्वामित्र अपने यज्ञ की रक्षा के लिए उन्हे माँगने जब अयोध्या आए तब भी वह उन्हे भेजने को तैयार न हुआ यद्यपि अन्त मे उसे मानना पडा । कालिदास कहता है कि इसका कारण रघुकुल की वह उच्च परम्परा[1] थी कि कोई याचक उसके द्वार से खाली हाथ न लौटता था किन्तु हम समझते है कि इसका वास्तविक कारण दशरथ के स्वभाव की वह निर्बलता थी जो उसे अपने किसी भी निश्चय पर जमने न

---

१. कृच्छ्रलब्धमपि लब्धवर्णभाक्तं दिदेश मुनये सलक्ष्मणम् ।
अप्यसुप्रणयिनां रघोः कुले न व्यहन्यत कदाचिदर्थिता ॥

रघु० सर्ग ११, पद्य २ ॥

देती थी और जिसके कारण उसे आगे चलकर केकयी के आगे भी झुकना पड़ा। वह शिकार[1], जूआ तथा शराब को दुर्व्यसन मानता था तो भी दूसरो के कहने पर वह शिकार खेलने चला गया और उसमे ऐसा वहा कि राजधर्म की उपेक्षा[2] कर हाथी के धोखे मे प्रसिद्ध पितृ-भक्त श्रवण कुमार पर तीर चला बैठा। केकयी की त्यौरी चढी देख वह ऐसा नि सत्त्व हो गया कि राज तेज तो दूर, उसकी वह व्यावहारिक बुद्धि भी काफूर हो गई जिसके सहारे उसने कुपित परशुराम को स्वागत[3] के झमेले मे डाल भुलावा देना चाहा था और अपनी इसी निर्बलता के कारण उसे अन्त मे श्री राम के वियोग मे प्राणो से भी हाथ धोने पडे।

श्री राम

वाल्मीकि और उनके परवर्ती अन्य भी सहस्रो कवियो ने अपनी अपनी भावना के अनुसार रामचरित का वर्णन किया है जिनमे अनेक ऐसे है जो श्री राम को भगवान् का अवतार मानते है और कालिदास भी इनमे से अन्यतम है। किन्तु चरित्र चित्रण के प्रसग मे भगवान् के गुण दोपो की चर्चा व्यर्थ है क्योकि वह तो पूर्ण है। तथापि यहाँ केवल रघुवश के आधार पर, और उसमे से भी उसके दिव्यांश को छोड कर ही उनके चरित्र की समीक्षा करनी है। कालिदास यद्यपि शैव था तो भी कुछ तो अपनी धार्मिक भावना की उदारता के कारण और कुछ जन भावना का आदर करते हुए उसने श्री राम के प्रति भी वही भक्ति भाव प्रदर्शित किया है जो अपने उपास्यदेव भगवान् शकर के प्रति। ज्ञात होता है कि उसके समय भी रामनाम की महिमा बहुत बढ चुकी थी और मागलिक शब्दो मे उसका स्थान[4] सर्व प्रथम था। इसके आधार मे अवश्य ही श्री राम के वे असमान्य गुण तथा बल पराक्रम और

---

१. (क) न मृगयाभिरतिर्न दुरोदर न च शशिप्रतिमाभरण मधु।
तमुदयाय न वा नवयौवना प्रियतमा यतमानमपाहरत्॥
रघु० सर्ग ९, पद्य ७॥

(ख) परिचय चललक्ष्य नुमतः सचिवैर्ययौ॥ रघु०सर्ग ९ पद्य ४९॥

२. नृपते प्रतिषिद्धमेव तत्कृतवान्पक्तिरथो विलङ्घ्य यत्।
अपथे पदमर्पयन्ति हि श्रुतवन्तोऽपि रजोनिमीलिता॥ रघु० सर्ग ९, ७४॥

३ अर्घ्यमर्घ्यमिति वादिन नृप सोऽनवेक्ष्य भरताग्रजो यत।
क्षत्रकोपदहनार्चिष तत सदधे दृगमुदग्रतारकाम्॥
रघु० सर्ग ११, पद्य ६९॥

४ राम इत्यभिरामेणवपुषातस्य चोदित।
नामधेय गुरुश्चक्रेजगत्प्रथमगलम्॥ रघु० सर्ग १० पद्य ६७॥

लोक कल्याणकारी कार्य कलाप रहे होंगे जिनके प्रति जनता के कृतज्ञता पूर्ण हृदयों ने उन्हें भगवान् की पदवी प्रदान की।

कवि का कथन है कि उनका रूप बहुत प्रिय था और इसी लिए उनका नाम 'राम' रक्खा गया था। वे जब ऋषि विश्वामित्र के साथ वहां पहुंचे जहां कभी कामदेव ने तपस्या की थी तब अपने सुन्दर रूप से तो उन्होंने उसका प्रतिनिधित्व किया, कार्यों से नहीं। मिथिला नगरी में जब राजा जनक ने एक ओर, रघु के प्रसिद्ध कुल में उत्पन्न राम के किशोर सौंदर्य को देखा और दूसरी ओर कठोर शिवधनुष को, तब वे पुत्री सीता के विवाह के लिए रक्खी अपनी कड़ी शर्त पर पछताने लगे क्योंकि उन्हें आशा न थी कि श्रीराम उसे उठा भी सकेंगे। रावण की छोटी बहिन शूर्पणखा भी उन्हें देख कर मुग्ध हो गई थी। उनके हृदय में लावण्य, व्यवहार में माधुर्य, वीरता में शत्रु के दाँत खट्टे करने की क्षमता, बुद्धि में तीक्ष्णता, वैर में कटुता और भय में कषायता[1] थी। सारी प्रजा का स्नेह उन्हें प्राप्त था और माता पिता के तो वे आँखों के तारे ही थे। गुरुजनों की आज्ञा का पालन करना वे अपना परम कर्तव्य समझते थे और उसके लिए बड़े से बड़ा त्याग करने को उद्यत रहते थे। वे इतने गंम्भीर थे कि राज्याभिषेक के बहुमूल्य वस्त्राभूषण धारण करते समय उनका मुख न प्रसन्नता से खिला और न वन जाने के लिए वल्कल पहनते हुए विषाद से मलिन हुआ। उनमें शारीरिक बल भी कम न था। इसलिए ऋषि विश्वामित्र ने उन्हें ही धनुर्वेद के वे गूढ रहस्य तथा विशेष शस्त्रास्त्र प्रदान किए जो किसी अन्य के पास न थे। उन्होंने बहुत छोटी आयु में ही सुबाहु तथा ताडका का संहार किया था, फिर दण्डकारण्य में खरदूषण तथा उनके साथियों से अकेले ही युद्ध किया और अन्त में विश्व के लिए महान् आतङ्क स्वरूप रावण का वध किया। उनकी इस वीरता की शोभा उस नम्रता से और भी बढ जाती है जो उन्होंने पराजित परशुराम के प्रति प्रकट की थी। क्षत्रिय के धर्म का पालन करते हुए उन्हें परशुराम की चुनौती को तो स्वीकार करना ही पड़ा, किन्तु उत्तेजित होकर कहे गए अपमानजनक वाक्यों के उत्तर में उन्होंने एक भी अशिष्ट शब्द मुंह से न निकाला और जब उसने हार मान ली तब उन्होंने चरणों में प्रणाम कर, उलटे उससे क्षमायाचना की। दीनदुखियों के प्रति सहानुभूति तथा मनोबल के भी वे धनी थे। गौतम ऋषि की पत्नी अहल्या

---

१ यो वक्त्रं परिशोषयति, जिह्वां स्तम्भयति, कण्ठबध्नाति, हृदये कषति पीडयति च स कषाय। सुश्रुत।

अपनी एक भूल के कारण समाज से बहिष्कृत और विक्षिप्त हो गई थी, सब उससे घृणा करते थे और कोई उसके पास तक न जाता था। वह पत्थर की तरह गुमसुम पडी रहती थी। श्री राम को उस पर दया आई और उन्होने उस दशा से उसका उद्धार कर दिया। सीता की रक्षा करता हुआ जगली जटायु रावण की तलवार से घायल हो अन्तिम सास ले रहा था। श्री राम ने यथाशक्ति उसकी सेवा शुश्रुषा की पर उसकी जान न बचा सके। तब उन्होने उसे अपने पिता की तरह मानते हुए उसके शरीर की अन्तिम क्रिया की। वे चतुर राजनीतिज्ञ थे। बालि के विरुद्ध सुग्रीव की सहायता कर उन्होने रावण से युद्ध के लिए एक शक्तिशाली मित्र प्राप्त कर लिया और विभीषण को आश्रय दे शत्रु के घर मे भेद नीति का सफल प्रयोग कर दिखाया। बालि का राज्य सुग्रीव को तथा रावण का राज्य विभीषण को देकर उन्होने यह भी प्रकट किया कि वे विस्तार वादी न थे। वे भूमि की अपेक्षा मित्रता के अधिक इच्छुक थे। दूसरी जातियो तथा देशो के रीतिरिवाज और आचार व्यवहार का भी सम्मान करते थे। बाली की पत्नी तारा को रखने पर उन्होने सुग्रीव की निन्दा नही की। गृहस्थ जीवन का सुख उनके भाग्य मे, अधिक न लिखा था यद्यपि वह सीता से बहुत प्रेम करते थे किंतु पहले तो उसे रावण वन से हर कर ले गया, जब वे रावण से उसका उद्धार कर अयोध्या लौट आए और उनका राज्याभिषेक होगया तभी कुछ दिन पीछे प्रजा मे यह चर्चा उठ खडी हुई कि इतने दिन रावण के घर मे रही सीता को भी राम ने स्वीकार कर लिया। इस का प्रभाव उनकी स्त्रियो पर अच्छा न पडेगा। यह सुनकर श्रीराम पर मानो वज्रपात हो गया क्योंकि वे जानते थे कि जो कुछ भी हुआ था उसमे सीता सर्वथा निर्दोष थी किंतु तो भी प्रजा को सतुष्ट करने के लिए उन्होने सीता का त्याग कर दिया। कवि ने वाल्मीक के मुख से श्री राम के इन कार्यो की कटु आलोचना करवाई है वे सीता को कहते है कि "यद्यपि राम ने त्रिलोकी के कांटे रावण को उखाड फेका, वे सत्य से विचलित नही होते और अपने मुंह मिया मिठ्ठू भी नही तो भी उन्होने तुम से जो दुर्व्यवहार किया है उसे हम क्षमा नही कर सकते।" श्री राम ने सीता का परित्याग तो किया पर वे उसे हृदय से न निकाल सके। जब लक्ष्मण ने लौटकर सीता का अन्तिम सदेश उन्हें सुनाया तो उनके नेत्रो से निरन्तर अश्रु धारा प्रवाहित होने लगी और उन्होने फिर दूसरा विवाह न किया। अश्वमेध यज्ञ के विधि विधान राजा रानी को मिलकर करने होते है उसके लिए भी उन्होने सीताकी ही सोने की मूर्ति उसमे प्रतिष्ठित की किन्तु दूसरी स्त्री का स्पर्श नही किया। श्री राम मनस्वी भी थे। उनसे

शत्रुता मोल लेकर कोई सुख की नीद नही सो सकता था। सीता का परित्याग करते समय उन्होने कहा था कि उसे प्राप्त करने के लिए हमने रावण का जो वध किया उसे वृथा न समझो क्योकि वह तो वैर का वदला लेने से लिए था। क्या साप ठोकर मारने वाले को कुपित होकर खून की दो चार वूदो के लिए डसा करता है?

यद्यपि श्री राम को लक्ष्मण के प्रति अधिक स्नेह था तो भी उनका व्यवहार सबके प्रति समान था। उनके राज्य मे प्रजा ऐसी सुखी थी कि आज भी 'रामराज्य' शब्द सुशासन का प्रतीक तथा पर्यायवाचक समझा जाता है। कालिदास ने श्रीराम के द्वारा शूद्र शवूक के वध का वर्णन किया है। क्योकि धर्म शास्त्र की तात्कालिक व्यवस्था के अनुसार उसे तप का अधिकार न था। इसका कारण अपराधो के प्रति विभिन्न जातियो का वह भावना भेद भी है जिससे कही देशद्रोह, व्यभिचार या जालसाजी आदि के लिए मृत्यु दण्ड दिया जाता है और कही इन्हे वहुत समान्य अपराध माना जाता है। साधारणतया श्री राम का चरित्र भारतियो की दृष्टि मे आदर्श मानव का चरित्र है और वे आदर्श पुत्र, आदर्श भाई, आदर्श राजा, तथा आदर्श मित्र माने जाते है। कालिदास ने उनकी मृत्यु का वर्णन नही किया और लिखा है कि यमराज की प्रार्थना पर वे स्वेच्छा से वैकुण्ठगामी हुए।

भरत

कालिदास ने लिखा है कि केकयी यदि साकार श्री थी तो भरत उसकी शोभा को वढाने वाला विनय था। यह उपमा देकर ही कवि ने केकयी के स्वभाव तथा चरित्र के विषय मे वहुत कुछ कह दिया। दशरथ ने जव श्री राम के राज्याभिषेक की घोषणा की तव केकयी ने अपनी मूर्खतापूर्ण तथा कठोर हठधर्मिता से उस सारे समारोह को राजा के शोकाश्रुओ मे डुवा दिया। उसने राजा से दो वर मागे जिनमे एक के द्वारा राम चौदह वर्ष के लिए वन को चले गए और दूसरे से भरत को अयोध्या का राज्य मिला। उन दिनो भरत अपनी ननिहाल गया हुआ था। अत उसे इस कुचक्र का कुछ पता न चला। श्री राम के वियोग मे दशरथ की मृत्यु हो गई। जव दूत भेजकर मन्त्रियो ने भरत को वुलाया तव सव समाचार सुन उसे वहुत दुख हुआ और वह केवल केकयी ही नही राज्य लक्ष्मीसे भी विमुख होगया। वह श्री राम को वन से लौटा लाने के लिए उनके पास चित्रकूट गया पर वे किसी तरह भी आने को राजी न हुए। तव उसने उनकी खड़ाउए माग ली और उन्हे राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित कर वह चौदह वर्ष तक नन्दिग्राम मे तपस्वी वन, धरोहर की तरह उनके राज्य की रखवाली करता रहा।

इससे उसके दृढ निश्चय और उच्च विचारो का पता चलता है। उसके सम्बन्ध में श्री राम ने स्वयं कहा था कि पिता की दी हुई राज्यलक्ष्मी का भी भरत ने भोग न किया जैसे कोई युवा समर्थ होता हुआ भी स्वय आई सुन्दर तरुणी को आख उठा कर न देखे और उसका यह कार्य तलवार की धार पर चलने के समान है। कवि कहता है कि रावण की प्रेम प्रार्थनाओ को ठुकरा देने वाली सीता के दृढ़ व्रती पूज्य चरणो पर जब भरत ने अपना वह सिर धर दिया जो बड़े भाई के प्रति भक्ति भाव के कारण जटाजूट धारी बन गया था तब दोनो ही एक दूसरे के स्पर्श से पवित्र हो गए। ससार मे ऐसे बहुत कम भाई मिलेगे जो एक माता के गर्भ से जन्म लेकर भी भाई के लिए ऐसा त्याग कर सके। भरत वीर भी था, जब उसे सिन्धु प्रदेश का शासन सोपा गया तो उसने वहां के विद्रोही गन्धर्वो को जीत लिया। वह कुछ दिन वहा रहा और फिर उस विशाल राज्य को अपने पुत्रो—तक्ष और पुष्कल की रक्षा मे छोड श्री राम की सेवा में ही चला आया।

लक्ष्मण

लक्ष्मण श्री राम की विमाता सुमित्रा का पुत्र था जो उन्हे पिता दशरथ की भी अपेक्षा अधिक मानता था। वह उनकी प्रिय या अप्रिय सभी आज्ञाओ का पालन बिना विचारे किया करता था किंतु दुर्भाग्य की बात है कि अन्त मे श्रीराम की आज्ञा भग के अपराध का ही प्रायश्चित करने के लिए उसे अपने प्राणो की आहुति देनी पडी। वह श्रीराम का ऐसा भक्त तथा अनुगामी था कि केकयी ने वनवास की शर्त्त केवल श्रीराम के लिए रक्खी थी किन्तु लक्ष्मण ने उसे स्वेच्छा से वरण किया और वह भी केवल भाई की नि स्वार्थ सेवा के लिए। उसके भी माता, पत्नी तथा पुत्र थे किंतु कविने उसकी मातृ भक्ति, दाम्पत्यप्रेम या पुत्रवात्सल्य आदि मधुर भावनाओ का कही निर्देश ही नही किया, मानो उसका शरीर हाड मांस, और रुधिर का न होकर केवल कर्त्तव्य पालन का ही बना हो। रावण की बरछी के आघात से मूर्छित उस पर श्री राम को आँसू बहाते हुए देखा जाता है पर उसकी आँखो मे आँसू मानो कभी रहे ही नही। वह सीता को सर्वथा निर्दोष मानता था तो भी श्री राम की आज्ञा से उसे वन मे छोड़ने लेगया और उनका उग्र सदेश भी उसे सुना दिया। यद्यपि उसका कण्ठ कुछ रुकना चाहता था पर उसने परवाह न की। वह कर्म प्रधान था विचार-प्रधान नही। शूर्पणखा को सीमा से बाहर जाते देख उसने तत्क्षण उसके नाक-कान काट दिए। अपने स्वार्थ, महत्वाकाँक्षा तथा व्यक्तित्व को उसने श्रीराम मे पूर्णतया विलीन कर दिया था।

कुश आदि राजाओ के वर्णन मे कविका उद्देश्य चरित्रचित्रण उतना नही रहा जितना अन्य बाते। उदाहरणार्थ, यद्यपि कुश वीर जितेन्द्रिय, कलाप्रिय, और तेजस्वी है तथापि रघुवंश के सोलहवे सर्ग मे उसे निमित्त बना कवि ने उजडी अयोध्या के पुन बसाने, ग्रीष्मऋतु,, जल विहार और अन्त मे अन्तर्जातीय विवाह द्वारा नागवश से सम्बन्ध स्थापित होने के राजनीतिक महत्व पर प्रकाश डालना चाहा है। आधी रात के समय शयनागार मे प्रकट हुई वनिता के साथ सवाद से जितेन्द्रियता तथा कुमुद वाली घटना से उसकी तेजस्विता और वीरता का निर्देश किया गया है। सत्रहवे सर्ग मे अतिथि द्वारा कविने राज्य प्रबन्ध तथा शासन नीति पर अपने क्रियात्मक विचार व्यक्त किए है। शिशु राजा सुदर्शन के प्रताप तथा उसके प्रति के भक्ति भाव के वर्णन से उसने राजा की दिव्यता मे अपना विश्वास प्रकट किया है। अग्निवर्ण की विलास लीलाए तथा अन्त मे क्षय से उसकी मृत्यु उस मार्ग पर चलने वालो के लिए कडी चेतावनी है।

कुश, अतिथि तथा सुदर्शन और अग्नि वर्ण

रघुवश मे कालिदास ने अपनी नायिकाओ के चरित्र के स्वतन्त्र विकास पर विशेष ध्यान नही दिया, सारे काव्य मे केवल तीन चार स्त्रियो के जीवन की झाकी देखने को मिलती है और वह भी अधूरी। इसका कारण कुछहद तक सभवत यह है कि इसमे नायको का गृहजीवन उनकी दूसरी प्रवृत्तियो–राजकीय कर्त्तव्यो, विजयों आदि के समक्ष गौण हो गया है। अत. जो थोडे से निर्देश प्रधान-स्त्री-पात्रो के विषय मे मिलते है उनके आधार पर ही यहा उनके चरित्र की चर्चा की जा रही है।

सुदक्षिणा

सुदक्षिणा मगध की राजकुमारी तथा अयोध्या की महारानी है। कवि का कथन है कि वह अत्यन्त उदार स्वभाव वाली है और प्राय दान दक्षिणा आदि मे व्यस्त रहती है। वह अन्त पुर मे बन्द रहने वाली असूर्यपश्या ललना नही किंतु पति के साथ बाहर निकलती है और लोगो से मिलती जुलती है। उसका स्वभाव विनम्र है। गुरु वशिष्ठ के आश्रम मे जाकर वह ऋषि तथा ऋषि पत्नी के चरणो मे प्रणाम करती है। पर्णशाला में भूमि पर कुशा बिछा कर वह सो सकती है और जगल के फूल मूलो से गुज़ारा कर सकती है। अपने हाथ से गो सेवा करने मे उसे संकोच नही। वह राजरानी है तो भी भारतीय नारी की लज्जाशीलता से वचित नही। जब उसे गर्भ रह जाता है और राजा उसकी इच्छा के विषय मे प्रश्न करता है तब वह

संकोच वश उसे सीधे उत्तर नही देती । उसका स्वभाव सरल तथा मधुर है इसीलिए सखिया उसे घेरे रहती है । यद्यपि राजा के अन्त.पुर मे अन्य रानिया भी है किंतु वह मनस्विनी सबके ऊपर है और राजा उसका विशेष आदर करता है । उसने रघु जैसे वीर पुत्र को जन्म दिया है इससे उसका गौरव और भी बढ गया है ।

इन्दुमती—इन्दुमती सौन्दर्य सौकुमार्य तथा प्रेम की साकार प्रतिमा है। कवि ने उसे विधाता की विशेष रचना कहा है । उसके रूप के सामने रति भी लजाती है । उसे देखते ही स्वयवर मे आए सब राजाओ के हृदय उस पर लट्टू हो जाते है । उनकी आखे उधर से हटना नही चाहती । वह सुशिक्षित तथा रूप पारखी है । स्वयवर सभा मे पहुचकर वह भीगी बिल्ली नही बन जाती पर प्रत्येक राजा के रूप सौन्दर्य और गुणो पर विचार करती है । जब वह अज को चुन लेती है तब सब लोग उसकी पसन्द की दाद देते है और कहते है. "राजकुमारी और कुँवर अज का मेल मानो चादनी और चन्द्रमा का या भागीरथी और समुद्र का मिलन है । वह अत्यन्त प्रेममयी है इसीलिए उसे याद कर अज कहता है "तुमने कभी मन से भी मेरा अप्रिय-चिन्तन नही किया । मुझसे कभी कोई भूल हो जाती तब भी तुम बुरा न मानती थी, तुमने मुझे इस तरह छोड जाने का यह कठोर निश्चय कैसे कर लिया ?" वह केवल सुन्दर और सुकुमार ही नही किन्तु उत्तम गृहीणी के सब गुण भी उसमे विद्यमान है । ललित कलाओ मे वह कुशल है और उसकी रुचियाँ भी सुसस्कृत है । पशु पक्षियो के पालने तथा लता वृक्षो के विवाह रचाने का भी उसे शौक है । गभीर विपयो पर भी वह चतुर सचिव की तरह अपने पति को उत्तम परामर्श दे सकती है । वह उसकी विश्वस्त सखी तथा ललित कलाओ मे प्रिय शिष्या थी और उसकी मृत्यु से अज के जीवन मे जो रिक्तता आई वह कभी पूरी न हुई ।

केकयी—केकय देश की राजकुमारी केकयी अत्यन्त सुन्दरी थी । राजा दशरथ ने बडी आयु मे उससे विवाह किया था इसलिए वह उसे बहुत प्यारी थी और वह उसकी उचित या अनुचित किसी भी माँग को टाल न सकता था । कालिदास ने केकयी तथा सीता—दोनो को लक्ष्मी की उपमा दी दी है किंतु सीता के प्रसग मे उसके साथ- 'गुणोन्मुखी विशेपण लगाया है जो केकयी के प्रसग मे नही । इससे प्रतीत होता है कि वह उसमे वे सब दोष स्वीकार करता है जो लक्ष्मी मे माने जाते है । श्री राम सब को प्रिय थे ।

वे अपनी विमाताओं को भी माता के समान मानते और उनका आदर करते थे तोभी केकयी ने उनके राज्याभिषेक के समय वखेडा खडा कर दिया जिससे सभी अयोध्या वासी असन्तुष्ट और निराश हुए। सुमन्त्र का वह उद्गार जनता की भावना का सूचक है जो चौदह वर्ष पश्चात्, लका से लौटते समय, निषाद राज गुह की पुरी को देखकर श्री राम के मुख से निकल पडा था, जिसमे श्री राम ने सीता से कहा था, "यही वह निषादराज का नगर है जहाँ मैंने अपने मस्तक से चूड़ामणि को उतार जव जटा वाँधी थी तव उसे देखकर रोते हुए सुमन्त्र ने कहा था, कि " कि हाय केकयी! तेरा मन चाहा पूरा हुआ" केकयी की करतूत का समर्थक अयोध्या मे कोई न था इस लिए वह विशेष लज्जित थी और लका से विजय प्राप्त कर लौटे श्री राम के सामने जाने का उसे साहस न हुआ किंतु उनका हृदय अत्यन्त विशाल था, वे स्वय उसके पास गए और कुछ प्रिय वचन कहकर उन्होने उसके सकोच को दूर करने का यत्न किया। श्री राम को वन भेजने मे केकयी के परिवार का भी कुछ हाथ अवश्य रहा होगा किंतु भरत पर मातृ कुलकी अपेक्षा अपने परिवार का प्रभाव अधिक था अत उसने उस षडयत्र को सफल न होने दिया। यह देखकर आश्चर्य होता है कि केकयी ने पुत्र को राज्य दिलाने के लिए वैधव्य तक को पसन्द किया, और इसके लगभग ३०, ४० वर्ष वाद भी केकयी के भाई युधजित् ने फिर श्री राम को सदेश भेजकर उनसे सिन्धु प्रदेश का राज्य भरत को देने का आग्रह किया। केकयी वीर अवश्य थी उसने एक युद्ध मे दशरथ के रथ के क्षत्तिग्रस्त हो जाने पर अपनी वाँह का सहारा दे कर पति की सहायता की थी किंतु उसमे दूरदर्शिता न थी।

सीता—रघुवश मे राम-कथा का वर्णन कवि ने वहुत सक्षेप से किया है और उसमे भी सीता के जीवन तथा स्वभाव आदि पर और भी कम प्रकाश पडा है। सारे रघुवश मे वह स्वय केवल एक वार ही कुछ शब्द और वह भी तव वोली है जव लक्ष्मण उसे गगा के उस पार अकेली और असहाय छोड़ कर जाने लगा है। उन शब्दो मे वह शीतलता है जो वज्राघात से विदीर्ण मेघमालिका के हृदय से निकले ओलो मे होती है। सीता का समग्र जीवन सुख की कुछ घडियो को छोड—दुख, अपमान और वलिदान की करुण कथा है। उसका वैवाहिक जीवन वह स्वर्गीय कुसुम था जो मृत्यु लोक के विषाक्त वातावरण मे पूर्णतया विकसित हुए विना ही कुमला गया। उसका प्रेम प्रशान्त महासागर के समान गभीर, निस्तरग तथा मूक था जो कभी होठो पर नही आया।

सीता राजा जनक की पालिता पुत्री थी, औरस नहीं, क्योंकि कालिदास ने उसे पार्थिवी कहा है तो भी उसपर उनका स्नेह कुछ कम न था। उन्होंने उनके ही विवाह के लिए स्वयंवर के आडम्बरपूर्ण समारोह का आयोजन किया था, अन्य तीन कन्याओं के लिए नहीं। सैकड़ों राजाओं में से केवल श्री राम ही स्वयंवर की शर्त को पूर्ण कर सके थे इसलिए उनका सीता से विवाह हो गया। जब उन्हें पिता की आज्ञा से वन जाना पड़ा तब सीता स्वेच्छा से उनके साथ गई, इसमें पति के प्रति उसके प्रेम तथा भक्ति का ही नहीं किन्तु उस साहस तथा दृढ़ता का भी परिचय मिलता है जिसके बिना किसी नववधू का सारे परिवार की इच्छा के विरुद्ध, वैसा कर सकना संभव न था। वह राजकुमारी थी और बड़े लाड़चावों में पली थी तो भी उसने वन्य जीवन के कष्टों की परवाह न की और पति के साथ उन्हें हँसते-हँसते झेला। पर प्रतिकूल परिस्थितियों के साथ निरंतर सक्रिय संघर्ष कर सकने की शक्ति उसके शरीर में न थी और उसका स्वभाव भी बहुत सरल था तथा वह दूसरों को भी वैसा ही समझती थी। एक दिन एक कौवा उस पर झपट पड़ा और घायल कर गया। जब शूर्पणखा ने उसपर आक्रमण किया तब वह एक वीर क्षत्रिय नारी की तरह उसका प्रतिरोध न कर सकी। और अन्त में रावण तो उसे धोखा देकर उठा ही ले गया। किन्तु चारित्रिक बल में वह संसार की किसी भी नारी से कम न थी। वन जीवन के कष्ट तथा अशोक वाटिका में रावण के भय प्रलोभन, डांट-डपट, खुशामद, तथा अन्यान्य उपाय भी उसे विचलित न कर सके।

लंका से लौटने पर उसके दिन कुछ फिरे। श्री राम के साथ राज्याभिषेक के लिए कौशल्या और सुमित्रा ने बड़ी उमंग और चाव से उसे राजसी वेषभूषा से सजाया। जब वह शानदार रथ में बैठकर बड़ी धूमधाम से अयोध्या के राजपथों पर निकली तब सबने उसके भाग्य की सराहना की, तब भी उसके मुख-मण्डल पर महारानी का रोब नहीं किन्तु शीलवती कुलकामिनी की शालीनता और पतिव्रताओं की पवित्रता की वह ज्योति झलक रही थी जो वहाँ के निवासियों को भी विश्वास दिलाने के लिए मानो अग्नि परीक्षा की द्वितीयावृत्ति थी और जिसे देखकर अपनी अटरियों में झरोखों के पीछे खड़ी नगर नारियों ने उसके सम्मान के लिए श्रद्धा से हाथ जोड़ कर सिर झुका दिए थे। अभिषेक की समाप्ति पर, लंका-युद्ध में श्री राम के सहायक और मित्र सुग्रीव, विभीषण तथा उनके अनुचर सरदारों ने सिंहासन पर विराजमान महारानी सीता के हाथों से विदाई के राजकीय उपहार प्राप्त करने में विशेष गौरव अनुभव किया

किंतु उसका भाग्यभानु शीघ्र ही सदा के लिए किसी दुष्ट ग्रह का ग्रास वन गया। रावण के चगुल से उद्धार करने वाले उसके प्रिय पति ने ही उसे सर्वथा निर्दोप समझते हुए भी कुछ अनुत्तरदायी लोगो को सतुष्ट करने के लिए उसका परित्याग कर दिया और वह भी तव जव वह गर्भवती तथा असहाय थी। उस दशा मे ऋपि वाल्मीकि ने उसे आश्वासन देते हुए कहा था, "पुत्री, प्रख्यात कीर्ति वाले तेरे श्वशुर राजा दशरथ मेरे मित्र थे, तेरे पिता राजा जनक ब्रह्म का उपदेश दे लोगों का कल्याण कर रहे है और तू पतिव्रताओ मे श्रेष्ठ है, तव मै तेरी सहायता क्यो न करू[1] ? और मै उस राम को कभी क्षमा नही कर सकता जिसने निरपराध समझते हुए भी तुझे निकाल दिया है, भले ही उसने त्रिलोकी को सताने वाले रावण का नाश किया है, वह कभी झूठ नही वोलता और अपनी डीग भी नही हाकता[2]।" किंतु सीता के मुख से एक भी कटु शव्द न निकला और उसने केवल यही कहा कि वह तो उसके ही किसी पूर्व जन्म के पाप का फल होगा।

वाल्मीकि के आश्रम मे साधारण तापसी का जीवन व्यतीत करती हुई उसने न जाने कितने वर्प निकाल दिए। इसी वीच उसने कुश तथा लव को जन्म दिया, उनका पालन पोपण किया और उन्हे सुशिक्षित किया। उनसे उसका दिल वहलने लगा किन्तु वाल्मीकि उसके दुखको अधिक न देख सके और उन्होने श्रीराम से उसे पुन. स्वीकार करने का आग्रह किया। श्रीरामने उत्तर दिया कि यदि सीता जनता के समक्ष अपनी निर्दोपता को प्रमाणित कर सके तो उन्हे कोई आपत्ति न होगी। ऋपि की आज्ञा से सीता श्री राम के दरवार मे चली तो गई किन्तु उसका जर्जर हृदय इस आघात को न सह सका और उसकी करुणापूर्ण इह लोकलीला सहसा समाप्त हो गई। क्या उसकी आत्मा यह जानती है कि जिसे एक दिन उसके पति ने घर से निकाल दिया था उसे कोटि-कोटि जनो ने सदा के लिए अपने हृदय मन्दिर मे प्रतिष्ठित कर लिया है ?

---

१. तवोरुकीर्ति श्वशुर सखा मे सता भवोच्छेदकर. पिता ते।
धुरि स्थिता त्व पतिदेवताना किं तन्न येनासि ममानुकम्प्या ॥
रघु० सर्ग १४, पद्य ७४ ॥

२. उत्खातलोकत्रयकण्टकेऽपि सत्यप्रतिज्ञेऽप्यविकत्थनेऽपि।
त्वा प्रत्यकस्मात्कलुपप्रवृत्तावस्त्येव मन्युर्भरताग्रजे मे ॥
रघु० सर्ग १४, पद्य ७ ॥

संवाद :—पहले कहा जा चुका है कि सवादो का जो महत्व नाटकादि रूपको मे होता है वह काव्यो मे नही, तो भी अनेक काव्यो के कुछ सवाद इतने उत्कृष्ट है कि उनकी उपेक्षा नही की जा सकती । रघुवश के दिलिप—सिंह सवाद, रघु-इन्द्र सवाद आदि इसी कोटि के है । ये यद्यपि किसी नाटक के भाग नही तो भी इनमे पर्याप्त अभिनयात्मकता है। ये कथावस्तु के विकास तथा पात्रो के चरित्र-चित्रण मे सहायक और तात्कालिक वातावरण के अनुकूल हैं। प्रथम सवाद का प्रसग यह है कि सिंह ने ऋषि की गऊ पर आक्रमण कर दिया है, राजा उसके वध के लिए तूणीर से तीर निकालना चाहता है किन्तु उसका हाथ वीच मे ही रुक जाता है तभी उसके विस्मय को और भी वढाता हुआ सिंह मनुष्य की वोली वोलकर कहता है, "तुम मुझ पर हाथ न उठाओ। यहा तुम्हारा कुछ भी वस न चलेगा । मै शिव भगवान् का कुभोदर नामक सेवक हू जिसे उन्होने सिंह वनाकर इस देवदारू की रक्षा के लिए नियुक्त किया है और कहा है कि जो कोई पशु इधर आ निकले तुम उसे ही खालिया करो।" उसने राजा को यह भी कहा कि तुम्हे इस वात से लज्जित न होना चाहिए कि तुम गऊ की रक्षा न कर सके, क्योकि तुमने अपनी ओर से कोई कसर नही की। शस्त्र से जिसकी रक्षा सम्भव नही उसे वचा न सकने से क्षत्रियो के नाम को धव्वा नही लगता।" इससे राजा को यह तो सन्तोष हुआ कि उसकी हार साधारण सिंह से नही पर भगवान शकर के वल से वली उनके सेवक से हुई है, फिर भी वह गऊ को इस तरह मरते न देख सकता था अत. वोला, "मै भी भगवान् शकर का सम्मान तुम्हारी ही तरह करता हू और नही चाहता कि तुम उनकी आज्ञा का पालन न करो। किन्तु गुरू जी की गऊ की रक्षा करना भी मेरा कर्त्तव्य है और मै उसकी उपेक्षा नही कर सकता। अत तुम उसके वदले मुझे खाकर अपना पेट भरलो और उसे छोड दो, क्योकि उसका नन्हा-सा वछडा, साझ को कितनी उत्कण्ठा से उसकी वाट जोहता होगा।" यह सुनकर सिंह कुछ हसा और वडी सहानुभूति दिखाता हुआ कहने लगा, "जगत् मे तुम्हारा एक छत्र राज्य है। तुम्हारा यह सुन्दर शरीर और चढती जवानी। और यह सव कुछ तुम एक सामान्य-सी गऊ के लिये खो रहे हो। यह न समझदारी है और न जीव दया की दृष्टि से उचित ही। क्योकि अपने प्राण देकर तो तुम एक प्राणी की रक्षा करोगे पर जीवित रहकर तुम वहुत समय तक सारी प्रजा का पालन एक पिता की तरह कर सकोगे।" तव उसके उत्तर मे राजा वोला, "क्षत्रिय किसी पर अत्याचार नही होने देता। वह यदि यही न कर सका तो उसके राज्य या कलक-कलुषित जीवन से क्या लाभ ? फिर, इस गऊ को भी तुम ऐसी-वैसी न समझो, यह

कामधेनु से भी कम नही, मैं इसकी रक्षा नही कर सकता अत. इस के लिए अपने प्राणो की वलि दे रहा हू जिससे तुम भी भूखे न रहो और यह भी वच जाए। तुम यदि सचमुच ही मुझ पर दया दिखाना चाहते हो तो वह मेरे यश रूपी शरीर पर दिखाओ, क्योकि मैं उसकी अपेक्षा इस भौतिक् देह को तुच्छ समझता हूँ। तुम यह भी जानते हो कि मिल वैठकर वातचीत करने से पराये भी अपने हो जाते हैं, उस नाते आज हम दोनो सम्वन्धी वन गये है, अव अपने सम्वन्धी की प्रार्थना को ठुकराना क्या तुम्हे उचित है ?"

इस सवाद मे वक्ता का ध्यान अपने उत्तर के युक्तिसगत होने पर उतना नही, जितना श्रोता के हृदय की भावना को जगाकर उसे प्रभावित करने पर है। मनुष्य शत्रु के वल के आगे उतनी सरलता से नही झुकना चाहता जितना मित्र के प्रेमपूर्ण अनुरोध के आगे। और यह कार्य उसकी प्रशसा के दो-चार शव्दो तथा उसके प्रति सहानुभूति प्रकट करने से ही हो जाता है। अत. सिह ने, यद्यपि राजा को पहले कुछ धमकी अवश्य दी है किन्तु साथ ही अपना परिचय कर्त्तव्यपरायण सेवक के रूप मे देकर उस कठोरता के लिए अपनी विवशता तथा खेद भी प्रदर्शित किया है। फिर राजा के रूप यौवन और वैभव की प्रशसा और उसके प्रति अपनी हार्दिक सहानभूति द्वारा यह विश्वास दिलाने का यत्न किया है कि वह उसका हितचिन्तक मित्र है, शत्रु नही, और राजा ने भी उसी सूत्र को पकडते हुए उत्तर दिया, "शिवजी मेरे लिए भी उतने ही मान्य है जितने तुम्हारे लिए, मै उनकी आज्ञा का उल्लंघन करने के लिए तुम्हे कैसे कह सकता हूँ? किन्तु ऋषि की गऊ की रक्षा करना भी मेरा कर्त्तव्य है और तुम स्वय सेवक हो अत सेवक के उत्तरदायित्व को समझते हो।" इस वातचीत मे आदि से अन्त तक एक शोभा तथा शिष्टता विद्यमान है कही भी दुर्वचन या अशिष्टता का लेश नही। वक्ता की अपने प्रतिपक्षी से यही अपील है कि वह अपने आपको उसकी स्थिति मे रखकर विचार करे। इसमे शव्दो का चुनाव भी वक्ता तथा श्रोता की पद-प्रतिष्ठा, सस्कृति और अवसर के अनुरूप है। रघुवश के अन्य सवाद भी इसी प्रकार के है।

देशकाल

कालिदास के ग्रथो के अध्ययन से प्रतीत होता है कि उसकी निरीक्षण शक्ति अत्यन्त सूक्ष्म थी और उसने सारे भारत का परिभ्रमण किया था। कितने ही स्थानो की यात्रा उसने कई वार की होगी और कही-कही वह कई-

कई वर्ष तक रहा होगा । भारत के नगर, नदी, पर्वत, पठार आदि, उनकी भौगोलिक स्थिति तथा वहा के प्राकृतिक दृश्य उसके आगे चित्रपट की तरह स्पष्ट थे। कुमारसभव मे हिमालय तथा उसके विभिन्न प्रदेशो का वर्णन और रघुवश तथा मेघदूत मे भारत के विस्तृत भू भागो की झाकी से सिद्ध होता है कि इनसे उसका साक्षात् परिचय था, न कि पुस्तको मे पढने या सुनने-सुनाने से । बगाल मे धान के खेत, आसाम मे अगरू, कलिग मे नारियल, मलय मे चदन, ताम्रपर्णी मे मोती, तथा काम्बोज मे अखरोटो का निर्देश कर उसने केवल एक-एक शब्द से ही वहा का पूर्ण चित्र-सा खीच दिया है। रघुवश तथा ऋतुसहार के ऋतुवर्णनो मे उसने कही भी देशकाल विरुद्ध कुछ लिखने की भूल नहीं की। रघुवश के पाचवे, नवे तथा सोलहवे सर्ग मे प्रभात, वसत और ग्रीष्म का वर्णन उसने बडे मनोहर ढग से किया है । तेरहवे सर्ग मे पुष्पक विमान पर सवार श्री राम द्वारा समुद्र का वर्णन तथा सेतुबध से अयोध्या तक के विशेष दृश्यो का विहगावलोकन परवर्त्ती कवियो के लिए चिरकाल से आदर्श का काम दे रहा है ।

रस

कालिदास को मुख्यतया शृगार रस का कवि कहा जाता है किंतु उसने अपने काव्यो मे वीर, करुण, आदि अन्य रसो को भी प्रसगानुसार स्थान दिया है। तीसरे सर्ग मे इन्द्र के साथ रघु के युद्ध मे तथा सातवे सर्ग मे अन्य राजाओ के साथ अज के युद्ध मे वीर रस का पूर्ण परिपाक पाया जाता है। आठवे सर्ग मे इन्दुमती की मृत्यु पर अज का विलाप, करुण रस का उत्कृष्ट उदाहरण है । सोलहवे सर्ग के ग्रीष्म वर्णन तथा जल विहार मे और उन्नीसवे सर्ग मे अग्निवर्ण की विलास लीलाओ मे शृगार रस का प्रवाह है। ग्यारहवे सर्ग मे परशुराम के प्रसग मे वृद्ध दशरथ के शका, आवेग, विषाद परशुराम के अमर्ष, गर्व तथा उग्रता और श्री राम के उत्साह, धृति, मति, आदि सचारी भावो की व्यजना ने सारे सर्ग मे विविधता, गतिशीलता तथा सरसता का सचार कर दिया है। आठवे सर्ग मे सन्यासी रघु की साधना के वर्णन को पढते हुए पाठक का हृदय शान्त रस से आप्लावित हो जाता है ।

रस के प्रसग मे उससे सम्बद्ध एक अन्य प्रश्न पर भी यदि यहा विचार कर लिया जाए तो शायद कुछ अनुचित न होगा ।

रसानुभूति के लिए देवताओ का मानवीकरण आवश्यक है ।

कालिदास ने कुमारसभव मे पार्वती, शिव आदि देवताओ का तथा रघुवश मे श्री राम आदि अनेक राजाओ के चरित्र का वर्णन किया है । वह

पार्वती तथा शिव को जगत् के माता-पिता और श्री राम को विष्णु भगवान् का अवतार मानता है किन्तु काव्य की दृष्टि से इसमे एक कठिनाई आ जातीहै। हम मानव है और हमारे ज्ञान तथा शक्तिया बहुत परिमित है, हम नही जानते कि अगले ही क्षण क्या होने वाला है और यह अनिश्चितता ही उन उत्सुकता, आशका, वितर्क, चिन्ता, तथा भय, विस्मय, शोक, क्रोध आदि संचारी तथा स्थायी भावों की जान है जो कथा वस्तु तथा कविता में विशेष महत्त्व रखते है। किन्तु जो देवता अलौकिक शक्ति सपन्न होने के कारण पहले से ही सब कुछ जानते है वे उन पूर्वोक्त मनोवेगो के आश्रय नही बन सकते। अत कवि को उनसे मानवोचित व्यवहार करवाना पडता है। कुमार-सभव का विषय देव-चरित्र है। पार्वती शिव जी को प्राप्त करने के लिए कठोर साधना करती है और उसकी सफलता मे विलम्ब होने पर व्याकुल होती है। उसकी सखी ब्रह्मचारी को कहती है कि जिस पाषाण हृदय से इन्होने प्रेम किया है वह न जाने कब इन पर कृपा करेगा। और शिव जी भी उसके प्रेम की परीक्षा के लिए प्रच्छन्न वेष धारण करके उसके आश्रम मे जाते है। सर्वज्ञ देवताओ के चरित्र मे यह सब अनावश्यक और असगत प्रतीत होता है। अत काव्य मे रसास्वाद के लिए उनका मानवीकरण आवश्यक है और कालिदास ने भी यह कार्य अत्यत कौशल से किया है। रघुवश के पन्द्रहवे सर्ग मे उसने रावण-वध के प्रसग मे लिखा है कि जब श्री राम ने रावण के सिर काट डाले तब उन्हे पृथवी पर लुढकते देख कर भी देवताओ को यह विश्वास न हुआ कि उनका शत्रु सचमुच मर गया। उन्हे भय था कि वे कही फिर न जुड़ जाएँ। यहा त्रास शका आदि वे सचारी भाव है जिनसे परिपुष्ट देवताओ का भय दुर्वर्ष पराक्रमी रावण को भी मारने मे समर्थ श्री राम की वीरता का व्यजक बनता है। कालिदास देवताओ को सर्वज्ञ[1] मानता है तो भी उसने उन्हे मानव सा बना दिया और ऐसा करने से काव्य मे सरसता आगई। इसी प्रकार रघुवश के तेरहवे सर्ग मे श्री राम ने अवतारी पुरुष होते हुए भी एक सामान्य मानव की तरह, "जब हम तुम्हारी खोज मे वन की प्रत्येक वस्तु से तुम्हारा पता पूछते फिरते थे तब बोलकर बतलाने मे असमर्थ इन लताओ ने अपनी झुके पत्तो वाली शाखाओं को और हरिणियो ने अपने सीगो को दक्षिण की तरफ

---

१. मातलि —(सस्मितम्) किमीश्वराणा परोक्षम् ? अर्थात् देवता क्या नही जानते ? अभिज्ञान शाकु० अक ७ मे दुष्यन्त मातलि सवाद।

घुमाकर कृपा पूर्वक यह सूचित किया था कि रावण तुम्हे हर कर उधर ही ले गया है," इत्यादि उद्गारो द्वारा ही सीता के प्रति अपने प्रगाढ प्रेम को प्रकाशित किया था। किन्तु ऐसे प्रसगो मे कवि ने इस बात का ध्यान रक्खा है कि इन अलौकिक अथवा अवतारी पुरुषो के चरित्र मे भी अतिमानवता का पुट यथा सभव कम हो और वह भी अन्य मानव-पात्रो के अनुभाव, विभाव आदि की प्रचुर राशि मे ऐसा घुल मिल जाए कि उससे पाठक के चित्त मे प्रसगानुसार कुछ चमत्कार तो उत्पन्न हो किन्तु अविश्वास या अरुचि नही। यदि दशरथ को निश्चय हो कि श्री राम भगवान और सर्वशक्तिमान तथा सर्वव्यापक है तो उनके सुख-दुख की चिन्ता या वियोग से वह क्यो विह्वल हो, क्यो सुबाहु मारीच आदि का दमन करने के लिए, उन्हे नि शक हो विश्वामित्र के साथ न भेजदे और क्यो उनके वन चले जाने पर कलप-कलप कर जान देदे ? काव्य का वह पाठक या नाटक अथवा चलचित्र का वह दर्शक भी, जो उन्हे भगवान् मानता है और सीता के वियोग मे उनके विलाप को केवल मानव लीला या नाटक समझता है, उसे पढकर क्यो वैसा प्रभावित हो जैसा किसी व्यथित मानव के हृदय के यथार्थ उद्गार से ? यद्यपि नाटक मे नटो के अनुभाव या स्थायी भाव आदि वास्तविक नही होते तो भी कला तथा साधारणीकरण व्यापार के कारण सहृदय उन्हे अवास्तविक नही समझता और इसी कारण उसे रसानुभूति होती है, किन्तु भगवान् द्वारा मानव लीला के अभिनय का नटो द्वारा पुन अभिनय यथार्थ जीवन से बहुत दूर जा पडता है और इससे उसकी प्रभावक शक्ति बहुत घट जानी स्वाभाविक है। इसलिए कालिदास ने भक्ति या अद्भुत-रस के प्रसगो मे उसकी कृपालुता या अलौकिक शक्ति प्रदर्शन आदि के अत्यत विशेष अवसरो पर ही इस अतिमानवता का सहारा लिया है, शृगार, करुणा, सौहार्द आदि मानवोचित भावनाओ के प्रसग मे नही। रघुवश के दसवे सर्ग मे रावण के अत्याचारो से पीडित देवताओ की पुकार पर भगवान् का प्रकट होना और उन्हे आश्वासन देना भक्तिभाव तथा अद्भुत रस का पोपक है । इसी प्रकार उसके ग्यारहवे सर्ग मे जब परशुराम श्री राम को बारबार चुनौती देता है कि या तो तू शिवजी का धनुप तोडने के लिए हाथ जोड़ क्षमायाचना कर या हमारे इस धनुष को खीचकर दिखा तब उसके उत्तर मे श्रीराम मन्द मन्द मुसकाते हुए उस धनुष को ले लेते है और उस पर अपना अमोघ बाण चढा, उसे कान तक खीच, गभीरता के साथ कहते है, "यद्यपि आपने हमारा अपमान

करने में कुछ कमी नही रक्खी, तो भी हम इस वाण को आप पर छोडना नही चाहते क्योकि आप ब्राह्मण है । अब आप ही कहे कि इसका क्या हो ?" यह देख परशुराम का नशा उतर जाता है और वह नम्रता से कहता है, "आप साक्षात् भगवान् है, यह मुझ से छिपा नही । मर्त्यलोक में अवतार लेकर आए आपके वैष्णव तेज के दर्शन की इच्छा से ही मैंने आपको उत्तेजित करने की यह ढिठाई की[1] है ।" इस प्रकार के प्रसगो में कवि ने जिस अतिमानवता की अवतारणा की है उसे कारुणिक अवसरो पर नही आने दिया । लक्ष्मण जब सीता को वन मे छोड कर और अयोध्या मे आकर उसका अन्तिम सदेश श्री राम को सुनाता है तब उनके नेत्रो से अश्रु धारा बहने लगती है। यहां वह पूर्णतया मानव रूप में चित्रित किए गए है । कालिदास ने अपने काव्यो मे देवताओ का मानवी-करण करते हुए भी उन्हे देवता ही रक्खा है। वह उन्हे नैतिकता के उस निम्नस्तर पर नही लाया जिसपर वे होमर के काव्यो में देखे जाते है ।

गुणरीति तथा शब्द शक्तियां

कालिदास अपनी रचनाओ में वैदर्भीरीति[2] तथा प्रसाद[3] गुणो के लिए प्रसिद्ध है। उसके काव्यो तथा नाटको की भाषा अत्यन्त सरल और मधुर है। वह कठोर महाप्राण ध्वनियो, कर्कश सयुक्ताक्षरो तथा लम्बे समासो से बहुत बचता है। यद्यपि वीर वीभत्स तथा रौद्र रसो में गौडीरीति तथा ओज गुण वाञ्छनीय समझे जाते है तो भी कालिदास की कृतियो मे उनका प्रयोग बहुत कम पाया जाता है । कुमार सभव के तीसरे सर्ग मे तपस्या में विघ्न होने से कुपित शिवजी का वर्णन करने के लिए उसने प्रौढ शैली का प्रयोग किया है और लिखा:—

तप परामर्श विवृद्ध मन्योर्भ्रूभङ्ग दुष्प्रेक्ष्य मुखस्य तस्य
स्फुरन्नु दर्चि सहसा तृतीया दक्ष्ण कृशानु किल निष्पपात ।।

---

१. प्रत्युवाच तमृषिर्न तत्वतस्त्वां नवेद्मि पुरुषं पुरातनम् गा गतस्य तव धाम वैष्णव कोपितो ह्यसि दिदृक्षुणामया ।। रघु० सर्ग० ११.८५

२ माधुर्यव्यजकैर्वर्णै रचना ललितात्मिका
अवृत्ति रल्पवृत्तिर्वा वैदर्भी रीतिरिष्यते ।।
सा० द० परि० ९ कारिका २–३

३. चित्त व्याप्नोति य. क्षिप्रं शुष्केन्धनमिवाऽनल.
स प्रसाद. समस्तेषु रसेषु रचनासु च ।। सा० द० परि० ८, कारिका ७ ।

इसमे गौडीरीति तथा ओजगुण है और द्ध, ष्प्रे, क्ष्ण आदि कठोर ध्वनियो का प्रयोग हुआ है तथा तीन चार पदो के समास भी किये गये है। इसी प्रकार मालविकाग्निमित्र नाटक के पाँचवे अक मे सुमति पर डाकुओ के आक्रमण के वर्णन मे लिखा है.–

तूणीरपट्टपरिणद्ध भुजान्तराल मापार्ष्णिलम्बिशिखिबर्हकलापधारि ।
कोदण्ड पाणि विनद त्प्रतिरोधकाना मापातदुष्प्रसह माविरभूदनीकम् ॥
(अक ५ पद्य १०)

किन्तु यह कालिदास की प्रिय शैली नही है, वह तो प्राय प्रसन्न पदावली के प्रयोग का पक्षपाती है

उदाहरणार्थ—एकात पत्र जगत प्रभुत्व नव वय कान्तमिदवपुश्च ।
अल्पस्य हेतोर्वहु हातुमिच्छन् विचार मूढ प्रतिभासि मे त्वम् ॥
रघु सर्ग ३ पद्य ४७

और–गृहिणी सचिव सखी मिथ प्रियशिष्या ललिते कलाविधौ ।
करुणाविमुखेन मृत्युना हरता त्वा वद कि न मे हृतम् ॥
रघु० सर्ग ८ पद्य ६७

लक्षणा व्यंजना

कालिदासमे अपने हृदय के भावो को प्रकट करने वाले शब्दो के चुनाव की विलक्षण क्षमता देखी जाती है। वह ज्यो ही कुछ कहना चाहता है त्यो ही उस अर्थ को प्रकट करने वाले अनेक शब्दो की श्रेणी उसके सम्मुख हाथ वाध कर उपस्थित हो जाती है और उसकी चुनाव चतुर चक्षु उनमे से उपयुक्त पदावली को ग्रहण कर लेती है। उसकी दृष्टि मे कोई दो शब्द परस्पर पर्यायवाचक नही है क्यो कि प्रकरण आदि के अनुसार उनके लक्ष्यार्थ या व्यग्यार्थ वदल जाते है। सस्कृत भाषा मे हर,भव, पिनाकी, कपाली आदि शब्द शिवजी के वाचक है और पर्यायवाचक समझे जाते है किंतु कालिदास के लिए वे वैसे नही है। इसी लिए उसने उनका प्रयोग प्रसग के अनुसार वदल कर किया है।

कुमार सभव के प्रथम सर्ग मे कवि ने लिखा है कि नारद जी अपनी मौज मे जहाँ तहाँ विचरण करते एक दिन हिमालय के घर जा पहुँचे। वहाँ उन्होने पिता के पास बैठी पार्वती को देखा तो बोले "तुम्हारी यह

पुत्री हर[1] (शिवजी) की एक मात्र अर्धांगिनी होगी और अपने प्रेमातिशय से उनके आधे शरीर की स्वामिनी बनकर रहेगी" यहाँ कवि ने हर शब्द का प्रयोग इस आशय से किया है कि जो शिव सब को हर लेते है उनके भी हृदय को यह हर लेगी ।

इन्द्र के दरबार मे कामदेव अपने बल का बखान करता हुआ कहता है "आपकी कृपा से, मे अकेला ही अपने मित्र केवल वसन्त को साथ ले फूलो के इन बाणो से पिनाकधारी हर[2] (शिवजी) के भी छक्के छुडा सकता हूँ अन्य धनुष धारियो की तो बात ही क्या ?" यहाँ भी हर शब्द का वही तात्पर्य है ।

हिमालय के घर विवाह की तैयारियाँ धूम धाम से हो रही थी। सब सखियो ने मिल पार्वती की देह को सोलह शृगारो से सजा दिया तो उसका सौन्दर्य ऐसा खिल उठा जैसे फूटती कलियो से लता, निकलते तारो से रात और तैरते पक्षियो से सरिता । अपने ऐसे लुभावने रूप को पार्वती ने दर्पण मे देखा तो आँखे वही अटक गई । हर[3] (महादेवजी) के आगमन की प्रतीक्षा की एक-एक घड़ी उसे भारी होगई क्यो कि स्त्रियो के शृगार की चरितार्थता तो तभी है जब उसे पति देखले" । शिवजी ने पार्वती के हृदय को हर लिया है । अत यहा भी हर शब्द ही उपयुक्त है ।

कामदेव के उत्साह को बढावा देता हुआ इन्द्र कहता है 'हे काम, ये देवगण शत्रु को जीतने के लिये भव[4] (शिवजी) के वीर्य से उत्पन्न होने वाले

---

१. ता नारद कामचर कदाचित्कन्या किल प्रेक्ष्य पितु समीपे ।
समादिदेशैकवधू भवित्री प्रेम्णा शरीरार्धहरा हरस्य ।। कुमार सर्ग १ पद्य ५०

२. तव प्रसादात्कुसुमायुधोऽपि सहायमेक मधुमेव लब्ध्वा ।
कुर्या हरस्यापि पिनाकपाणेर्धैर्यच्युति के मम धन्विनोऽन्ये ।।
कुमार सर्ग ३ पद्य १०

३ आत्मानमालोक्य च शोभमानमादर्शबिम्बे स्तिमितायताक्षी ।
हरोपयाने त्वरिता बभूव स्त्रीणा प्रियालोकफलो हि वेश ।।
कुमार सर्ग ७ पद्य २२

४. अमी हि वीर्यप्रभव भवस्य जयाय सेनान्यमुशन्ति देवा ।
स च त्वदेकेषुनिपातसाध्यो ब्रह्माङ्गभूर्ब्रह्मणि योजितात्मा ।।
कुमार. सर्ग ३ पद्य १५

सेनापति की कामना कर रहे है, और तुम्हारा एक ही वाण इस काम को सिद्ध कर सकता है।" यहाँ, शिवजी के वीर्य की अमोघ उत्पादक शक्ति को प्रकट करने के लिए कवि ने (भव) शब्द को चुना।

शिव जी का तृतीय नेत्र उघड़ते ही काम दग्ध हो गया। उसका वर्णन करता हुआ कवि लिखता है, "हे प्रभो, अपने क्रोध को रोकिए–रोकिए · · " देवताओ की यह मनुहार आकाश मे उठ ही रही थी कि **भव**[1] (शिवजी) के तीसरे नेत्र से उत्पन्न अग्नि मे जल कर कामदेव राख हो गया।" यहा, शिवजी ने देवताओ की प्रार्थना पर भी क्रोध का संहरण नही किया किंतु उनके नेत्र से उत्पन्न अग्नि मे काम भस्म होगया। अत - इस जगह भव शब्द ही कवि को अधिक जँचा।

पिनाकी[2] शिव जी ने पार्वती के सामने ही काम को जला दिया, यह देख, वह निराश हो मन ही मन अपने उस सौन्दर्य को बुरा भला कहने लगी जिससे वह अपने प्यारे के हृदय को न जीत सकी थी। उसने अत्यन्त उग्र तपस्या शुरू की जिससे अन्त मे शिवजी का अन्त करण पसीज गया और वे ब्रह्मचारी का वेश धारण कर उसके आश्रम मे आए। तपस्या का कारण पूछने पर उन्हे पार्वती की सखी ने कहा, "ये मानिनी महेन्द्र आदि बडे-बडे दिक्पालो की ओर आख उठा कर भी नही देखती और केवल उस पिनाकी[3] शिव से ही विवाह करने पर तुली हुई है जो काम को जीत लेने के कारण बाह्य रूप पर नही रीझते। इस पर

---

१ क्रोध प्रभो सहर सहरेति यावद्गिर: खे मरुता चरन्ति।
तावत्स वह्निर्भवनेत्रजन्मा भस्मावशेष मदन चकार॥
कुमार० सर्ग ३, पद्य ७२

२. तथा समक्ष दहता मनोभव पिनाकिना भग्नमनोरथा सती।
निनिन्द रूप हृदयेन पार्वती प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता॥
कुमार० सर्ग ५, पद्य १,

३. इय महेन्द्रप्रभृतीनधिश्रियश्चतुर्दिगीशानवमत्य मानिनी।
अरूपहार्य मदनस्य निग्रहात्पिनाकपाणि पतिमाप्तुमिच्छति॥
कुमार०सर्ग ५ पद्य ५३

ब्रह्मचारी बोला, "अरे! उस कपाली' शिव को पाने के चक्कर मे पडकर चन्द्रमा की कमनीय कला तथा ससार के लोचनो को चादनी-सी सुख देने वाली तुम दोनो ने ही अपनी दुर्दशा अपने हाथो कर ली।" इस सदर्भ मे प्रथम दो स्थलो पर शिव के दृढता कठोरता आदि गुणो पर बलदेने के लिए उन्हे पिनाकी कहा गया और अन्त मे उन्हे घृणा का पात्र बतलाने के लिए ब्रह्मचारी द्वारा कपाली। इससे प्रतीत होता है कि कोई भी दो शब्द कवि की दृष्टि मे पर्यायवाचक नही[2], जैसा कि ऊपर लिखा भी जा चुका है। आपातत एक अर्थ के वाचक होने पर भी उनके तात्पर्य मे महान् अन्तर रहता है और उस अन्तर को प्रकट करने के लिए ही वह विशेष शब्द का प्रयोग करता है।

विविध अलंकार तथा उपमा

कालिदास की कला-तूलिका ने विविध अलकारो के वर्णो से अत्यंत मनोहर सौन्दर्य-चित्रो की सृष्टि की है। यद्यपि उसने रूपक, व्यतिरेक, उत्प्रेक्षा, विरोध आदि अन्य अलकारो का प्रयोग भी बडे मनोरम प्रकार से किया है तथापि उसकी उपमाओ की छटा अपना विशेष महत्त्व रखती है। इन उपमाओ का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है। भौतिक जगत् के पृथवी[3] आकाश[4], प्रात साय[5], सूर्य[6] चन्द्र[7], लता[8] वृक्ष[9] पशु[10] पक्षी[11], मणिमुक्ता[12] आदि

---

१. द्वय गत सम्प्रति शोचनीयता समागमप्रार्थनया पिनाकिन ।
कला च सा कान्तिमती कलावतस्त्वमस्य लोकस्य च नेत्रकौमुदी ॥
कुमार० सर्ग ५ पद्य ७१,

२ कवि द्वारा जगह-जगह प्रयुक्त अष्ट मूर्ति, भूतनाथ, राजा, प्रेम, भाव, अनुराग आदि सब शब्दो के तात्पर्य मे अन्तर है।

३.४. रजोभि स्यन्दनोद्धूतैर्गजैश्च घनसान्निभै
भुवस्तल मिव व्योम कुर्वन् व्योमेव भूतलम् ॥ रघु० सर्ग १, पद्य २९

५ ६ सोऽस्त्रव्रजैश्छन्नरथ परेषा ध्वजाग्रमात्रेण बभूव लक्ष्य ।
नीहारमग्नो दिनपूर्वभाग किंचित्प्रकाशेन विवस्वतेव ॥ रघु० सर्ग ७, पद्य ६०

७. स विवेश पुरी तया विना क्षणदापायशशाङ्कदर्शन ।
परिवाहमिवावलोकयन्स्वशुच पौरवधूमुखाश्रुपु ॥ रघु० सर्ग ८, पद्य ७४.

८. ततोऽभिषङ्गानिलविप्रविद्धा प्रभ्रश्यमानाभरणप्रसूना ।
स्वमूर्तिलाभप्रकृति धरित्री लतेव सीता सहसा जगाम ॥
रघु० सर्ग १४, पद्य ५४ ॥

पदार्थ या दृश्य ही नही किन्तु ज्योतिष[1], व्याकरण[2], तथा दर्शन शास्त्र[3] आदि भी उसके लिए उपमान जुटाने मे कोष का काम करते है । शस्त्रीय उपमाए यद्यपि साधारण पाठक के लिए रुचिकर तथा सुगम नही तथापि विद्वानो के चित्त मे वे कुछ चमत्कार अवश्य उत्पन्न करती है । भौतिक पदार्थो तथा दृश्यो पर आधारित उसकी उपमाए नि सदेह बहुत सरल, सुन्दर तथा स्वाभाविक है । पाठक उन पर जितना ही चिन्तन करता है उनका सौन्दर्य उतना ही निखरता जाता है । उनके कारण, संस्कृत काव्य के क्षेत्र मे उसकी विशेष ख्याति है । कुछ उदाहरण देखिए—

गुरु की आज्ञा से राजा गो सेवा मे लग गया इसका वर्णन करता हुआ कवि लिखता है, "गऊ रुक जाती तो वह भी खड़ा हो जाता, वह चल देती

---

९ तस्य प्रसह्य हृदय किल शोकशङ्कु प्लक्षप्ररोह इव सौधतलं बिभेद ।
प्राणान्तहेतुमपि त भिषजामसाध्यं लाभ प्रियानुगमने त्वरया स मेने ॥
रघु० सर्ग ८, पद्य ९३

१०. धारास्वनोद्गारिदरीमुखोऽसौ शृङ्गाग्रलग्नाम्बुदवप्रपङ्क ।
बध्नाति मे वन्धुरगात्रि ! चक्षुर्दृप्त ककुद्मानिव चित्रकूट ॥
रघु० सर्ग १३, पद्य ४७

११ तयोरुपान्तस्थितसिद्धसैनिक गरुत्मदाशीविषभीमदर्शनै ।
बभूव युद्धं तुमुल जयैषिणोरधोमुखैरूर्ध्वमुखैश्च पत्रिभिः ॥
रघु० सर्ग ३, पद्य ५७

१२. एपा प्रसन्नस्तिमितप्रवाहा सरिद्विदूरान्तर भावतन्वी ।
मन्दाकिनी भाति नगोपकण्ठे मुक्तावली कण्ठगतेव भूमे ॥
रघु० सर्ग १३, पद्य ४८

१. काप्यभिख्या तरोरासीद्व्रजतो. शुद्धवेषयो ।
हिमनिर्मुक्तयोर्योगे चित्राचन्द्रमसोरिव ॥ रघु० सर्ग १, पद्य ४६
प्रदक्षिणप्रक्रमणात्कृशानोरुद र्चिपस्तन्मिथुनं चकासे ।
मेरोरुपान्तेष्विव वर्तमानमन्योन्यससक्तमहस्त्रियामम् ॥ रघु० सर्ग ७, पद्य २४

२. स हत्वा वालिनवीरस्तत्पदे चिरकाक्षिते ।
धातो. स्थानइवादेश सुग्रीवं सन्यवेशयत् ॥ रघु० सर्ग १२, पद्य १८

३ पयोधरै पुन्यजनाङ्गनाना निर्विष्टहेमाम्बुजरेणु यस्या ।
ब्राह्म सर कारणमाप्तवाचो बुद्धेरिवाव्यक्तमुदाहरन्ति ॥ रघु० सर्ग १३–६०

तो चल पड़ता, गऊ वैठ जाती तो वह वैठ जाता और वह जल पीती तो वह भी जल पीने लगता। वह इसप्रकार छाया[1] की तरह उसका अनुसरण करने लगा," किसी प्राणी की चेप्टाओ की नकल मे छाया से वढ़ कर कोई अन्य उपमान नही हो सकता। कालिदास अपनी उपमाओ मे खीचातानी या जटिल कल्पना का सहारा नही लेता।

शकर का धनुप टूट जाने से परशुराम का क्रोधानल भडक उठा। उसने श्रीराम के वल की परीक्षा के लिए उन्हे अपना धनुप देकर उसे खीचने को कहा। श्रीराम ने उसे लेलिया तथा उसके एक सिरे को भूमि पर टिका. कर ज्योही डोर चढाई कि परशुराम ऐसा निस्तेज हो गया जैसे (पानी-पड़ने से) आग वुझ कर धूआ[2] ही धूआ रह जाता है। "आग वुझना प्रतिदिन की सामान्य घटना है किनु कवि ने दो तीन शव्दो मे ही उसे इस ढग से रक्खा है कि उपमेय परशुराम की मुखकान्ति के मलिन पडने का सजीव चित्र खिच जाता है। यहा उपमा के साथ समुच्चय[3] अलकार ने मिलकर वर्णन को अधिक ओजस्वी वना दिया है।

स्वयवर-सभा मे पाण्ड्य राज भी पधारे थे और वे श्याम वर्ण थे। जव इन्दुमती उनके सामने पहुँची तो सखी सुनन्दा उनका परिचय दे अन्त मे वोली, "ये महाराज नील कमल के सामान श्याम है और तुम गोरोचना सी गोरी। यदि तुमने इनसे विवाह कर लिया तो तुम दोनो की शोभा मेघ और उसमे चमकती विजली[4] की शोभा की तरह वढ़ जायगी।" इस पद्य मे उपमा के साथ मिले मधुर परिहास ने भी आपस मे एक दूसरे की

---

१. स्थित स्थितामुच्चलित. प्रयाता निपेदुपीमासनवन्धधीर.।
जलाभिलापी जलमाददाना छायेव ता भूपतिरन्वगच्छत्॥
रघु० सर्ग २ का ६

२ तेन भूमिनिहितैककोटि तत्कार्मुक च वलिनाधिरोपितम्।
निप्प्रभश्च रिपुरास भूभृना धूमशेप इव धूमकेतन॥ रघु० सर्ग ११ का ८१

३. समुच्चयोऽय मेकस्मिन् सति कार्यस्य साधके'
खले कपोतिका न्यायात् तत्कर स्यात् परोपिचेत्॥
गुणो क्रिये वा युगपत् स्याता यद्वा गुणक्रिये॥
सा० द० १० परि.८४,८५ कारिका

४. इन्दीवर श्याम वपुर्नृपोऽसौ त्वं रोचना गौर शरीर यप्टि:।
अन्योन्य शोभा परिवृद्धयेवा योगस्तडित्तोयदयोरिवास्तु॥
रघु० सर्ग ६ पद्य ६५॥

शोभा को वढा दिया है। उपमा का आधार साधर्म्य हुआ करता है किन्तु यहा वह साधर्म्य भी श्याम और गौर इनके विरोध पर खडा है यही इसका सौन्दर्य है।

उपमाओं की गगा यमुना

रघुवश के तेरहवे सर्ग मे प्रयाग का वर्णन करते हुए कवि ने उपमाओ का जो गगा-यमुना[1]-सगम बनाया है वह भी दर्शनीय है। विमान द्वारा आकाश मार्ग से अयोध्या की तरफ जा रहे श्री राम प्रयाग को देख सीता से कहते है कि हे सुन्दरी, देखो यमुना की तरगों से अठखेलियां करती गगा की लहरिया कैसी सुहावनी लग रही है ? ये कही मोतियो के उस हार सी चमक रही है जिनके बीच मे तरल कान्ति वाले नीलम पिरो दिए गए है, तो कही श्वेत कमलो की उस माला-सी मालूम पडती है जिनमे जगह-जगह नील कमल गुथे है। कही ये श्याम हसो मे मिले जुले राजहंसो की पक्ति के समान दीखती है तो अन्यत्र ऐसा प्रतीत होता है मानो किसी ने वसुन्धरा रूपी कामिनी की छाती पर चन्दन से ऐसी चित्रकारी करदी हो जिसके बीच मे कही-कही कालागरू के रस से फूल पत्तियाँ बनाई गई है। कही पर ये उजली रात मे फैल रही उस चादनी-सी दीखती है जिसके भीतर जहा-तहा वृक्षो के पत्तो की छाया छितरा रही है और अन्यत्र शरद काल के उन झीने शुभ्र मेघ खण्डो सी जिनके बीच मे नीला आकाश झलक रहा है। यह सगम कही श्वेत भस्म से पुते महादेव जी के उस शरीर सा प्रतीत होता है जिसमे कही-कही काले साँप लिपटे है।" यहा क्रमश मोती और इन्द्र नील, श्वेत कमल और नील कमल, तथा हस और कादम्बो को उपमान बनाया गया है। जो श्वेत तथा श्याम तरगे दूर से मोती और इन्द्र नील की तरह छोटी दीखती थी वे ही पास आने पर कुछ बडी हो गई, तब कवि ने उन्हे राजहसो और कादम्बो के समान कहा। धीरे धीरे जब दोनो

---

१ क्वचित्प्रभा लेपिभिरिन्द्रिनीलै र्मुक्ता मयी यष्टिरिवानु विद्धा।
अन्यत्र माला सित पकजाना मिन्दीवरैरुत्खचितान्तरेव ।।
क्वचित्खगाना प्रिय मानसाना कादम्ब ससर्ग वतीव पक्ति ।
अन्यत्र कालागरुदत्त पत्रा भक्ति र्भुवश्चन्दन कल्पितेव ।।
क्वचित्प्रभा चान्द्रमसी तमोभिश्छाया विलीनै शवली कृतेव ।
अन्यत्र शुभ्राशरदभ्रलेखा रन्ध्रे ष्विवालक्ष्य नभ प्रदेशा ।।
क्वचिच्चकृष्णोरग भूषणव भस्माग रागा तनुरीश्वरस्य ।
पश्यानवद्याङ्गि विभाति गगा भिन्न प्रवाहा यमुनातरगै ।। ५४–५७ ।

धाराओं का जल और भी मिल जुल गया तो कवि ने उसे पृथ्वी के वक्षस्थल पर चन्दन और अगरु से की गई चित्रकारी सा बताया। और जब गंगा की धवल तरंगों में यमुना की श्यामलता क्रमश और भी क्षीण हो गई तो उसे सफेद बादलो में से झलकते नीले आकाश तथा महादेव के शरीर पर कही-कहीं लिपटे सांपों सा कहा। एक ही उपमेय के वर्णन के लिए उपमानों की खोज करती उसकी दृष्टि पहले शरीर पर पहने मोती तथा नीलमों और कमलों के हारों पर से होती हुई, कुछ दूर पर लहरा रहे सरोवरो में तैरते हुए हंसो और पृथ्वी के वक्ष स्थल पर की गई चित्रकारी पर और फिर वहां से उठ कर वह आकाश तथा कैलाश वासी शिव तक जा पहुँची।

दीपशिखा कालिदास

स्वयंवर सभा मे विराजमान राजाओं के सामने से चली जारही इन्दुमती की समता कवि ने उस दीपक की शिखा[1] से की है जिसे लिए कोई व्यक्ति रात मे राजपथ पर चला जारहा है। उसका प्रकाश जिस भवन पर पड जाता है वह क्षणभर के लिए जगमगा कर फिर अधकार मे डूब जाता है। इस वर्णन को पढ़ते समय राजकुमारी के छरहरे शरीर, उज्वल गौर वर्ण तथा राजाओं के आशान्वित और निराश होने का पूरा चित्र एकदम सामने आजाता है। सहृदयो को यह उपमा इतनी अच्छो लगी कि उन्होने इसके कारण कवि-का उपनाम 'दीप शिखा' रख दिया।

इस प्रकार की एक से एक बढ़कर कितनी ही उपमाए कालिदास के ग्रन्थो मे भरी पड़ी है किन्तु इससे यह न समझना चाहिए कि उसकी सबसे बड़ी विशेषता उपमा ही है। 'उपमा कालिदासस्य।' प्राचीनो की इस उक्ति का तात्पर्य यही है कि उपमा के क्षेत्र मे अन्य कोई कवि उसके समान नही। उपमा तो एक अलकार मात्र है और काव्य मे अलकार का स्थान किसी सुन्दरी के शरीर मे नाक की लौंग या हाथ की अगूठी के समान है। किसी युवती के सौन्दर्य वर्णन की इतिश्री उसकी चूडी या कर्णफूल की प्रशसा से नहीं हो जाती। इसी प्रकार कालिदास की केवल उपमा की प्रशसा से उसके प्रति न्याय नही किया जा सकता।

---

१. सचारिणी दीपशिखेव रात्रौ यं य व्यतीयाय पतिंवरा सा।
नरेन्द्र मार्गाट्ट इव प्रपेदेविवर्णभाव स स भूमिपालः॥
रघु० सर्ग ६, पद्य ६७।

सभी समाजो तथा उनकी भाषाओ में कुछ तथ्यात्मक, अशोभन, अप्रिय अथवा अमागलिक बातो को सीधे न कहकर प्रकारान्तर **पर्यायोक्त अलकार** से प्रकट किया जाता है । हिन्दू समाज मे अन्धे को सूरदास या प्रज्ञाचक्षु कहते है और मृत्यु को स्वर्गवास। इसी प्रकार घर आये व्यक्ति से उसके नाम धाम और काम के विषय मे अभिधा से न पूछकर "आपका शुभ नाम ? आपका दौलत खाना ? आपने कैसे कष्ट किया ? इत्यादि प्रश्न किए जाते है और वह भी उनके उत्तर मे बडी नम्रता से ,'जी मुझे रामलाल कहते है, मेरा गरीब खाना···है मे आपको एक कष्ट देने आया हूँ इत्यादि कहता है । इस शिष्टाचार से बोल-चाल तथा व्यवहार मे एक शालीनता और मधुरता आ जाती है । सस्कृत भाषा भी इस नियम की अपवाद नही ।

बाण[1] तथा श्री हर्ष[2] आदि सभी कवियो ने इस शैली को अपनाया है किन्तु उनका भी पथ प्रर्दशक होने का गौरव कालिदास को ही प्राप्त है । वह इस प्रकार के तथ्य कथन को मनोहर ढग से कहने की कला मे विशेष कुशल है। अभि ज्ञान शकुन्तल नाटक के प्रथम अक मे अनसूया राजा से पूछती है, "आर्य ने किस राजर्षि के कुल को अलकृत किया है ? किस देश की प्रजा को अपने वियोग से विकलकर आर्य यहाँ पधारे है और वह क्या कारण है जिससे आपके सुकुमार शरीर को भी इस तपोवन तक आने का कष्ट करना पड़ा है ? नाटको मे ही नही, काव्यो मे भी उसने इस शैली का पालन किया है ।

---

१ "तत्कथय आगमनेन अपुण्यभाक् कतमो विजृम्भित-
विरहव्यथ शून्यतानीतो देश ?
किं नाम्न समृद्धतपस पितुरयममृतवर्षी
कौस्तुम्भमणिरिव होरेर्हृदयमाल्हादयति ?
कानि वाऽस्य पुण्यभाजि भजन्त्यभिख्या मक्षराणि ख्नाम ?"
॥ हर्ष चरित प्रथम उच्छ्वास ॥

२. निवेद्यताहन्तसमापयन्तौ शिरीषकोषम्रदिमाभिमानम्
पादौ कियद्दूरमिमौ प्रयासेनिधित्सते तुच्छदय मनस्ते ?
अनायि देश कतमस्त्वयाद्य वसन्त मुक्तस्य दशा वनस्य ।
त्वदाप्त सकेत तया कृतार्थां श्रव्याऽपि नानेन जनेन सज्ञा ?
॥ नैषध सर्ग ८ पद्य २४, २५ ॥

आचार्य कुन्तल इसे 'वाक्य वक्रता'[1] कह कर वक्रोक्ति के अन्तर्गत मानता है किन्तु दूसरे आचार्य इसे पर्यायोक्त[2] अलकार कहते है। कालिदास इसका इतना पक्षपाती है कि वह आना-जाना, खाना-पीना, देखना-सुनना आदि को भी प्राय इसी द्वारा प्रकट करता है। 'राजा दिलीप तथा नन्दिनी धेनु अपनी मनोहर गति से तपोवन की ओर आने वाले मार्ग को अलकृत कर रहे थे।' अर्थात् तपोवन को आरहे थे। अपने संचार से दिनभर दिगन्तो को पवित्र करती, नवकिसलय-सी अरुण सूर्य की आभा ने तथा मुनिजी की उस धेनु ने साझ होते ही निलय (विलीन हो जाना और घर) की ओर चलने का उपक्रम[3] किया। राजा दिलीप सिंह से कहता है कि आज वह (सिह[4] उसके (दिलीप के) देह से ही प्राण धारण करने की कृपा करे' अथात् उसे खाकर गुजारा करले। वन से वसिष्ठजी की धेनु के पीछे चले आ रहे राजा को रानी के अपलकलोचनो ने ऐसे पीया (देखा) मानो वे बहुत देर से निर्जलोपवासी[5] थे। पार्वती ने गुरु के इस उपदेश को अपने कानो से खूब पीया (सुना)[6]। इसी प्रकार राजा ने शेष नाग के समान शक्तिशाली अपनी भुजापर पृथ्वी की धुरी को फिर धारण कर लिया अर्थात् शासन भार फिर सम्भाल लिया। इन्द्र रघु को कहता है, "तुम सगर की सन्तान के पथ पर मत चलो अर्थात् वृथा ही अपनी जान न दो, इत्यादि भी इसके अनेक उदाहरण है।

रघुवश के छठे सर्ग मे सुनन्दा ने क्रमश आठ राजाओ का परिचय दे उनसे विवाह का प्रस्ताव किया हे किन्तु प्रत्येक प्रस्ताव मे नवीनता और

---

१ वक्रोक्ति जीवित ? उन्मेष १, कारिका २२

२. पर्यायोक्त यदा भग्या गम्य मेवाभिधीयते ॥ सा० द० परि० १० कारिका ॥

३. सचार पूतानि दिगन्तराणि कृत्वा दिनान्तेनिलयायगन्तुम् ।
प्रचक्रमे पल्लव रागताम्रा प्रभा पतगस्य मुनेश्च धेनुः ॥
रघु० सर्ग २ पद्य १५

४. स त्वं मदीयेन शरीर वृत्ति दैहेन निर्वर्तयितु प्रसीद ॥

५. पपौनिमेपालसपक्ष्म पक्तिरुपोपिताभ्यामिव लोचनाभ्याम् ॥
रघु० सर्ग २ पद्य १९

६. आलोचनान्तं श्रवणेवितत्य पीत गुरोस्तद्वचनं भवान्या ॥
कुमार० सर्ग ७ पद्य ?४

अपनी ही विशेषता है । मगधेश्वर[1] के सम्बन्ध मे वह कहती है "यदि तुम्हारी यह इच्छा है कि ये महाराज तुम्हारा हाथ अपने हाथ मे ग्रहण करले तो पाटली पुत्र के महलो के झरोखों से तुम्हे देखती वहाँ की नारियो के नेत्रो को वडा सुख मिलेगा । फिर अगराज[2] के पास पहुँच कर वह उसे समझाती है, 'प्रसिद्ध है कि लक्ष्मी और सरस्वती मे स्वाभाविक विरोध है तो भी इनके यहा वे दोनो मिलजुल कर रहती है। हे कल्याणी, तुम रूप मे लक्ष्मी-सी और वाणी मे सरस्वती के समान हो, अत. उनके साथ मिलकर उनकी-सी तीसरी हो जाओ । अवन्तिनाथ[3] का परिचय देकर वह इन्दुमती को लुभाती है,"हे सुन्दर जाँघो वाली, क्या तुम्हारी इच्छा इनके साथ सिप्रा की तरगो के संपर्क से शीतल पवन से झूमते उद्यानो मे विहार करने की नही होती? अनूपराज[4] को दिखाकर और उनके गुणो का वर्णन कर वह राज कुमारी को प्रेरित करती है कि यदि तुम अपने राजभवन के झरोखे मे वैठ सुन्दर लहरियो वाली नर्मदा के मनोहर दृश्य देखना चाहती हो तो इन महाराज की अकलक्ष्मी बन जाओ, इत्यादि । शेष चार[5] राजाओ के साथ विवाह की चर्चा मे भी उसने इसी रीति का अनुसरण कर अपनी उर्वरा प्रतिभा का परिचय दिया है ।

कालिदास के काव्यो में उपमा तथा पर्यायोक्त ही नही किंतु अन्य भी सब प्रधान अलकार स्थान-स्थान पर पाए जाते है । उदाहरणार्थ :

रावणावग्रहक्लान्तमिति वागमृतेन स ।
अभिवृष्य मरुत्सस्य कृष्णमेघस्तिरोदधे ।। रघु० सर्ग १० पद्य ४८ ।।

---

१. अनेन चेदिच्छसि गृह्यमाण पाणि वरेण्येन कुरु प्रवेशे ।
प्रासादवातायनसश्रितानां नेत्रोत्सव पुष्पपुराङ्गनानाम् ।।रघु० सर्ग ६ पद्य२४

२. निसर्गभिन्नास्पदमेकसंस्थमस्मिन्द्वयं श्रीश्च सरस्वती च ।
कान्त्या गिरा सूनृतया च योग्या त्वमेव कल्याणि ! तयोस्तृतीया ।।
रघु० सर्ग ६ पद्य २९

३. अनेन यूना सह पार्थिवेन रम्भोरु ! कच्चिन्मनसो रुचिस्ते ? ।
सिप्रातरंगानिलकम्पितासु विहर्तुमुद्यानपरपरासु ।। रघु० सर्ग ६ पद्य ३५

४. अस्याङ्कलक्ष्मीर्भव दीर्घबाहोर्माहिष्मतीवप्रनितम्बकाञ्चीम् ।
प्रासादजालैर्जलवेणिरम्या रेवा यदि प्रेक्षितुमस्ति काम. ।। रघु०सर्ग ६ पद्य ४३
५ रघु० सर्ग ६. पद्य ५०, ५७, ६३

५. रघु० सर्ग ५० पद्य ५०, ५१, ५७, ६३, ६४, ६५

इस पद्य में रावण का अनावृष्टि से, देवताओं का सस्य से, विष्णु का मेघ से तथा उसकी वाणी का जल से अभेद प्रतिपादित किया गया है अतः सांग-रूपक है ।

तथापि शस्त्रव्यवहारनिष्ठुरे विपक्षभावे चिरमस्य तस्थुषः ।
तुतोष वीर्यातिशयेन वृत्रहा पदं हि सर्वत्र गुणैर्निधीयते ॥

रघु० सर्ग ३, पद्य ६२ ॥

इस पद्य में 'गुण अपना प्रभाव सर्वत्र दिखाते हैं' इस सामान्य सत्य से रघु की वीरता पर इन्द्र के प्रसन्न होने की विशिष्ट घटना का समर्थन किया गया है अतः अर्थान्तरन्यास अलंकार है ।

चन्द्रं गता पद्मगुणान्न भुंक्ते पद्माश्रिता चान्द्रमसीमभिख्याम् ।
उमामुखं तु प्रतिपद्य लोला द्विसंश्रयां प्रीतिमवाप लक्ष्मीः ॥

कुमार० सर्ग १, पद्य ४३ ॥

इसमें पार्वती के मुख की शोभा को पद्म तथा चन्द्र की शोभा से उत्कृष्ट कहा गया है । अतः व्यतिरेक अलंकार है ।

शिलाशयां तामनिकेतवासिनीं निरन्तरास्वन्तरवातवृष्टिषु ।
व्यलोकयन्नुन्मिषितैस्तडिन्मयैर्महातपः साक्ष्य इव स्थिताः क्षपाः ॥

कुमार० सर्ग ५, पद्य २५ ॥

यहां बिजली के चमकने में आँख के उन्मेष और रात्री में साक्षी होने की संभावना की गई है । अतः उत्प्रेक्षा अलंकार है ।

शशाम वृष्ट्यापि विना दवाग्निः ॥ रघु० सर्ग २ पद्य १४ ॥

इसमें वर्षा के बिना ही दावानल के बुझने का वर्णन है । अतः विभावना अलंकार है और अवश्य मुहातो अन्य० । रघु० सर्ग १० का २६ वां पद्य, इसमें विरोध ।

रघुर्भृशं वक्षसि तेन ताडितः पपात भूमौ सह सैनिकाश्रुभिः ।
निमेषमात्रादवधूय च व्यथां सहोत्थितः सैनिकहर्षनिःस्वनैः ।

रघु० सर्ग ३, पद्य ६१ ॥

इसमें रघु तथा उसके सैनिकों के आँसुओं के एक साथ गिरने, फिर रघु और उसके सैनिकों के हर्षनाद के एक साथ ही उठने का वर्णन होने के कारण सहोक्ति अलंकार है । इसी प्रकार

अनेन पर्यासयताश्रुबिन्दून्मुक्ताफलस्थूलतमान्स्तनेषु ।
प्रत्यर्पिताः शत्रुविलासिनीनामाक्षेप सूत्रेण विनैव हाराः ॥

रघु० सर्ग ६, पद्य २८ ॥

इस पद्य मे अश्रुबिन्दु और मुक्ता फलो मे साम्य दिखला फिर अतिशयोक्ति द्वारा उनमे अभेद प्रतिपादन कर विभावना की सहायता से, बिना तागा पिरोये हार बना और उन्हे शत्रु स्त्रियो को पहनाने का वर्णन कर उस द्वारा उनके विधवा हो जाने का निर्देश है। अत इन विविध अलकारो और उनसे परिपुष्ट पर्यायोक्त अलकार का अङ्गाङ्गीभाव सकर है। यहा सब अर्थालकारो के अलग-अलग उदाहरण दे सकना सभव नही। अत इतना ही पर्याप्त समझना चाहिए।

शब्दालंकार

अलकार के प्रकरण को समाप्त करने से पूर्व अनुप्रास यमक आदि शब्दालकारो के प्रति उसकी रुचि तथा योग्यता पर भी कुछ विचार कर लेना उचित है। उत्कृष्ट कवि अपनी रचनाओ मे प्रयास पूर्वक ढूँढ-ढूँढ कर अनुप्रास आदि की योजना नही किया करते। वे तो विषय तथा रस के अनुसार स्वय ही यथावसर आ जाया करते है। कालिदास की रचनाओ मे भी ये स्थान-स्थान पर पाये जाते है उदाहरणार्थ—

ततो मृगेन्द्रस्य मृगेन्द्रगामी वधाय वध्यस्य शर शरण्य ।
जाताभिषङ्गो नृपतिर्निषङ्गादुद्धर्तुमैच्छत्प्रसभोद्धृतारि ॥

रघु० सर्ग २, पद्य ३० ॥

अथाथर्वनिधेस्तस्य विजितारि पुर पुर ।
अर्थ्यामर्थपतिर्वाचमाददे वदता वर ॥ रघु० सर्ग १, पद्य ५९ ॥

अनुप्रास के साथ ही वह यमक रचना मे भी चतुर है। यद्यपि कालिदास को कृत्रिमता से प्रेम नही तो भी उसने कही-कही यमक रक्खे है। रघुवश के नवे सर्ग मे सुन्दर यमक[1] है। इससे उसने शायद यह प्रकट करना चाहा है कि यदि वह चाहे तो इनकी रचना मे भी वह किसी से पीछे नही। प्रतीत होता है कि उसके समय भी कविता को पाण्डित्य प्रदर्शन का साधन समझने की प्रवृत्ति उत्पन्न होने लगी थी, जो पीछे चलकर अत्यन्त बलवती होकर सारी कविता पर छागई। कालिदास को कृत्रिम श्लेष योजना भी पसन्द नही। इसलिए उसने उन्हे अपनी रचनाओ मे स्थान नही दिया। कही भूले-

---

१. कुसुमजन्म ततो नवपल्लवास्तदनु षट्पदकोकिलकूजितम् ।
इति यथाक्रममाविरभून्मधुर्द्रुमवतीमवतीर्य वनस्थलीम् ॥

रघु० सर्ग ९ पद्य २६ ॥

भटके दो[1] चार स्थानों पर ही वे आगए है। मेघदूत मे दिङ्नाग[2] और निचुल शव्दो के जो दो अर्थ पिछले टीकाकारों ने निकाले है वे खीचातानी के सिवा कुछ नही।

काव्य मे छन्दों का स्थान

रेल की यात्रा मे हलके झटको की जो लहरियाँ वनती जाती है उनमे झूलता यात्री वरवस ऊँघने लगता है। कुछ वैसी ही अवस्था कविता पढते समय पाठक की तथा श्रोताओ की भी होजाया करती है और उनका हृदय उसी प्रकार की लहरियो मे हिलोरने लगता है। कभी-कभी तो अर्थ-वोध के विना भी, केवल स्वर के उतार-चढाव से ही वह आनन्दमयी नशीली अनुभूति उत्पन्न हो जाती है। इसका कारण कविता की वह पद-वद्ध रचना है जिसमे स्वरो की एक 'गति' अर्थात् नियमित उतार चढाव (Rhythm) और 'यति' अर्थात् नियत समय पर रुकने (Time) का भी नियम रहता है। पद्य की उस इकाई को पद या चरण कहते है जिसकी आवृत्तियों से पद्य, गीत या कविता चलती है। ये पद प्राय चार हुआ करते है किन्तु यह अनिवार्य नही, क्योकि वेद के गायत्री छन्द मे तीन तथा हिन्दी के छप्पय मे ६ पद होते है। सस्कृत के वृत्तगन्धि गद्य मे तथा हिन्दी के स्वच्छन्द छन्दो मे किसी एक छन्द के न रहने पर भी वह गति अवश्य रहती है जो ऊपर निर्दिष्ट लहर या झूले[3] का काम किया

---

१ राममन्मथशरेण ताडिता दु सहेन हृदये निशाचरी।
गन्धवद्रुधिरचन्दनोक्षिता जीवितेशवसतिं जगाम सा॥ रघु० ११, पद्य २०॥

२. मेघदूत पूर्वमेघ, पद्य १४।

३ इस प्रसग मे अग्रेजी के सुप्रसिद्ध पत्र लेखक विलियम कूपर के एक पत्र का कुछ अश यहा उद्धृत किया जाता है जो मनोरजन के साथ ही पाठक के हृदयको उस झूला झूलने की अनुभूति भी करवा सकेगा—

TO The Rev. John Newton.

July 12, 1781.

My very Dear Friend—I am going to send, what when, you have read, you may scratch your head, and say I suppose, there's nobody knows, whether what I have got, be verse or not by the tune and the time, it ought to be rhyme, but if it be, did you ever see, of late or of yore, such a ditty before ? The thought did occur, to me and to her,

करती है और छन्दों मे तो इन दोनो का होना अत्यावश्यक है। भारत मे छन्द रचना अति प्राचीन काल से प्रचलित है। वेद छन्दोमय है और विवाह के अवसर पर प्रत्येक वर से छन्द सुनाने का अनुरोध किया जाता है। सस्कृत साहित्य मे सैकडो छन्द है और कवियो ने अपनी रुचि तथा परिपाटी के अनुसार अनेक छन्दो का प्रयोग किया है।

कालिदास ने अपने काव्यो मे केवल १९, २० छन्दो का ही प्रयोग किया है। ऋतु सहार मे वसन्त तिलका, मालिनी, वशस्थ, इन्द्र वज्रा, उपेन्द्र वज्रा तथा इनकी उपजाति का प्रयोग हुआ है। काव्य की समाप्ति पर केवल दो पद्य शार्दूल बिक्रीडित छन्द मे है। मेघदूत का विषय वर्षा ऋतु, प्रवास तथा दो प्रेमियो की विरह वेदना का वर्णन है और उसके लिए कवि ने उस मन्दाक्रान्ता छन्द को चुना है जिसकी मन्थरलय मे एक कसक सी सास लेती सुनाई पड़ती है। प्रिय पत्नी की मृत्यु पर अज के विलाप और मृत पति के शोक मे क्रन्दन

कालिदास का छन्द प्रयोग

---

as Madam and I, did walk and not fly, over hills and dales, with spreading ails, before it was dark, to Weston Park.

. ...

I have heard before, of a room with a floor, laid upon springs, and such like things, with so much art, in every part that when you went in, you were forced to begin a minute pace, with an air and a grace, swimming about, now in and now out, with a deal of state, in a figure of eight, without pipe or string, or any such thing; and now I have writ, in a rhyming fit, what will make you dance, and as you advance, will keep you still, though against your will, dancing away, alert and gay, till you come to an end of what I have penn'd; which that you may do, ere Madam and you are quite worn out with jigging about, I take my leave, and here you receive a bow profound, down to the ground from your humble he---

W. C.

इसी प्रकार रामाष्ट प्रास तथा जगन्नाथ की गगालहरी के अनेक पद्यो मे भी पाठक को ऐसी झूला झूलने की अनुभूति प्राप्त हो सकती है।

करती रति के उद्गारो को प्रकट करने के लिए वैतालीयक छन्द ही सर्वोत्तम था अत कवि ने रघुवश के आठवे तथा कुमार सभव के चौथे सर्ग मे उसे ही स्थान दिया है। वसन्त ऋतु में समस्त प्रकृति मे मस्ती छा जाती हैं और चेतन-जगत् भी मचल उठता है चित्त की उस चचलता को प्रकट करने के लिए कई कवियो ने यमक युक्त द्रुतविलम्बित छन्द को पसन्द किया है। कालिदास ने रघुवश के नवम सर्ग मे वसन्त ऋतु का वर्णन इसी छन्द मे किया है। विस्तृत कथा के सक्षेप, साधारण घटनाओ के वर्णन, उपदेश आदि के लिए अनुष्टुभ् अच्छा समझा जाता है। रघुवश के प्रथम, दशम, द्वादश, पचदश, सर्गो मे इसी का प्रयोग हुआ है। रामायण तथा महाभारत का भी यही प्रवान छन्द है। वर्णन का प्रवाह इसमे अवाध गति से आगे वढता है।

कालिदास के छदो मे कही हतवृत्तता दोप या शिथिलता नही पाई जाती।

उपसंहार

उनमें विशेप प्रकार की मसृणता तथा कोमलता रहती है। भावपक्ष तथा कला पक्ष—दोनो की दृष्टि से कालिदास के महाकाव्य सस्कृत साहित्य के समुज्वल रत्न है। कुछ विद्वान् मेघदूत को गीति-काव्य मानते है किंतु भारतीय साहित्य-शास्त्र के अनुसार वह खड काव्य है। मेघदूत की रचना कर कविने सस्कृत-कविता के क्षेत्र मे एक नवीन आदर्श उपस्थित किया जो आगे आने वाले कितने ही कवियो के लिए चिरकाल से प्रेरणा स्रोत वना हुआ है। कालिदास प्रथम कोटि का नाटककार है और उसे उत्तम गीतिकार भी समझना चाहिए। उसके नाटकों मे अनेक सुन्दर गीत उपलब्ध होते है जो यद्यपि प्राकृत भापा मे हैं तो भी उनसे उसकी गीतिकाव्य कुशलता का परिचय अवश्य मिलता है। कालिदास की लेखनी जिस क्षेत्र मे भी चली है वही उसने अपूर्व सफलता प्राप्त की है किंतु उसकी सवसे वडी विशेपता वह सौन्दर्य है जो उसकी काव्य कला मे सर्वत्र व्याप्त है और जिसके प्रकाश मे आकर सब कुछ सुन्दर हो गया है। उसके वनाए सौन्दर्य-चित्र किसी देश या जाति तक सीमित नही, वे विश्व भर के लिए है। उन्हे समय पुराना नही कर सकता, वे सदा नये रहने वाले है।

अनुक्रमणिका

ऐतिहासिक या पौराणिक व्यक्तियों के नामों की सूची

भौगोलिक स्थानों के नामों की सूची

कवियों तथा लेखकों के नामों की सूची

ग्रन्थों आदि के नामों की सूची

साहित्यिक विशेष शब्दों की सूची

अन्य विशेष शब्दों की सूची

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	४	हुवा	हुआ
,,	१३	अद्भत	अद्भुत
९	२४	चन्दनन	चन्दनेन
१६	१६	कित	किंतु
१७	१,२	रहे होगे	रहा होगा
१७	३	उन्होंने	उसने
२४	२४	गुरोमुखात	गुरोर्मुखात्
४९	९	-चक	रोचक
५०	३०	सदमनि	सद्मनि
५६	५	घन	धान
५६	२२	-चिरा	रुचिरा
५७	७।१०	फलो ने	फूलो ने
५७	१३	मण्ड्लानि	मण्डला।न
५८	६	जसे	जैसे
५८	१७	मुपति	मुर्पाते
६०	२३	कौनुका	कौतुका
६२	९	वन्ध	वन्धु
६२	३१	रवल	रवला
६६	२५	वन्धु	वॅन्धु
६७	२६	मिवकाम्	मिवैकाम्
६८	२	अवसर-किए	अवसर पर किए
६८	६	नट	तट
७१	२	अन	अनु
७४	२६	कुते	करुते
७८	१२' १३	और	×
८२	१३	रवतकठै	रक्तकण्ठै
८८	२०	राजा-देख	राजा उसे देख
८९	२८	मिच्छ	मिच्छा
९०	१८	सम्वन्ध	सम्वन्ध मे
९६	१७	प्ररणा	प्रेरणा
९७	१७	अवस्था	अव्यवस्था
९८	११	उपव्यवथाएं	उपव्यवस्थाएं
१०२	२०	सभा के	समाप्ते
१०२	२१	प्रयप्तः	प्रयतः
१०३	८	अमिज्ञान	अभिज्ञान
१०३	११	ब्र ह्मण	ब्राह्मण पर
१०५	१२	प्रयोजनी	प्रयोजनों
१०६	५	होती थी	होती थी
१०७	३	या	था
१०७	२२	वक्रम	विक्रम
१०९	४	जाती	जाती
१०९	१४	घनी	धनी
११०	२०	चडाकर्म	चूडाकर्म
१११	१९	इस-सूत्र	इस काम सूत्र
११६	३०	एश्वर्य	ऐश्वर्य
११७	२	जिनके	जिनकी
१२६	२३	वध्यो	वधो
१२८	२४	एव व	एव
१२८	२६	वारिका	कारिका
१२९	१७	प्रीत्य	प्रीत्यै
१२९	२५	शाक	शाकु०
१२९	३०	शाक	शाकु०
१३१	१६	अमिज्ञान	अभिज्ञान
१३१	२६	शाकुतत्त्व	शाकुन्तल
१३५	९	कसा	कैसा
१३५	११	वीच में	वीच में ही
१३५	२६	घुई त	छुई न
१३५	३०	सर्व	सवै
१३६	३०	सीदन्त	सीदन्न
१३६	३१	स्थगथति	स्थगयति
१३७	२७	स्यु स्युस्तयो	स्युस्तत्क्रमो
१४०	२४	खलु न मा	खलु मां
१४१	२८	शिश्य	शिष्या
१४३	९	दि	दिल
१४३	३१	टेडी	टेढ़ी

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१४४	३१	चाहिए	चाहिऐ ।
१४५	१	ससार	सहार
१४५	२२	संदुकल	सदुकूल
१४५	३०	संसूच्चते	ससूच्यते
१४६	२३	गीठी	मीठी
१४७	३०	तुम्हे भी	तुम्हे तो
१४८	२०	सौहादद्वि	सौहार्दाद्वा
१४९	१६	शापान्नो सप्तमे	शापान्तो मे
१५०	७	वामाम्	वामा
१५२	१६	योग्य वा	योग्यया
१५२	२५	यनुत्तरगम्	मनुत्तरगम्
१५२	२६	अन्तश्चेराणा	अन्तश्चराणा
१५४	२३	यौवनो त	यौवनोन्नत
१५६	२५	रात्रौ यं	रात्रौ य यं
१५९	१	स्पश	स्पर्श
१६३	१८	Could	Cou'd
१५९	१९	प्रेमियो	प्रतियो
१६५	२८	नवतमुपैति	नवतामुपैति
१६८	९	उनकी	उसकी
१६८	२९	show	show,
१६८	३४	provcd	proved
१६९	१९	those	these
१६९	२८	So if	So it
१७०	१९	स्तात्रगुणा	स्तत्रगुणा
१७०	२२	noisesome	noisome
१७०	२२	adheis	adders
१७०	२२	lark	lurk
१७०	२३	agreed	areed
१७६	२९	enamelld	enamell'd
१७७	१२	श्यामलता	श्यामालता
१७७	१९	dwelt.	dwell"
१७९	७,८	न होता पर मन	न होता हुआ भी मन
१८१	२९	when as	whenas
१८१	३४	As—	Or.
१८१	१६	impriso ned-	imprison'd
१८१	२७	is fed	is fed,
१८३	१६	होता था ।	होता था
		मानो	मानो
१८४	१२	ये सौन्दर्य कभी	ये सौन्दर्य चित्र कभी
१८४	१७	रूप विस्मित	रूप-विस्मित
१८४	३०	विधना	विधाना
१८४	३०	शतैककक्ष्ये	शतैकलक्ष्ये
१८६	२०	सौन्दर्य किसीने	किसीने सौन्दर्य
१८६	२३	तदन्तयन्था	तत्तदन्यथा
१८६	२४	रेखय	रेखया
१८६	२५	कि चिदान्वि- तम्	किंचिदन्वि- तम्
१८९	१	मानस मे कुछ	सानस में । कुछ
१९१	३	चित्रण	चित्रण,
१९१	४	रीझते	रीझते ।
१९१	२५	कर्तुबन्ध्य	कर्तुमबन्ध्य
१९२	२९	कृपावति	कृपावती
१९४	३०	संगमरुचया	सगमस्त्वया
१९५	२८	पदैरियत्	पदैरियम्
१९७	७	उलट	उलटे
१९३	१८	could	cou'd
१९७	९	प्रम	प्रेम
१९८	२२	हिमरश्म	हिमरश्मा
१९९	२८	stead fast	steadfast
१९९	३५	मनसिवशयः	मनसिशयः
२००	२	प्रवाह[1]	प्रवाह
२००	३	शेक्सपीयर	शेक्सपीयर[1]
२००	२३	ever fixed	ever-fixed
२००	३२	not man	nor no man
२०३	२०	मर्त	मर्त्य
२०५	२८	they	thy
२०५	३०	metal	mettle
२०६	१४	विगुल	विगुल की
२०६	२५	nooe	none
२०६	३३	I Love	O Love
२०६	३७	set the will	set the wild

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२१०	२२	अथवा त्थ्य	अथवा तथ्य-
२१४	२१	कोईर चना	कोई रचना
२२३	३३	राज्य	राज्य मे
२२५	९	अनिवाय	अनिवार्य
२३३	३१	परिष्कृत ह	परिष्कृत हो
२३९	२८	तनप्र	तनयं
२४०	३०	प्रतापान्त	प्रतापात्त
२४१	२४	आसमुन्द्र	आसमुद्र
२४१	२९	यौवनो	यौवने
२४३	१४	कगल	कुगल

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२४७	२६	महिलाओ	महिलाओं
२५७	३०	वक्तं	वक्त्र
२५७	३०	स्यंभयति	स्तम्भयति
२५७	३०	वनध्नाति	वध्नाति
२५७	३०	हृदये	हृदयं
२५८	२	थ	था
२७६	११	शंकः	शकुः
२७६	१७	सैनिक	सैनिक
२७६	२९	पुन्य	पुण्य